स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन 2013

BIHAR YOGA

# स्वर्णिम संग्रह 1

## बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों का संकलन



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

# स्वर्णिम संग्रह 1




WORLD YOGA CONVENTION 2013
GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA
23rd–27th October 2013

# स्वर्णिम संग्रह 1

## बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों का संकलन




योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

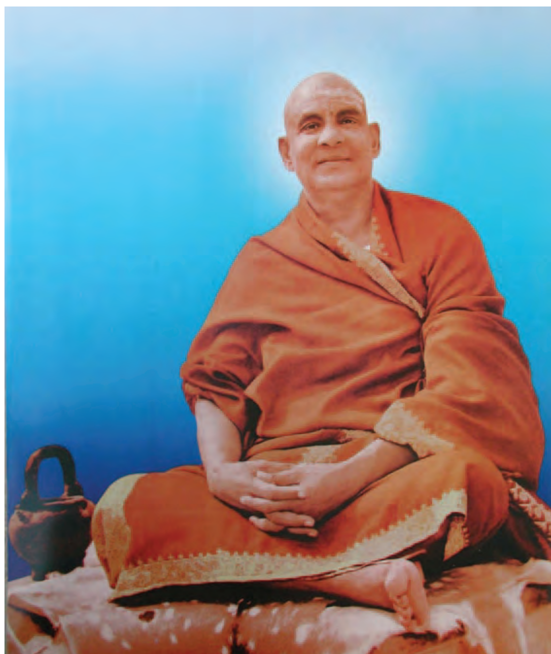
*योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा   प्रथम प्रकाशन 2012*

**ISBN**: 978-93-81620-15-1



*प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,*
*मुंगेर, बिहार, भारत*
*मुद्रक—एजीएन ऑफसेट प्रिंटर्स,*
*ग्रेटर नोएडा*

वेबसाइट : www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



# सविनय समर्पण

*स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में*
*जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी*



## नमो नारायण

*योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।*

*स्वामी सत्यानन्द सरस्वती*
*रिखियापीठ, 2005*

# विषय सूची

# कुरुक्षेत्र की लड़ाई

## *एक सरस कथा*

सर्वप्रथम हिन्दी प्रकाशन होने के नाते 'कुरुक्षेत्र की लड़ाई' बिहार योग वांङ्मय में एक विशिष्ट स्थान रखती है। श्री स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा 28 नवम्बर, 1959 को गोविन्दधाम, बम्बई में दिये प्रवचन से संकलित यह पुस्तक दिसम्बर 1960 में इलाहाबाद की देश सेवा प्रेस से प्रकाशित हुई। इसमें श्री स्वामी जी ने एक प्रतीकात्मक कथा को आधार बनाकर जीवात्मा की संसार-यात्रा का बड़े ही रोचक ढंग से वर्णन करते हुए अंततः आध्यात्मिक जीवन की अनिवार्यता को सत्यापित किया है।

– *सम्पादक*

# कुरुक्षेत्र की लड़ाई

महर्षि द्वैपायन व्यास ने महाभारत के अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीता की रचना की। इसीलिए गीता को 'श्रीव्यासदेव-प्रसाद' भी कहा जाता है। मानव-जीवन और गीता में साम्य है। जैसे रामचरितमानस में भगवान् राम की कथा आती है, वैसे ही गीता में मानव-जीवन में चलने वाले संघर्ष और शान्ति का विवेचन है।

**ऐतिहासिक पृष्ठभूमि**

कौरव तथा पाण्डव कुरुक्षेत्र के मैदान में एक दूसरे से लड़ने के लिए जमा हुये। व्यूह-रचना हो जाने पर अर्जुन ने भगवान् श्री कृष्ण से अपना रथ ऐसे स्थान पर ले चलने की प्रार्थना की, जहाँ से वह अपने प्रतिपक्षियों को एक बार देख लेता।

कुरुक्षेत्र के मैदान में अपने ही जनों को प्रतिपक्ष में देख कर, उसने लड़ने से इन्कार कर दिया; उसने सोचा कि स्वजनों को मार कर राज्य पा लेने की अपेक्षा भीख माँगना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। अर्जुन मोह-जाल में फँस गया था।

तब भगवान ने उसके अप्रासंगिक और अनैतिक वैराग्य को कस कर चुनौती दी। कहाँ तो उससे यह आशा की गई थी कि वह क्षत्रिय होने के नाते युद्ध करता, और कहाँ यह तमाशा कि वह स्वधर्म को ही चुनौती देने लगा। भगवान के वचनों से अर्जुन की कर्तव्यनिष्ठा चेत गई; वह लड़ने को उद्यत हो गया।

यही है गीता का सारांश। अब 'जीवन की गीता' भी समझ लें। तभी हम कुरुक्षेत्र की लड़ाई के लिये उद्योग करेंगे।

## आध्यात्मिक कुरुक्षेत्र

एक समय की बात है, 'जीवराम' नामक एक यात्री पवित्र 'ब्रह्मपुरी' की यात्रा करने के लिए 'अनादिपुरी' से निकला। दिन-रात रास्ता नापते-नापते वह एक दिन दिन डूबने की बेला में किसी सराय के पास आ गया। सराय का नाम था 'संसार'। सराय के रखवाले का नाम लाला 'मनीराम' था, जो अपने अनेकों सहयोगियों के साथ उस सराय का संचालन करता था। लाला जी ने रसोई बनाने के लिये 'तृष्णा कुमारी' को सराय में ही रख लिया था। वह उस सराय में उतरने वाले यात्रियों की सेवा मे षट्-रस व्यंजन बनाकर परोसा करती थी। वे व्यंजन 'काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मात्सर्य' के नाम से कहे जाते थे।

लाला मनीराम की सराय में दो सुन्दर नर्त्तकियाँ भी रहती थीं। उनके नाम 'विलास कुमारी' और 'सम्पत्ति रानी' थे। ये नर्त्तकियाँ अपने नृत्यों से आने-जाने वाले यात्रियों का मनोरंजन किया करती थीं।

जीवराम ने सराय में बहुत आव-भगत देखी। ज्योंही उसने सराय में प्रवेश किया, त्योंही तृष्णा कुमारी ने मनमोहिनी मुस्कान बिखेरते हुये आगन्तुक से हाथ मिलाया। जीवराम तृष्णा के सौन्दर्य को देखते ही मोहित हो गया। मनीराम भी दौड़ते हुये जीवराम के पास आया, और उसने आगन्तुक को प्रेम-पूर्वक गले से लगा लिया। दोनों उसे उस कमरे में ले गये, जो उसके लिये निश्चित कर दिया गया था। कमरा क्या था, साक्षात् सौन्दर्यपुरी ही था। क्या नहीं था उस कमरे में!

जैसे ही उसने सोफे पर अपने को हल्का किया, वैसे ही विलास और सम्पत्ति ने धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश किया। उनके अंग-अंग से मधुर वासना छिटक-सी रही थी। उनके नेत्र लज्जा से झुक-से गये थे। जीवराम ने मुग्ध होकर उनकी ओर देखा। उसके सामने दो रमणीय अप्सरायें खड़ी थीं। वे वशीकार के अलंकारों में मेघमाला-सी लहरा रही थीं। उनके नेत्रों से वारुणी बह रही थी। क्या जीवराम ने इसकी कल्पना भी की थी कि पृथ्वी पर ही ऐसी अनुपम परियाँ हो सकती हैं!

विलास और सम्पत्ति जीव के बिल्कुल समीप आ गई थीं। विचित्र प्रकार की मुस्कान बरसाते हुये उन्होंने जीव को सुवासित 'मदन-मस्त' के फूल भेंट किये। यह सब देखकर जीव मोह के नशे में अपने आपको पूरी तरह भूल कर मस्त हो गया। दोनों सखियों ने मिल कर जीव को अपनी गोद में ले लिया।

इस प्रकार 'संसार-सराय' में आकर चिरयात्री जीवराम लाला मनीराम, विलास, सम्पत्ति और तृष्णा से प्रभावित होकर अपनी मात्रा का उद्देश्य ही भूल गया। तृष्णा जीव को उपरोक्त षट्-रस व्यंजन खिलाती; दोनों सखियाँ उसे अपनी गोद में सुलातीं; मनीराम उससे मीठी-मीठी बातें करता। और, जीवराम अचेत-सा हो गया था।

दिन बीतते गये। जीव यह तो भूल ही गया कि उसे कहाँ जाना था, और वह अनादिपुरी से क्यों निकला था। उसको हर प्रकार की सुख-सुविधाएँ प्रदान की गई थीं, परन्तु उन सबके बदले उसे कुछ देना पड़ता था। उसे उस कमरे का किराया भी पटाना पड़ता था। संसार में हमें बहुत चीजें मिलती हैं, पर बदले में हमसे हमारी जवानी, बुढ़ापा, दुःख और सुख कीमत के बतौर ले लिये जाते हैं। किसी भी तरह की रियायत नहीं !

जीवराम ने उस सराय में बहुत दिन बिता दिये। जब-जब वह अपनी यात्रा के उद्देश्य पर विचार करता, तब-तब मनीराम हँसते हुये कहता था–

'अरे मित्र, तुमको क्या हो गया है? तुम तो हवा को बाँधने की चेष्टा कर रहे हो। ब्रह्मपुरी आकाश का चाँद है। मनुष्य के छोटे हाथ वहाँ नहीं पहुँच सकते। वह राह काँटों वाली है। सैकड़ों वर्ष कठिन तपस्या करके भी तपस्वी ब्रह्मपुरी नहीं पहुंच पाये। तुम्हारी-हमारी क्या बिसात! विश्वामित्र सरीखे वज्र-तपस्वी भी मुँह की खा गये। ब्रह्मपुरी की यात्रा तलवार की धार पर नाचने के समान है। उस पर नाचो तो कट मरोगे; चलो तो गिर पड़ोगे।'

मनीराम का ऐसा युक्तियुक्त व्याख्यान सुन कर जीव न केवल भयभीत हुआ, वरन् उसने ब्रह्मपुरी की यात्रा के बारे में सोचना भी छोड़ दिया। इस प्रकार उसने वहाँ चौरासी दिन बिता दिये।

एक दिन की घटना है। उसी सराय में एक वयोवृद्ध सज्जन उतरे। वे ब्रह्मपुरी से आ रहे थे। उनकी आकृति भव्य और दृष्टि तेजस्वी थी। वे युग-द्रष्टा-से लगते थे। वे भी उसी सराय में उतरे, जहाँ हमारा यात्री पिछले चौरासी दिनों से उतरा हुआ था। लोग उन्हें 'गुरुदेव' के नाम से पुकारते थे।

जब-जब दिव्य जीवन का ह्रास होता है, आसुरी सर्ग का प्रकोप बढ़ने लगता है, तब-तब प्रभु ब्रह्मपुरी से किसी को भेजते हैं, जो भटके हुये लोगों को सही मार्ग दिखाकर उनका कल्याण करता है। जब जीव अपनी महिमा का विस्मरण कर अपने को मांस का लोथड़ा और रक्त की पाइप-लाइन भर समझ लेता है, और जब वह इस संसार को ही अपना स्थायी निवास मान

कर, वहाँ आराम के साथ पैर पसार कर गहरी नींद में सो जाता है, तब पीर, फकीर, दरवेश और गुरु ऐसे ही यात्रियों को ब्रह्मपुरी ले जाने के लिये अवतरित होते हैं।

गुरुदेव उसी होटल में ठहरे, जहाँ जीव मोह-मदिरा की बोतल-पर-बोतल खाली कर रहा था, बोतलों की मस्ती में झूम रहा था, *'बॉल-डान्स'* कर रहा था, और *'रॉक-एन्ड-रोल'* के तराने गा रहे था।

यह *'रॉक-एन्ड-रोल'* क्या बला है? यह वस्त्राभूषण आदि की चर्चायें हैं। इंग्लैण्ड में युवक-युवतियाँ परम आकर्षक वस्त्रादि पहन कर केवल दिखावे के लिए चर्चों में जाया करते हैं। चर्च जाने का उनका उद्देश्य केवल यही रहता है कि उनके परिचित अथवा अपरिचित उनकी ओर आकर्षित हो जायें और उनकी प्रशंसा करें। इसी तरह सुनते हैं कि पंजाब में औरतें मन्दिरों में जाती हैं केवल इसीलिये कि वे अपनी साड़ियाँ और सूरत दूसरों को दिखला सकें। हिन्दुस्तान की सभ्य महिलाएँ अत्यन्त सुन्दर वस्त्र पहन कर बाजारों में घूमती, और कुछ नहीं तो शाक-भाजी के भाव पूछती रहती हैं। पर उनका मन चारों ओर फिरता रहता है। इन्हीं को हमारे व्यक्तिगत जीवन का *'रॉक-एन्ड-रोल'* कहा जाय तो क्या हर्ज है?

गुरुदेव ने जीव को मोह-माया में लिप्त पाया तो उनको उस पर दया आ गई। उन्होंने जीव को सही मार्ग पर लाने का संकल्प किया। फलस्वरूप जीव और गुरुदेव के बीच कुछ इस प्रकार का वार्तालाप चला–

**गुरुदेव** – तुम यहाँ कब आये?

**जीवराम** – मुझे याद नहीं। पर हाँ ... आप भी तो नये लग रहे हैं। आपकी तारीफ?

**गुरुदेव** – मैं यात्रियों का मार्गबन्धु हूँ। मेरा आना ब्रह्मपुरी से हो रहा है। मेरा नाम गुरुदेव है।

**जीवराम** – आपका धन्धा?

**गुरुदेव** – यात्रियों को अनादिपुरी से ब्रह्मपुरी ले जाना।

**जीवराम** – तो आपने ब्रह्मपुरी देखी है!

**गुरुदेव** – क्यों नहीं?

**जीवराम** – यह तो बड़ी मजे की बात कह दी। तो क्या वहाँ संसार की जैसी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं? मेरा मतलब है कि क्या वहाँ डबल-

रोटी, मक्खन, केक, पेस्ट्री, मटन्, मछली, चॉप्, चटनी, बिरियानी, सैन्ड्-विच् आदि भी मिलते हैं?

**गुरुदेव** – प्यारे बच्चे, तुम इन सबके बिना ही वहाँ सन्तुष्ट हो जाओगे। सन्तोष से मिलने वाला आनन्द कहीं अधिक कीमती होता है।

**जीवराम** – अच्छा, तो क्या वहाँ भी मनोरंजनार्थ ऐसी सुन्दर नाचने वाली परियाँ मिलती हैं? और, वहाँ निवासादि का ऐसा ही सुन्दर प्रबन्ध तो है न?

**गुरुदेव** – प्रिय वत्स, वहाँ तो सनातन काल से ही नृत्य होता आ रहा है। वह भी ऐसा नृत्य, जिसे संसार की कोई भी नर्त्तकी नहीं कर सकती। न जाने कब से वहाँ राधा-कृष्ण की रास-लीला हो रही है। न जाने कब से शिव-शक्ति का ताण्डव नृत्य हो रहा है। ब्रह्म के निर्वाण-पद के सामने ये मखमली गद्दे और तकिये भी भला कोई चीज हैं। उस दिव्य धाम में पहुँच जाने पर अनहत विश्राम और सान्तवना की प्राप्ति होती है। वह धाम कितना दिव्य है और कितना कोमल, यह कौन कहेगा!

**जीवराम** – तब वे क्यों कहते हैं कि ब्रह्मपुरी की राह काँटों से संकुलित है, प्रत्येक काँटा उतना ही पैना, जितनी चमकती तलवार की धार?

**गुरुदेव** – तुम मेरे साथ चलोगे तो मैं तुम्हें सकुशल वहाँ पहुँचा दूँगा। मुझे मार्ग की खाइयों का पता है। मुझे राह भी मालूम है। मैं मार्ग पर मिलने वाले प्रलोभनों को भी पहचानता हूँ। यदि तुम मेरा हाथ पकड़ लोगे तो आराम और सुख के साथ वहाँ पहुँच पाओगे। मेरे पास प्रकाश भी है।

**जीवराम** – तुम नहीं जानते हो कि जो कुछ पूंजी मेरे पास थी, वह खत्म हो गई है। इस समय मैं एकदम निर्धन हूँ।

**गुरुदेव** – तुम मेरे साथ चलोगे तो तुम्हें पैसे की आवश्यकता नहीं रहेगी। मुझे तुम्हारा धन नहीं, आत्मा चाहिये। अपने जीवन की बागडोर इधर दे दो। जीवन का श्रम, हार-जीत और सब कुछ मुझ पर डाल दो। बस!

**जीवराम** – मैं इसके लिये कब से तैयार हूँ।

**गुरुदेव** – जो कुछ भी मैं कहूँ, वही तुम्हें करना होगा। शराब की बोतलों को फेंक दो। अण्डे और मांस की प्लेटों को फेंक दो। तृष्णा,

विलास, सम्पत्ति और मनीराम के पास जाना छोड़ दो। उनसे अभी और यहीं सम्बन्ध-विच्छेद कर डालो।

**जीवराम** – आपके कथनानुसार ही करूँगा। परन्तु ... *(तृष्णा के नखरे, मधुर व्यवहार और कोमलता का स्मरण हो आता है)* अगर मैं तृष्णा को भी अपने साथ पार्टनर के रूप में ले चलूँ तो कुछ हर्ज है? उसे मेरे बिना यहाँ अच्छा नहीं लगेगा।

**गुरुदेव** – तुम उसे अपने साथ कैसे ले जाओगे? वह तुम्हारे साथ चलेगी ही नहीं। किस धोखे में पड़े हो तुम? वह तुम्हारी नहीं, वरन् तुम ही उसके हो। वह तो निर्लज्ज डायन है। तुम क्या जानो कि उसने तुम्हारे सरीखे न जाने कितने जीवों का भोग किया है, जो अब रो-रोकर जीवन बिता रहे हैं।

चौरासी लाख योनियों के पश्चात् जीव जब इस ज्ञान-योनि में जनमता है तो तृष्णा का दास बन जाता है। वही उसके ऊपर शासन करती है। तृष्णा मानो संसार की स्वामिनी है, और संसार उसके पैरों पर! संसार उसके इशारों पर कठपुतली की तरह नाच रहा है। जीव भले ही उससे प्यार करे, पर वह क्या किसी से प्यार करती है? नहीं देखते हो कि वह आध्यात्मिक शक्ति, जीवन एवं सत्त्व को रक्त की तरह चूसकर जीव को तभी छोड़ती है, जब वह मात्र कंकाल रह जाता है; अपना खोखला भविष्य लेकर दुर्भाग्य के थपेड़ों में कभी कहीं तो कभी कहीं भटकता फिरता है?

गुरुदेव द्वारा सत्य से अवगत होने पर भी जीव इस परम सत्य को समझ न पाया; उसने तृष्णा को भी अपने साथ ले चलने का निश्चय कर ही लिया।

इधर तो यह घटना घट रही थी, उधर मनीराम को यह सूचना मिल गई कि कोई बाबाजी उसके प्रिय मित्र जीव को *'परम मंत्र'* की दीक्षा देने वाले हैं। अरे, यह कैसा अमंगल समाचार कि जीव मनीराम की सराय को छोड़कर ब्रह्मपुरी चला जायेगा! अब तो उसका एक मित्र कम हो जायेगा। उचित तो यही होगा कि कुछ *'इमीडियेट् ऐक्शन्'* लेकर, जीव को बाबाजी के चंगुल से मुक्त किया जाय।

तृष्णा को भी यह पता चला कि उसके परम-योग्य जीव ने ब्रह्मपुरी जाने की ठान ली है। अब तो पूछना ही क्या; उसका आराम हराम हो गया। उसने तुरन्त मोह को मोर्चेबन्दी का आदेश तो दिया ही, साथ-ही साथ माया की अजेय और अपरिमित सेना को दुर्ग के चारों ओर तैनात भी करवा दिया, जो

महासम्राट् वैराग्य की उमड़ती हुई शक्तियों से टक्कर लेती रहे। माया की सेना क्या थी, जादू का पिटारा ही समझिये।

उधर मनीराम जीव को उपदेश दे रहा था–

'ओ जीव, मेरी आत्मा के टुकड़े, मैंने कितने अरमान सँजोकर तुम्हें पाला-पोसा? मैंने कितना प्यार तुम्हारे लिये बहाया? अब इस बुढ़ापे में मुझे छोड़ देने का दुस्साहस तुमने कैसे किया? मेरे चेहरे की झुर्रियों और बालों की सफेदी का विचार तो करते, भले आदमी। केवल तुम ही मेरे अवलम्ब हो; अन्धे की लकड़ी हो। क्या तुम्हें मेरे अहसान याद नहीं आते? तुम्हारा तो कर्त्तव्य था कि तुम मेरी सेवा करते, और यह तुम क्या करने लग गए?

'इन 420 बाबाजी लोगों के धोखे में आकर भटको मत। यह कलियुग है। बच्चे, मैंने दुनियाँ देखी है। देखते-देखते मेरे बाल भी पक चुके हैं। यह बाबाजी केवल तुम्हारे जैसे सीधे-सादे लोगों को उल्लू बनाने के लिये आते हैं। ये अपना उल्लू-सीधा करने वाले होते हैं और सीधे लोगों की जेबें काटने के लिये आते हैं। ये लोग आश्रम बनाने के लिये धन एकत्रित करते हैं; तुम जैसे भोले पंछियों को अपने जाल में फँसाने के लिये कहते हैं कि उन्होंने भगवान को देखा है।'

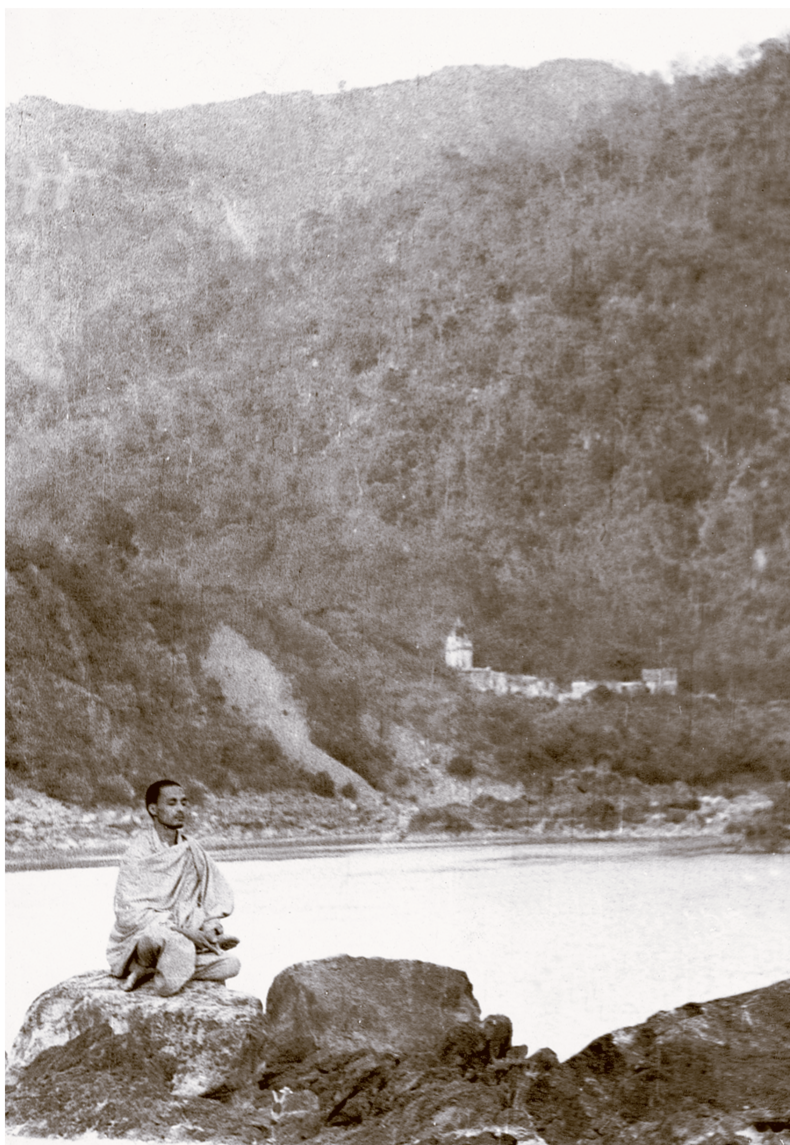
'अरे बाप रे! बड़े-बड़े सन्त भी जब वर्षों तक कठिन तप करके उसे न पा सके तो इन युवा साधुओं की सूरत तो देखो! यह ठीक है कि वे कुछ काल तक एकान्त में रहकर माला फेर लेते हैं और सोचते हैं कि *'कुछ'* हो गए हैं। भगवान् कोई माटी का खिलौना तो है नहीं कि होटल और बाजार के भाव मिलता है। मैं कहता हूँ भगवान् का दर्शन करना लोहे के चने चबाना है। प्रश्न यह है कि क्या किसी ने भगवान् को देखा है? यदि कोई 'हाँ' कह दे तो मैं उसे चैलेंज देता हूं कि वह क्या मुझे भी दिखला सकता है? यह तो मात्र अन्धविश्वास है, बेमतलब बातें हैं। कहते हैं कि भगवान् सशरीर दर्शन देते हैं और साधारण मनुष्यों की ही तरह बातचीत करते हैं।'

'बड़े दुर्भाग्य की बात है कि भारत में अनेकों भगवे-कपड़े-धारी धर्मोपदेशक के वेष में इधर-उधर घूमते हैं। वे समाज और मातृभूमि पर बोझ-स्वरूप हैं। वे धर्म की आड़ में खाते, पीते, मौज उड़ाते तथा अनजान लोगों को लूटते हैं। उन्हें रूस भेज दिया जाय तो पता चलेगा कि कम्यूनिस्ट लोग उनको कैसे ठीक करते हैं! रूस में भगवे कपड़े वाले लोफर नहीं हैं, इसीलिये वे दिनोंदिन उन्नति कर रहे हैं। भारत के लोग धर्म और भगवान्

के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। यही कारण है कि वे गरीबी से घिरे रहते हैं। भारत के गाँवों में जाकर ग्रामीणों की दयनीय दशा तो देखो। वे धार्मिक अन्धविश्वास, दरिद्रता, अज्ञान, निरक्षरता और असभ्यता के शिकार बने पड़े हैं। उनके पास खाने के लिये अन्न न भी हो, पर देवी के मन्दिर में नारियल अवश्य चढ़ाएँगे। अरे मूर्ख, तुम भी ऐसे कार्यों में हिस्सा लेकर न केवल असामाजिक कृत्यों को प्रोत्साहन देते हो, वरन् अपने देश के विनाश में सहयोग भी देते हो।'

**जीवराम** – चाचा, नाराज न होवें। क्षमा करेंगे। मैं तो कहूँगा कि भारत का पतन धर्म के कारण नहीं हुआ, बल्कि इसलिए हुआ कि भारतीयों ने सच्चे धर्म को पहचान कर, उसको व्यवहार का रूप नहीं दिया। जब तक भारत के लोग वेदान्त-सम्मत जीवन बिताते थे,तब तक के इतिहास को देखो–सिकन्दर महान् एक साधारण राजा पौरव के सामने भी न टिक सका। जब से भारत ने वेदान्त के व्यवहार को छोड़ा, तब से ही वह शनैः शनैः निर्धन होता गया। इसीलिए मैंने वेदान्त के पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प किया है, जिससे मैं घर-घर उसका प्रचार करके समाज को एक नया मार्ग बतला सकूँ।

**मनीराम** – *(जीव के युक्तियुक्त तर्क से दबते हुए, पर साहस के साथ)* बच्चे, मुझे समझने की कोशिश करो। तुम भगवान् को भला कैसे देखोगे, जब तक तुम्हारे हृदय में वासनायें हैं? वासनाओं को सन्तुष्ट करने के लिए इच्छाओं की पूर्ति करनी पड़ती है। अन्यथा वे वासनायें चित्त के किसी कोने में दबी रहती हैं, और अवसर पाकर प्रकट होती हैं। विश्वामित्र-सरीखे महान् ऋषि भी अवसर मिलने पर विकट परीक्षा में असफल हो गये। जब देवराज इन्द्र ने उनके योग को भंग करने के लिए मेनका जैसी सुन्दर अप्सरा को भेजा तो वे चंचल हो गए। क्या तुम यह कहना चाहते हो कि ये सन्त बाबा इच्छामुक्त होंगे? नन्हें बच्चे, तुम अभी कच्चे हो, अधखिले हो, नए पाहुने हो। तुम इनकी तिकड़म क्या जानो! खैर, तुम्हें चाहिए कि अभी तुम भरपूर आनन्द लूटो। बुढ़ापे में चाहो तो जी भर कर माला फेर सकते हो।













जीवराम ने स्पष्ट शब्दों में उत्तर देते हुए कहा, 'चाचा, मुझे आपके पके बालों पर दया आ रही है। क्या यह भी आपको बतलाऊँ कि वासनाओं को पूरा करने का अर्थ है अग्नि में घी की आहूतियाँ देना। वासना की पुनरावृत्ति से संस्कार बनते हैं, जिनका निरोध असम्भव-सा हो जोता है। वही संस्कार-शक्ति पुन: पुन: वासनाओं की पूर्ति के लिए मनुष्य को प्रेरित करती है। यह चक्कर तब तक चलता है, जब तक मनुष्य उस इच्छा का दास न हो जाय। अच्छा तो यही कि वैराग्य-रूपी तलवार लेकर समस्त वासना-समूह को एक-एक कर समाप्त कर दिया जाय। जब तक उनका पूर्ण निरोध न हो जाय, तब तक वैराग्य-प्रहार होता ही रहे।'

'अब रही सन्तों की बातें। मैं तो यही कह सकता हूँ कि उनके मस्त और अनेकार्थक कार्य और व्यवहार को समझना तुम्हारे बूते के बाहर है; क्योंकि वे सदैव ईश्वर की आज्ञा के अनुसार चलते हैं; और उसी प्रकार उनका शरीर भी वैसे ही चलता है, जैसे एक *ऑटोमैटिक मशीन*। उनके लिए न तो कुछ भला है, न बुरा ही। पाप-पुण्य का सवाल तो हमारे लिए है; क्योंकि हमारी चेतना का लगाव शरीर से है। सन्त जन अपने आपको महान शक्ति के अनुरूप ढालते हुए चलते-फिरते और रहते हैं।'

'आपकी राय है कि मुझे जवानी में सांसारिक सुखों का उपभोग करना चाहिये। मंजूर! पर मैं पूछता हूँ कि कष्ट के आ पड़ने पर जब आप भगवान् का नाम लेकर उन्हें फूल चढ़ाते हो तो क्या बासी फूल चढ़ाते हो? निश्चय ही ताजे! क्यों? इसलिए कि वह महान् है; उसे निर्माल्य नहीं चढ़ता। जब प्रतिमा के प्रति यह भाव रखा जाता है तब चेतन-स्वरूप प्रभु के प्रति कम-से-कम यह भाव तो होना ही चाहिए। क्या उसे वृद्धावस्था-रूपी निर्माल्य चढ़ाने से आनन्द और सन्तोष मिल सकेगा? क्या हमें प्रभु को अपनी तरुणावस्था समर्पित नही करनी चाहिए? यह कैसा तमाशा है? हमारी जवानी तो भोगों में खतम हो जाती है; बुढ़ापा, दु:ख; रोग और चिन्ता में। फिर जब संसार हमें ठुकराता है, हम असहाय हो जाते हैं और हमारी जरूरत परिवार को नही रहती, तब हम मजबूरन परमपिता परमेश्वर की शरण में जाते हैं। हमारा पिता इतना नासमझ नहीं है कि वह हमारी इस धूर्तता को न समझे! मैं पुन: आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप मुझे गुरु जी के साथ जाने की अनुमति सहर्ष प्रदान करें, और आशीष भी दें कि मैं सफलतापूर्वक ब्रह्मपुरी पहुँच जाऊँ।'

मनीराम निराश हुआ, लेकिन अन्तिम कुटिल जाल फेंकते हुए कहा, 'शाबाश बच्चे, मैं तुझे परख रहा था। तू सच्चा साधक और जिज्ञासु निकला। मुझे तुझ पर गर्व है। मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूँ। तो आ, मैं तुझे सही रास्ता बतलाऊँ।'

थोड़ी देर के लिए आँखे बन्द करके, मनीराम ने पुनः कहा, 'तू अपने ऊपर पक्का विश्वास रख। इन बाबाजी लोगों के फेर में मत पड़। ये बड़े कपटी होते हैं; तुझे भटका न दें। तू तो जानता ही है कि ईश्वर अन्तर्यामी और घट-घट में विद्यमान है। तुझे ईश्वर की खोज में हिमालय जाने की आवश्यकता नहीं है। बल्कि परिवार के उत्तरदायित्व निभाते हुए घर पर ही योग-साधना का अभ्यास कर लेना चाहिए। शान्त, स्वस्थ और सरल बन। संसार में रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहना सीख ले। जब तक चित्त में विक्षेप हैं, तब तक गुफा में रहने का कोई अर्थ ही नहीं है। मन को सच्चे रंग में रंगाना होगा पहले। फिर परिस्थितियों से समझौता करना सीखा जाये। साधक चाहे कुछ भी खाये, पिये, देखे, सुने या सोचे, पर अनासक्तिपूर्वक व्यवहार करे। सोचना चाहिये *'अहं ब्रह्म अस्मि'*। परन्तु परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्य अवश्य किये जायें। संसार में रहते हुए भी उसमें लिप्त नही रहना चाहिये; जैसे कमल जल में रहते हुए भी जल से निर्लिप्त रहता है; जैसे नाव जल पर तैरते हुए भी जल से निर्लिप्त रहती है; जैसे जीभ दाँतों के बीच रहते हुए भी दाँतों से संभल कर रहती है। राजा जनक ने राज्य किया, भोग भोगे, फिर भी वे 'विदेहमुक्त' थे। ऐसे ही तू भी घर में रह कर, जैसा चाहे, वैसा कर। मेरा आशीष सदा तेरे ऊपर है। पर हाँ, किसी बाबाजी के साथ न जाना। मैं अपने आत्मीय को किसी के चंगुल में नहीं देखना चाहता। मैं तेरा शुभ-चिन्तक हूँ, तेरे हित की बात कहता हूँ। अब तुझे जैसा जँचे, वैसा ही कर।'

जीवराम ने कहा, 'मेरे शुभ-चिन्तक, मैं तुम्हारा आभार मानता हूँ, जो तुमने मुझे ऐसी सुन्दर और उपयोगी सलाह दी। मैं तुम्हारे प्रवचन से प्रभावित हुआ हूँ। तुमने जो कुछ भी कहा, सत्य है। मैं बच्चा ही ठहरा। मैने बचपने के जोश में तुमसे कुछ अनुचित भी कह दिया हो तो उसे हृदय में न लाना। मैं तुम्हारे कथनानुसार ही चलूँगा।'

'मुझे खुशी है कि तुम्हें सद्-बुद्धि आ गई है और तुम प्रत्येक चीज को सही दृष्टिकोण से देखने लग गए हो,' मनीराम ने प्रसन्न वाणी में कहा, 'मुझे तुमसे यही आशा थी। आओ, मैं तुम्हें जी भर कर आशीष दूँ। अब तुम अपने

निश्चय पर अटल रहना। किसी के चक्कर में न पड़ना। अनासक्त रहकर जीवन के सुखों का भोग करो। अच्छा, तो फिर मिलेंगे।' *(ऐसा कहकर मनीराम चला जाता है। मुख पर विजयोल्लास की मुस्कान खिली है; दोनों हाथ आसमान की ओर जुड़कर उठ गए, मानो वह किसी अज्ञात से प्रार्थना कर रहा हो कि उसकी विजय अटल रहे।)*

गुरु की कृपा भी हुई। जीव को अपना लक्ष्य भी याद आया। वह वैराग्य से भरपूर था। परन्तु वह वैराग्य भी क्षणिक ही निकला। अत: जब मनीराम ने पूरी ताकत लगाकर युक्तियुक्त तर्क की आड़ में जीव पर हमला किया तो जीव ने अपनी हार मान ली।

रात हो गई। जीव सोने के लिए कमरे में गया। वह बत्ती बुझाना ही चाहता था कि गुरुदेव 'अन्दर' आ गये। भक्त भगवान् को भले ही भूल जाये, परन्तु भगवान् भक्तों को कभी नहीं भूलते। जिसके जीवन का सूत्र गुरु के हाथों में आ गया, वह भाग्यवान् है; क्योंकि गुरुजन शिष्य पर कृपा बरसाना कभी नहीं छोड़ते। कुछ पंछी इस वृक्ष को छोड़कर दूसरे पर बैठ जाते हैं। गुरु की बात दूसरी ही है। वे जिसको शिष्य-रूप में चुन लेते हैं, उसे तब तक नहीं छोड़ते, जब तक वह तदाकार न बन जाय।

जीव ने आस्तीनें सँभाल लीं। ज्योंही गुरुदेव ने पूछा कि क्या वह बड़े तड़के आगे चलने के लिए तैयार है; त्योंही वह बहस पर तुल गया। मनीराम ने उसके कान फूंक ही दिये थे; वह गुरुदेव से, वेदान्त की आड़ में, बहाना करने लगा। उसने मनीराम की सीख के अनुसार ही गुरुदेव की बातों का उत्तर दिया। परन्तु अँधियारा, कितना घना क्यों न हो, सूर्य की प्रखर रश्मियों के सामने नहीं टिक सकता। *'मनीराम-छाप'* वाले तर्क गुरुदेव के सामने फेल हो गए। मोह निरस्त होने लगा। वैराग्य जागने लगा। गुरु ने मैदान मार लिया। उन्होंने जीव को पवित्र संन्यास-रूप में ढाल ही दिया। उसे भगवे परिधान पहनाये। दाहिने हाथ में कमण्डलु दिया।

इसी साज में दमकता हुआ जीव मुड़ा सिर लेकर तृष्णा से विदा लेने गया। तृष्णा ने ज्योंही जीव को उस विचित्र वेष में देखा, त्योंही वह बेहोश होकर गिर पड़ी। होश में आने पर उसने जीव की ओर अश्रु-प्लावित नेत्रों से देखा और सिसक-सिसक कर कहने लगी–

'ओह, मेरे प्रिय, जब मैं तुम्हें इस विचित्र परिधान और सूरत में देखती हूँ तो मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। तुमने यह क्या किया? तुमको क्या

हो गया है? तुम मुझे अकेली और असहाय छोड़ने का विचार स्वप्न में भी कैसे कर गए? तुम मेरी आत्मा के प्रेम और हृदय की चेतना हो! क्या तुम्हारे बिना मैं विधवा नहीं हो जाऊँगी? मेरी माँग को क्यों भूल जाते हो? अब से इसमें पवित्र सिन्दूर कौन भरेगा? हम दोनों सुख-दु:ख में एक साथ रहें। एक साथ ही हमने सिनेमा और पार्टियों में आनन्द लूटा। मुझे अकेला मत छोड़ो; मैं नहीं रह पाऊँगी। याद करो वह वचन, जो तुमने शादी के रोज अग्नि को साक्षी करके दिया था कि तुम सदा साथ रहोगे। हाय, जब बसन्त फूलेगा, तो किसके साथ मैं गीत गाऊँगी? किसके साथ नाचूँगी? होली में मैं किसे रंग से नहलाऊँगी? किसके लिए मैं सोलह-शृंगार करूँगी? जब तुम नहीं रहोगे तो मुझे देखकर कौन कहेगा–'प्रिय, आज तो स्वर्ग की अप्सरा दीखती हो।' मैं पैर पड़ती हूँ कि मत जाओ, मत जाओ। मैं तुमसे तुम्हारी भीख माँगती हूँ,' कहते-कहते वह मूर्च्छित हो जाती है। जीव उसे अपनी बाहों में भरकर अश्रु-विह्वल नेत्रों से उसकी ओर निहारते हुए कहता है–

'प्रिये, मन को छोटा मत करो। मैं सदा से तुम्हारा ही हूँ। दस-पाँच पुरश्चरण करने के बाद मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा। पल भर के लिए भी मैं तुमको नही भूलूँगा। मेरी बातों पर विश्वास रखो। मैं शीघ्र वापस आ जाऊँगा और तुम्हें समस्त सुख-सुविधायें प्रदान करूँगा।'

तृष्णा ने उसके हाथों को पकड़ कर उसकी ओर स्नेहपूर्वक देखते हुए कहना प्रारम्भ किया–

'नहीं, नहीं, नहीं, प्रिय, मैं एक दिन के लिए भी तुम्हारा वियोग नहीं सह सकूँगी। दूसरी बात यह भी है कि यात्रा में तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा करेगा कौन? ठीक समय पर तुम्हें कौन खिलाएगा? कहीं तुम्हारा स्वास्थ्य न गिर जाय; कहीं तुम बीमार न पड़ जाओ! जब तुम चलते-चलते थक जाओगे, तब कौन तुम्हारे पैर दाबेगा? कौन तुमसे आराम करने के लिए कहेगा? और मैं यहाँ वियोग के कारण अँगुलियों पर दिन काटूँगी और तारों पर रात। जब मैं इस वियोग की बात सोचती हूँ तो कल्पना मात्र से ही सिहर उठती हूँ। मैं तुमसे फिर प्रार्थना करती हूँ कि मत जाओ; मुझे अकेला मत छोड़ो।'

जब जीवराम ने तृष्णा का ऐसा प्रगाढ़ प्रेम देखा तो उसका हृदय द्रवित हो गया। उसने सोचा कि यह सौ टके विशुद्ध प्रेम है। गुरुदेव गलत कहते थे। उनकी भी क्या गलती; आखिर कुँआरे जो ठहरे। उन्हें क्या मालूम कि दो प्रेमी अपने हृदयों में एक-दूसरे के लिए कितना प्यार छिपा कर रखते हैं?

उन्हें इस विषय का ज्ञान हो ही कैसे सकता है? मैं तृष्णा के बिना नहीं रह सकूँगा। क्यों न जाकर उनसे यह सब खुलकर कह दूँ?

जब जीव तृष्णा को त्यागने में असमर्थ हो गया तो पुन: गुरुदेव के पास गया। उनके सामने उसने तृष्णा के सच्चे प्रेम और अपने जीवन में उसकी अनिवार्यता का रोना रोया। वह यहाँ तक कह बैठा कि वह ब्रह्मपुरी जायेगा जरूर; पर तृष्णा को संग लेकर ही।

श्री शंकराचार्य और योगी भर्तृहरि ने इसी तृष्णा के विषय में बहुत कुछ लिखा है। भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है कि तृष्णा कभी वृद्धा नहीं होती और न ही कभी मरती है। शरीर बुढ़ापे के कारण झुक गया है, चेहरा सूख गया है, बाल झुलस चुके हैं; पर तृष्णा का रूप दिनों-दिन निखरता ही जा रहा है।

श्री शंकराचार्य जी ने भी ठीक ही कहा है—यद्यपि केश झड़ गए हैं, दाँत गिर गए हैं; तथापि तृष्णा पिण्ड नहीं छोड़ रही है। शरीर मिटते जा रहे हैं, तृष्णा खिलती जा रही है। जीव झुलसते जा रहे हैं; तृष्णा मुस्कुराती चली जा रही है। जैसे-जैसे जीवन शेष होने जा रहा है, वैसे-वैसे तृष्णा का वेष अपनी अशेष तृप्तियों में नित्य नवीन होता जा रहा है।

जब गुरुदेव ने जीव की तृष्णा-कातर बातें सुनीं, तब उन्होंने उसे फिर समझाया—'बच्चे, तृष्णा कभी भी तुम्हारी नहीं हो सकती। तुम किस धोखे में हो?' यह कह कर उन्होंने जीव को उठाया और उसे बाहर ले गए।

आधी रात हो गई होगी। अँधेरा ही अँधेरा। न प्रकाश, न तारे। बादल छाए थे। सन्नाटा! दोनों कुछ दूर जाकर, एक कमरे के दरवाजे से लग कर रुक गए; और अन्दर चल रहे वार्त्तालाप को ध्यान से सुनने लगे। वार्त्तालाप क्या था, जीव को जगाने वाली चेतावनी थी। तृष्णा अपनी चिर-अभ्यस्त मीठी आवाज में किसी से कह रही थी—'... प्यारे, केवल तुम ही एक व्यक्ति हो, जिसे मैं जानती हूँ और प्यार करती हूँ ...।'

जब जीव ने यह वार्त्तालाप सुना तो उसके अंग-अंग जग गए। वह जान गया कि तृष्णा किसी दूसरे को उसी प्रकार प्यार कर रही है, जिस प्रकार वह उससे करती है। उसका सपना टूट गया। उसका भ्रम मिट गया। उसका रहा-सहा मोह भी गल-गल कर पानी हो गया। अन्धकार अस्त हो गया। एक मर्म-व्यापिनी किरण की प्रकाश में जीव को सत्य के दर्शन हुए। पश्चात्ताप की गंगा-यमुना बहने लगी और उसने गुरु-चरणों में शीश झुका कर क्षमा माँगी। उसने कहा—'गुरुदेव, आज ही मुझे मालूम हुआ है कि तृष्णा वेश्यामात्र

है। सभी उसके प्रेमी हैं और सबकी वह प्रेमिका है। उसका प्रेम धोखा है। वह माया फैला कर इसी प्रकार सबको गुमराह कर देती है। अब मैं उसकी असलियत जान गया हूँ। अब आप ही मुझे राह दिखायें।'

इसी तरह आधी रात में ज्ञान और अज्ञान, सत्य और असत्य, कौरवों और पाण्डवों के बीच युद्ध होता है। कुरुक्षेत्र में चौरासी लाख योनियों के पटाक्षेप होते जाते हैं। जीवात्मा सत्य-पथ पर चलना चाहती है। श्री कृष्ण गुरु के रूप में अवतरित होकर अर्जुन को उपदेश देते हैं। यही *'कुरुक्षेत्र की लड़ाई'* और *'जीवन की गीता'* है।

धृतराष्ट्र को पूरी गीता सुना देने के बाद संजय ने अन्तिम सत्य की घोषणा की– 'जहाँ योगेश्वर श्री कृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धारी अर्जुन हैं, वहाँ श्री, विजय और विभूति निश्चित हैं।'

## जन-जीवन में कुरुक्षेत्र

अब हमें यह जानना चाहिए कि जीवन के लक्ष्य पर कैसे पहुँचा जाए और कैसे जीवन में परमानन्द की अनुभूति होवे? याद रखो कि ब्रह्मपुरी के मार्ग में उन सब प्रलोभनों का सामना करना होगा, जो तुम्हारी परख करने के लिए प्रकट होते हैं। परीक्षा में खरे उतरे कि आगे बढ़े। अन्यथा वहीं के वहीं चक्कर खाना पड़ता है। प्रकृति हमें लात-घूंसे इसलिए मारती है कि हम निर्भीक बनें और पूर्णता प्राप्त करें।

आखिर मनुष्य चाहता क्या है? अधिक से अधिक आनन्द; यही न? यदि प्रभु तुमको एक बड़ा ऑफीसर बनाकर सांसारिक-सुख के समस्त भौतिक साधन दे दें तो क्या तुम सुखी हो जाओगे? यदि नहीं तो आखिर तुम चाहते क्या हो? तुम्हारे जीवन का उद्देश्य क्या है? तुम शायद यह कहोगे कि तुम्हारा लक्ष्य है अरबपति बनना। अच्छा मान लो, तुम अरबपति बन गए। और भी कुछ चाहिए क्या? हाँ, शायद एक पुत्र। पुत्र की कामना पूर्ण होने के पश्चात् तुम और कुछ पाने की कामना करोगे। तुम जितनी इच्छाएँ करते जाओगे, तुम्हें आनन्द पाने में उतनी ही देर लगेगी। याद रखो कि लक्ष्य की प्राप्ति हो जाने पर सारी इच्छाओं की पूर्ति अपने आप हो जाती है।

जीवन में सम्पत्ति, स्त्री, सन्तान, आदि सभी रेलवे-स्टेशनों की तरह आयेंगे और चले भी जायेंगे। जीवन की प्रत्येक इच्छा *'आनेवाले'* स्टेशन के

समान है। ऐसे ही स्टेशन और भी हैं। जीवन की इन इच्छाओं को पार करते हुए, कहीं भूल कर इन्हें जीवन का परम लक्ष्य न समझ बैठना।

जो कुछ भी होता है, वह सब भगवान् का संकल्प ही है। अपनी इच्छाओं को सर्वोपरि समझने वालों को शूल भी चुभते हैं, फूल भी मिलते हैं। अगर तुम प्रत्येक घटना में प्रभु के संकल्प की धारणा करोगे तो अनासक्त बन जाओगे। यही है गीता की शिक्षा।

मेरे लिए गीता जीवन का 'टाइम-टेबल' है। मैं इसे सफल जीवन की कुंजी मानता हूँ। गीता का एक ही शब्द समझ कर, उस पर मनन किया जाय तो वही शब्द सारी गीता कह देता है। *'अनासक्ति, योग, मत्पर, शरणागति, कर्मयोग, वैराग्य, स्थितप्रज्ञता'*–इनमें से कोई एक शब्द चुन कर मनन करना शुरू कर दो।

परन्तु अधिकांश लोग करते क्या हैं? थोड़ी देर गीता पाठ कर लिया और समझ लिया कि कर्त्तव्यों की इति-श्री हो गई। न तो हम उस पर मनन करते हैं, नहीं निदिध्यासन ही। क्या हम यह तो नहीं सोचते कि भगवान् गीता पढ़ते देख कर हम पर खुश हो जायेंगे? मातायें रामायण भी पढ़ती हैं, और पानी भरते समय कुएँ पर आपस में झगड़ती भी हैं। पण्डित जन वेदान्त भी पढ़ते हैं, साथ-साथ मेहतर, विधवा अथवा खाली बर्तन देखकर इस आशंका से भयभीत हो जाते हैं कि कुछ-न-कुछ अनिष्ट होने वाला है। यह भी कैसा अन्धविश्वास! धर्म निश्चय ही इससे भिन्न और ऊपर है। गीता कहती है–'भगवान् एक है; मानवता एक है; जीवन एक है; विश्व एक है; अनेकता आखिर है क्या, एक ही का विस्तार मात्र न?'

एक अकेला ही कई रूपों में प्रकट हो रहा है। हमने ही भगवान् के कई नाम धर दिये हैं, और विविध रूपों में उसकी कल्पना की है। इसका कारण है रुचियों की विचित्रता। अगर तुम साकार राम पर ध्यान करते हो तो कभी न कभी यह अनुभव करोगे कि साकार निराकार में परिणत हो गया है। भगवान् की आँखें नहीं, फिर भी वह देखता है; उसके हाथ नहीं, फिर भी वह काम करता है; उसके पैर नहीं, फिर भी वह चलता है; उसकी नाक नहीं, फिर भी वह सूँघता है; उसका मुँह नहीं, फिर भी वह खाता है। वह लिंग, जाति, वर्ण, शरीर और अन्य परिणामों से परे है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई अथवा सिक्खों का कोई अलग-अलग भगवान् थोड़े ही है! जो कुछ भी तुम देखते हो, वही ईश्वर रूप है। जो कुछ भी तुम सुनते

हो, वही ईश्वर-रूप है। अनन्त देवों के परम देव परमात्मा पर से श्रद्धा कभी न खोना।

बिजली पावर-हाउस से आती है। परन्तु परमात्मा की महिमा सर्वव्यापक है। आकाशवाणी से अभी भी संगीत प्रसारित हो रहा है। आवश्यक है कि तुम अपना रेडियो मिला लो। इसी प्रकार परमात्मा की महिमा सदैव तुम्हारे अन्दर है। तुम्हें अपने मन रूपी रेडियो को मिलाकर उसकी कृपा का अनुभव करना है। उस पर परम श्रद्धा रखो; क्योंकि उसकी कृपा न तो सूर्य की तरह जागती है, न चन्द्रमा की तरह क्षीण ही होती है। अमर है उसका प्रकाश, जो सबको समान रूप से प्रकाशित करता रहता है।

## कुरुक्षेत्र-विजय

कुरुक्षेत्र की लड़ाई समाप्त करो। अपने-अपने घरों में शान्ति स्थापित करो। अपने पड़ोसियों से झगड़ो मत। दूसरों की निन्दा भी न करो। किसी का बुरा करो ही क्यों? अपने आपको दिन भर किसी-न-किसी काम में व्यस्त रखो। चींटी, मधुमक्खी, वायु और सूर्य से सीख ग्रहण करो। क्या वे कभी भी विश्राम लेते हैं? कितनी दक्षता के साथ वे सतत् कर्मशील रहा करते हैं। हमारे भाई लोग सोने में उस्ताद बन जाते हैं; पर काम करने में कामचोर। देखो, जब कभी तुम्हें समय मिले, सिलाई और बुनाई का काम करते रहो; गरीब बच्चों को पढ़ाओ। भोजन भी बनाओ; भजन भी गाओ। काम करते रहो; नाम जपते रहो।

साथ-साथ इस बात का भी पूरा ध्यान रखो कि तुम्हारे व्यवहार से परिवार की शान्ति भंग न हो। अगर तुम्हारे पति नहीं चाहते कि तुम मन्दिर जाओ, तो कदापि मत जाओ। परमात्मा का चिन्तन मन में ही कर लो। अपनी साधना को यथाशक्ति गुप्त रखो। तुलसीदास जी ने कहा है कि ऐसे व्यक्ति को, जो ईश्वर के नाम से घृणा करता है, उसी समय त्याग दो, चाहे वह अपना परम प्रिय ही क्यों न हो। परन्तु तुम्हें करना कुछ और है। वह यह कि तुम्हारे पति यदि नहीं चाहते कि तुम परमात्मा का नाम जपो तो मुँह से कदापि मत जपो; वरन् मन-ही-मन में स्मरण करते रहो। आज तुलसी का युग नहीं है। समय बदल गया है। अब तुम्हें प्रत्येक व्यवहार को सही रोशनी में देखना होगा। जो कुछ भी कार्य तुम करो, वह परिवार की शान्ति को स्थिर बनाने में योग देवे। *वही व्यवहार जिससे परिवार में शान्ति स्थापित हो, धर्म कहलाता है।*

यदि सन्त और अभ्यागतों की सेवा करने तथा मन्दिरों में जाने से परिवार में मतभेद-जन्य संघर्ष उत्पन्न हो जायें तो समझो कि सत्कार्यों की संगति ठीक नही बैठ रही है। अच्छा हो, यदि उस कार्य को छोड़ ही दिया जाय।

सेवा करते समय स्त्री का रूप सेवक का हो जाता है; सलाह देते समय वह गुरु बन जाती है। पुरुष व्यवस्था करते हैं, स्त्रियाँ सेवा। परन्तु पुरुष अपने को स्त्री की अपेक्षा श्रेष्ठ समझता है; क्योंकि वह शक्ति का उपासक है। नारी कमजोर होती है; क्योंकि वह कोमलता की उपासना करती है। अधिकांश महिलायें मनोविज्ञान और व्यवहार-शास्त्र से अनभिज्ञ रहती हैं। प्रत्येक महिला को यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी है कि जब पति महोदय क्रोध करते हैं तो उसके पीछे कुछ-न-कुछ कारण तो होगा ही। यह बात वे तभी समझ सकेंगी, जब उन्होंने अपने पति के स्वभाव का आमूल अध्ययन किया हो। अर्थात् किसी व्यक्ति को पहचानना हो तो उसके अन्तरंग जीवन में प्रवेश करना होगा। केवल यही नहीं, बल्कि कई बार तो स्त्रियों के लिए बेहतर यही है कि वे अपने जीवन को, पति की रुचि और अरुचि की पूरी जानकारी रख कर, तदनुसार ढालें; अन्यथा कुटुम्ब की शान्ति केवलमात्र एक छोटे से धर्म के अभाव में, जिसे *'अक्ल'* या *'समझ'* कहते हैं, नष्ट हो जाती है। स्त्री के पास ही वह शक्ति है, जिसके सामने पुरुष को झुकना पड़ता है; अत: स्त्री को और कुछ नहीं करना है, मात्र तरीका जान लेना है। घर की शान्ति, देश और बच्चों का भविष्य प्रधानत: घर की स्त्रियों पर ही अवलम्बित है। जिन हाथों ने पलने झुलाए, वही समाज के भाग्य का निर्माण करते, अथवा सुख-शान्ति की कब्र भी खोद डालते हैं।

आप लोग खूब गप-शप लगाया करते हैं। इससे शक्ति कम ही होती है। प्रतिदिन 2-4 घण्टे मौन धारण करना चाहिए। बहुधा बोलते समय आप यह भूल जाते हैं कि मुख से कैसे शब्द निकल रहे हैं; दूसरों पर उनका प्रभाव क्या और कैसा होगा? अत: मेरी यह सलाह है– यदि आप अपने जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहें तो सोच-समझ कर बोलें। यह भी एक साइन्स है। इसकी टेक्निक् होती है। इसका भी अभ्यास करना पड़ता है। जो कुछ भी कहना है आपको, उसको जल्दी से एक बार मन में दुहरा लो। याने एक रिहर्सल् कर लो। पर यह जरूर विचारो कि आपके कहने से सुनने वाले की भावनाओं पर किसी तरह की चोट तो नहीं लगेगी। तभी आप इस साइन्स को पा सकेंगे। थोड़ा बोलो; मीठा बोलो; जरूरत पड़ने पर बोलो। कम-से-कम

इतना तो सोचो कि परमेश्वर ने तुमको कितनी कोमल जबान दी है। अभ्यास करते-करते आपको यह अनुभव हो जायेगा कि वज्रमूर्ख और कट्टर शत्रु भी कोमल वाणी से वश में किये जा सकते हैं। इस रहस्य को सहसा स्वीकारना कठिन है। शान्ति और एकाग्रता के अभ्यास से साधक तेजस्वी, सुन्दर और सहज प्रभाव वाला हो जाता है। उसके व्यक्तित्व में वशीकरण आ जाता है। अत: येन-केन प्रकारेण अपने जीवन को पहले की अपेक्षा सुन्दरतर बनाओ। यह नहीं कि आपके परिवार वालों का चेहरा सदा ऐसा गिरा हो, मानों दस्त हो रहे हों। *गीता से जीने की शक्ति और प्यार करने की कला सीख लो।*

कुरुक्षेत्र की लड़ाई में तुम्हारी विजय हो!



# संन्यासी

## *(बाल संस्करण)*

श्री स्वामी सत्यानन्द जी की शिक्षाओं पर आधारित यह बाल-पुस्तिका फरवरी, 1968 में अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल द्वारा आयोजित बम्बई योग सेमिनार के अवसर पर प्रकाशित की गई थी। बच्चों में आध्यात्मिक संस्कारों का बीजारोपण करने के लिए इसमें एक मनोरंजक नाटिका प्रस्तुत की गई है।

*– सम्पादक*

# संन्यासी

**बच्चे :** माँ, आज शिवरात्रि है। तुम तो अपने व्रत-उपवास और पूजा में रहोगी, तो हम लोग क्या करेंगे?

**विनय (बड़ा भाई) :** आओ हम बताएँ। हम लोग भाई हैं। मिलकर एक ड्रामा करें।

**माँ :** हाँ, हाँ। तुम लोग 'संन्यासी' वाला नाटक अभिनीत करो।

**राजीव :** हाँ, यह बड़ा अच्छा सुझाव है। हम लोग सब भाग लेंगे। मेरा क्या पार्ट रहेगा, विनय भाई?

**विनय :** तुम लोग माँ को तंग मत करो। मैं तुम लोगों का स्टेज निर्देशक बनूँगा। चलो, अब नाटक की तैयारी करो।

**राजीव :** प्रसाद 'राजनीतिज्ञ' बनेगा। संजय 'क्रान्ति सिंह' बनेगा। मन्नू 'मनन कुमार' बनेगा। मैं ज्ञानभिक्षु बनूँगा। विजय बृहस्पति बनेगा।

**मनन कुमार :** माँ ने बहुत अच्छा सुझाव दिया कि संन्यासी के बारे में नाटक करें, जिसमें आज समाज में संन्यासी का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए, वह बतला सकें।

**ज्ञानभिक्षु :** संन्यासी और कर्त्तव्य? हा-हा-हा। अरे भला संन्यासी का कर्त्तव्य क्या हो सकता है? वह तो मुक्त प्राणी है।

**मनन कुमार :** अरे ज्ञानभिक्षु! संन्यासी तो अवधूत है। राग-द्वेष से मुक्त है। वह 'वीतरागी' है, याने जिसके राग क्षीण हो चुके हैं। ऐसा व्यक्ति कर्म क्या और कैसे करेगा? भला कहो तो।

**क्रान्ति सिंह :** अरे मननकुमार, संन्यासी तो पाखण्डी होते हैं! जिन्हें किसी क्षेत्र में घुसने का मौका नहीं मिला वे बस संन्यासी हो जाते हैं। क्यों, ठीक है न बृहस्पति जी?

**बृहस्पति :** हाँ, मैं तो सुन रहा हूँ और सोच रहा हूँ।

**राजनीतिज्ञ प्रसाद :** भला यह भी कोई सोचने की बात है! अरे सोचना ही है तो सोचिए राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में। हम सोचें राजनीतिक पेचीदियों को। आर्थिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को। भला संन्यासियों के बारे में क्या सोचना, जो समाज के भार हैं।

**अन्धभक्त :** हैं? क्या कहा? तुम्हें शर्म नही आती ऐसी बात मुँह से निकालते, हमारी चिरन्तन पवित्र संस्कृति के बारे में अपशब्द कहते! राम, राम! सचमुच कलियुग आ गया है। हे भगवान, कब तुम उद्धार करोगे? कहाँ सोये हो नाथ?

**राजनीतिज्ञ प्रसाद :** अरे अन्धभक्त जी, आप तो सचमुच ही अन्धभक्ति रखते हैं। अरे उद्धार भगवान करेंगे या हमारे प्राइम-मिनिस्टर। भगवान और संन्यासी का धर्म सोचने के बदले कलियुग देवता, सरकार का चिन्तन करो, सरकार का। फिर देखो कैसे-कैसे सुख का लाइसेन्स मिल जाता है।

**ज्ञानभिक्षु :** बात कहाँ से आयी और कहाँ गई! ऐसे ही तो मनुष्य के विचार असन्तुलित और असंगठित रहते हैं। यदि विचार संगठित और योजनाबद्ध हों तो कर्म भी संगठित और सुयोजित होते हैं। सफलता और सुख का आधार यही हैं। मैं तो ज्ञान चाहता हूँ, ज्ञान चाहे जहाँ से मिले। क्यों, ठीक है न राजनीति प्रसाद?

**मनन कुमार :** अच्छा, तब संन्यासी का कर्त्तव्य क्या था, क्या है और क्या होना चाहिए, आप ही बताएँ बृहस्पति जी।

**बृहस्पति :** भाई, आजकल तो जरूर संन्यासी का स्टैण्डर्ड गिरा हुआ सा दीखता है, परन्तु इससे संन्यास जैसी स्वस्थ परम्परा का लापरवाही और अज्ञान से निर्मूलन नही होना चाहिए।

**मनन कुमार :** आपका इसे 'स्वस्थ परम्परा' कहने का कारण क्या है? क्या इस परम्परा के पीछे भी वैज्ञानिक और यर्थाथवादी तत्त्व छिपे हैं?

**बृहस्पति :** हाँ, बंधु। था तो ऐसा ही, होना भी ऐसा ही चाहिए। संन्यासी तो वास्तव में 'समाज के अभिभावक' (गार्जियन्स ऑफ दी सोसायटी) हैं और हुआ करते थे।

**क्रान्ति सिंह :** क्या इसका प्रमाण तुम दे सकते हो?

**बृहस्पति :** प्रमाण? स्वयंसिद्ध वस्तुओं का क्या प्रमाण खोजते हो? संन्यासियों ने समाज को प्रारम्भ से अब तक जो कुछ दिया है वही प्रमाण

है। साहित्य, संस्कृति, परम्परा, विज्ञान सभी कुछ। कर्मनिष्ठ और कर्म-संन्यस्त संन्यासियों ने प्रारम्भ में शिक्षा का कार्य सँभाला, गुरुकुलों के द्वारा। राजनीति को सँभाला राजा को परामर्श देकर। न्याय को सँभाला समाज विधान बनाकर। सांस्कृतिक एकता और विकास को प्रश्रय दिया मठ-मन्दिर स्थापित करके। शारीरिक और मानिसक उत्थान कराया विभिन्न योगों के साधन से। ललित कलाओं का विकास कराया सुन्दर-सुदृढ़ मन्दिरों और मूर्तियों का स्थापन कराके।

**अन्धभक्त :** परन्तु गुरुजी, समाज में तो यही कहावत प्रचलित है– 'नारी मुई सम्पदा नासी, मूँड मुडाय भये संन्यासी।' हमने तो यही सोच रखा है– जहाँ घरनी और घर का झंझट छूटा, सिर मुँडा कर, गेरूआ पहन कर, संन्यासी हो जाऊँगा, संन्यासी। मैं यही सोच रहा हूँ कि जरा घर-गृहस्थी से छुट्टी मिले तो संन्यास लेकर किसी आश्रम में चला जाऊँ।

**बृहस्पति :** भाई, परम्पराओं को दूषित तो हम लोगों ने ही किया है न?

**ज्ञानभिक्षु :** गुरुजी, देखा तो जाता है कि जो मनुष्य जीवन की कठिनाइयों का सामना साहस से नहीं कर पाता वह धर्म और संन्यास का आश्रय ले लेता है। गेरू धारण कर भीख माँगता है। क्या संन्यास पलायनवादियों का शस्त्र नही है?

**बृहस्पति :** नहीं, संन्यास कतई पलायनवाद नहीं। यह तो परम्परा का दुरुपयोग है भाई।

**मनन कुमार :** गुरुजी, कभी-कभी मेरे मन में भी यह शंका उठती है कि कहीं परिस्थितियों और दु:खों से घबराकर अथवा जीवन-संघर्ष में अपने को अयोग्य पाकर तो लोग धर्म, वैराग्य और संन्यास का पदक धारण नहीं कर लेते?

**बृहस्पति :** तुम्हारे विचार निराधार नहीं हैं। मैं मानता हूँ कि ऐसा भी हुआ है और किया जाता है। पर करने वाले कौन हैं? अविकसित मस्तिष्क वाले अज्ञानी व्यक्ति, जिन्हें अपनी समस्याओं का दूसरा स्वस्थ समाधान नही मिला। याने समाज ने जिन्हें जीने योग्य 'सबल' नहीं बनाया। उपनिषद् तो स्पष्ट कहता है कि 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य:'– बलहीन व्यक्ति भला आत्मा का क्या अनुभव करेगा? लेकिन कुछ संन्यासियों ने तो अपूर्व कार्यक्षमता, संगठन शक्ति, दूरदर्शिता और ज्ञान का परिचय देकर इतिहास को बदला है।

**क्रान्ति सिंह :** तो कृपया यह बताइए कि संन्यासियों से समाज को लाभ क्या है? उनके गुण क्या हैं?

**बृहस्पति :** संन्यास का मुख्य धर्म या गुण है 'अजेय मानसिक शक्ति और ज्ञानबल की प्राप्ति', जिसके सामने अन्य सभी वृत्तियाँ झुक जाती हैं। संन्यास का अर्थ है निर्भीकता। निर्भीक व्यक्ति असत्य के सामने नहीं झुकता। संन्यास का अर्थ है एक छोटे-से परिवार को अपना सारा जीवन न देकर एक विशाल परिवार की सेवा में अपनी साधन-शक्तियों को लगा देना। अपने ज्ञान और शक्ति से समाज संगठन करना। लेकिन ऐसा वही कर सकता है जो अपने अन्दर और बाहर बराबर निर्द्वन्द्व रहता है, जो अनपेक्ष और शुचिर्दक्ष और दृढ़निश्चयी होकर कार्य करता है। इतिहास बतलाता है कि सच्चे संन्यासियों ने बराबर देश, समाज और धर्म की हिफाज़त की है और उसे नई दिशा प्रदान की है।

**मनन कुमार :** संन्यासी के लिए गेरू कपड़ा पहनना जरूरी है क्या?

**बृहस्पति :** नहीं मित्र, जरूरी नहीं है। लेकिन जरूरी न होने पर भी उसका महत्त्व कम नहीं है। भ्रमण संन्यास का आवश्यक अंग है। निरंहकार, अनासक्त, अनिकेत संन्यासी को भ्रमण करना ही पड़ेगा। इससे वह लोगों के सुख-दुःख से अवगत होता है। समाज की बिखरी हुई, उपेक्षित शक्तियों को खोज कर नव-निर्माण का कार्य करता है। आज यहाँ तो कल वहाँ, ऐसा परिव्राजक जीवन बिताने वालों के लिए गेरू मिट्‌टी में रँगा हुआ वस्त्र कृमिनाशक, गर्म और स्वास्थ्यकर होता है।

**ज्ञानभिक्षु :** क्या संन्यासियों के वस्त्र गेरू मिट्‌टी में रँगे जाते हैं? गेरू तो कई दवाओं के लिए काम में लाया जाता है। उससे दाँतों के लिए दंतमंजन भी बनाया जाता है। चर्मरोग, फोड़ा और पित्ती में शरीर में लगाया जाता है। गाँवों में अभी तक ऐसी परम्पराएँ चली आती हैं।

**राजनीतिज्ञ प्रसाद :** अच्छा? क्या गेरू इतने काम की चीज है? मैंने गवर्मेन्ट ऑफ इंडिया के ज़ूलौजी डिपार्टमेन्ट में काम किया है। गेरू का नाम भारत के खनिज पदार्थों की लिस्ट में देखा है। परन्तु मैं समझता था कि यह केवल बूढ़ी औरतों का रंग-मन बहलाव है जिससे वे प्रायः दीवाल, दरवाजा और घरोंदा रँगा करती हैं। पर्व-त्यौहार और मांगलिक रस्मों में तो देश का पैसा बेकार खर्च होता है इन बूढ़ी औरतों के कारण। परन्तु आज आपने गेरू का वैज्ञानिक महत्त्व बताकर मेरी आँखें खोल दी हैं।

**बृहस्पति :** ऋषियों ने हिन्दुस्तान में अनेक रीति-रिवाज और परम्पराएँ बहुत सोच-समझकर बनाई थीं। अज्ञान से ही उनका दुरुपयोग होता है। इसलिए दुरुपयोग को समझाना और खत्म करना है। गेरू-रंग का प्रभाव शरीर की नसों, नाड़ियों और मन पर अच्छा पड़ता है। यह रंग आँखों को शीतल करता है। निर्मलता और त्याग की भावना को जगाता है। तत्संबंधी मस्तिष्क के केन्द्रों को सजग करता है। यह रंग त्याग का प्रतीक है। बिना पूछे तुम्हारे अनेक संभावित प्रश्नों का उत्तर दे देता है – मैंने अपना घर छोड़ दिया है; जहाँ मैं हूँ, मेरा घर वहीं है; मेरा सुख, सर्व-सुख-साधन में निहित है; मैंने अपनी शक्ति, सेवा और ज्ञान, संसार के सब प्राणियों को समर्पित किया है। इस प्रकार तुम यह देखोगे कि गेरू कपड़ा किसी मतलब से पहना जाता है।

**क्रान्ति सिंह :** परन्तु गेरू पहनने से ही कोई महात्मा और ज्ञानी बन जाता है क्या? क्या कपड़ा रँग लेने से मन भी बदल जाएगा?

**बृहस्पति :** गेरू कपड़ा अपने आप नहीं पहना जाता। किसी श्रेष्ठ महात्मा या गुरु से लिया जाता है। गेरू पहनकर संन्यासी को आध्यात्मिक परम्परा के अनुशासन में रहना पड़ता है। गेरू देने और न देने की जिम्मेवारी गुरु पर रहती है। वह योग्य और समर्थ को ही साधन सम्पन्न बना कर देवेगा। परिव्राजक के लिए गेरू गुरु-प्रदत्त-कवच है। जहाँ तक मन बदलने का प्रश्न है, मैं कहूँगा कि गेरू का असर मन पर भी पड़ता है। वैसे ही जैसे मिलीटरी वाले अपने यूनिफॉर्म में अधिक चुस्त रहते हैं।

**ज्ञानभिक्षु :** गेरू का महत्व अब मुझे समझ में आ गया। यह एक ऐसा वेश है जो अपनी गरिमा से पूर्ण है। इसलिए किसी स्वार्थ-भावना से प्रेरित होकर गेरू पहनने का निषेध करना चाहिए।

**बृहस्पति :** हाँ, गेरू उन्हें पहनना चाहिए, जिनमें त्याग, ज्ञान और परोपकार की भावना हो। संन्यासी निर्द्वन्द्व और अनासक्त रहता है, इसलिए लोगों को उसके पास आने से शान्ति मिलती है। वह समाज का आध्यात्मोपचारक है।

**ज्ञानभिक्षु :** परन्तु लोग तो ऐसा समझते हैं कि साधु संन्यासियों की सेवा करने में हमें पुण्य और स्वर्ग मिलेगा और निरादर करने से पाप और नरक भोगना पड़ेगा। क्या यह सच है?

**बृहस्पति :** लगता है कि हमारे ऋषि दूरदर्शी थे। अविकसित मस्तिष्क वाले लोगों से स्वास्थ्यप्रद और विकास के लिए आवश्यक नियमों का पालन

कराने के लिए उन्होंने पाप और नरक का भय लोगों को दिखलाया। प्रेरणा देने के लिए पुण्य और स्वर्ग का लोभ दिया। धर्मगुरुओं का उद्देश्य केवल जनता को अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा देना और बुरे मार्ग पर जाने का निषेध करना था। कुछ काल बाद यही अन्धविश्वास बन गया। परन्तु आज हमारा कर्त्तव्य क्या है? नीर-क्षीर विवेक। जो विकृतियाँ समाज और धर्म में आ गई हैं उन्हें खोजकर, पहचानकर छोड़ देना। परन्तु सफाई के नाम पर रत्न-भंडार को भी खाली कर देना कहाँ की समझदारी होगी? आधुनिकता के नाम पर विभूतियों को राख में फेंक देना ठीक नहीं है।

**राजनीतिज्ञ प्रसाद :** भला संन्यासी भिक्षा क्यों माँगते हैं? वे क्यों नहीं सरकार से अपने अधिकारों की माँग करते हैं?

**बृहस्पति :** भिक्षा का भी मतलब है। जब वे अपनी ज्ञानमयी शक्तियों से समाज को उत्कृष्ट बनाते हैं तो उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति भिक्षा के रूप में समाज करता है। अनेक घरों के भोजन का अर्थ अनेक परिवारों का आत्मीय बनना है। ममतारहित होने से उसकी दृष्टि स्पष्ट और विचार सुलझे होते हैं। अत: उसमें दूरदर्शिता होती है। वह पूरे समाज का सिंहावलोकन करते हुए मार्ग तैयार करता है जिसपर समाज चलना शुरू करता है।

**क्रान्ति सिंह :** बृहस्पति जी, आज तो आपने हमें बहुत-सी नई बातें बताई हैं। पाश्चात्य रंग में रँगकर हमारा अपना रंग उड़ गया था। पर नहीं, देखता हूँ कि हमारी संस्कृति का रंग इतना सुंदर और गहरा है कि घोर सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल से भी फीका नहीं पड़ने वाला है।

**बृहस्पति :** भाई, इतने को ही सब कुछ समझने की भूल नहीं करना। और भी बहुत-सी खूबियाँ हमारे देश में हैं जो विश्व के किसी भी कोने में प्राप्य नहीं। उन्हें खोजकर, निखार लाना होगा। समय के अनुसार उनके उद्देश्य, प्रयोग और उपयोग में कुछ आवश्यक परिवर्तन लाना होगा। जीर्ण होने पर भी सनातन विद्याओं और परम्पराओं में सोने का सत्य है जो हर युग में महत्त्व पाएगा। डिजाइन हम बदल सकते हैं पर तत्त्व तो वही रहेंगे। मेरा तो विचार है कि विश्व के सभी मनोवैज्ञानिक उपचारकों को संन्यास के मूल तत्त्वों – अनासक्ति, निर्द्वन्द्विता, अनपेक्षता, आदि का अभ्यास करना चाहिए, तभी वे समाज के दु:खों को कम कर सकेंगे।



# हर दिन के लिए

प्यारे बच्चों,

आध्यात्मिक संस्कार डालने के लिए यह छोटी-सी मनोरंजक वार्ता तुम्हारे समक्ष है। पढ़ो और खेलो। तुम अपने उत्थान के लिए कुछ और भी काम करो–

हर दिन ये दस आसन करो–
पद्मासन, वज्रासन, शशांकासन, भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, सर्वांगासन, हलासन और शवासन।

हर दिन पाँच मिनट प्रार्थना करो।

हर दिन पाँच मिनट मंत्र-जाप करो।

हर दिन 3 मिनट प्रभु का ध्यान करो।

हर दिन डायरी लिखो।

हर दिन प्रेरणास्पद वचन डायरी में नोट करो और जीवन में उतारो।

हर दिन शारीरिक श्रम करो।

हर दिन स्मृति और कार्य क्षमता बढ़ाओ।

हर दिन देश रत्न बनो।

# आकाश का तारा धरती का फूल

*'वैसे तो मेरा जीवन ही स्वामी जी के संस्मरण, साक्षात्कार तथा स्मृति से ओत-प्रोत है, लेकिन मैं सत्यम् रूपी समुद्र में गोते लगाकर ऐसे अनमोल रत्नों का संग्रह करूँगा, जिसके प्रकाश में आप सब कुछ पाने में सफल होंगे ...'*

अपने इस हार्दिक उद्‌गार को चरितार्थ करते हुए स्वामी निरंजन ने दश वर्ष की अल्पावस्था में 'आकाश का तारा, धरती का फूल' नामक पुस्तक रचकर पूज्य स्वामी जी के चरणों में समर्पित कर दी। सन् 1971 में प्रकाशित स्वामी निरंजन की यह पहली पुस्तक, समर्थ गुरु और आदर्श शिष्य के प्रेरक प्रसंगों तथा संवादों का मर्मस्पर्शी संकलन है।

*– सम्पादक*

# आकाश का तारा ★

# धरती का फूल






( स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी के
जीवन की झलकियाँ )



संकलनकर्ता – बालयोगी निरंजन
सम्पादिका – माँ धर्मशक्ति

# श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

## भूमिका

ईश्वर की कृपा से मुझे अनेक सज्जनों, महज्जनों, साधुओं और सन्तों के दर्शन हुए हैं। मेरे लिये वे सभी श्रद्धेय हैं, परन्तु मैं देखता हूँ कि श्रद्धा के भी दर्जे रहा करते हैं। जिन व्यक्तियों के प्रति ऊँचे दर्जे की श्रद्धा उमड़ पड़ती है, वे प्राय: थोड़े ही होते हैं, और उनमें मैंने अनुभव किया है कि स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का अपना विशिष्ट स्थान है।

अनेकों वर्ष पूर्व एकाकी तरुण संन्यासी के रूप में स्वामी जी महाराज राजनाँदगाँव पधारे थे जब उनके भाषणों ही के सिलसिले में मेरा उनसे प्रथम साक्षात्कार हुआ था। उनकी सुधावर्षिणी आँखें, सतत् विद्यमान प्रसन्न मुखमुद्रा, प्रशान्त किन्तु प्रभावशालिनी स्वर माधुरी, सेवा परायण श्रम सक्षम, मझोले दर्जे का प्रौढ़ किन्तु सर्वदा तरुण भाषित होने वाला गौर कलेवर और उस पर तेजस्वी साधना-सम्पन्न विशाल ललाट – सब मिलकर परम्परागत श्रद्धास्पद गैरिक वसन (गेरुए कपड़े) से सम्पादित होकर उसी समय घोषणा-सी कर चुके थे कि इस व्यक्तित्व में केवल साधरणता ही नहीं है। प्रथम परिचय में ही उन्होंने मेरे हृदय पर अपना स्थान बना लिया जो धीरे-धीरे दृढ़ ही होता गया है।

मैंने देखा है कि वे बच्चों में बच्चे, बूढ़ों में बूढ़े, अंपढ़ों में सामान्यजन सेवी और विद्वानों में निष्णात विचारवान् हैं। भक्तों में भावुक भजनीक हैं तो साधकों में उत्कृष्ट अधिकारी योगाचार्य हैं। अभावग्रस्त व्यक्तियों के निरभिमानी सहृदय मित्र हैं तो साथ ही प्रभावग्रस्त लोगों के बीच एक उत्तम देश-कालज्ञ पथप्रदर्शक हैं। स्वत: अमानी रहकर दूसरों को मान देना वे

खूब जानते हैं। उनकी विद्वत्ता गम्भीर है परन्तु विद्वत्ता से अधिक उनकी सेवा परायणता है जो अथक है। समय की आवश्यकताओं को पहचानते हुए उन्होंने अपनी चर्या ऐसी बना ली है कि हृदय जीतने की कला में वे आप ही आप सुदक्ष हो गये हैं। इसीलिये देखते-देखते उनके चारों ओर साधनों पर साधन जुटते चले गये और उनकी ख्याति दिन दूनी रात चौगुनी गति से पूरे संसार में फैल गई तथा और अधिक रूप में फैलती जा रही है। देख कर आश्चर्य होता है कि जो तरुण तपस्वी अज्ञात कुल शील होकर इधर आया और जिसने किसी वस्तु के लिये किसी के सामने कभी हाथ नहीं फैलाये, उस परिव्राजक के पास अनायास इतने साधन जुटते चले गये कि उसने अनेकों योग विद्यालय खुलवा डाले, अनेकों अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन भरवा डाले, देश-विदेश में उनके अनुयायियों की संख्या लाखों तक पहुँच गई और हजारों रुपये लगाकर विदेशी साधक हवाई जहाजों से उनके दर्शन करने जब देखिये तब दौड़े चले आते हैं। यह क्या कोई सामान्य बात है!

स्वामी जी से जब मेरा घनिष्ठ परिचय नहीं हुआ था तब एक दिन वे मेरे यहाँ पधारे और ढेर सी पुराणों तथा स्मृतियों की सामग्री, जो उन्हें कलकत्ते के मोर परिवार से प्राप्त हुई थी, मेरे पुस्तकालय के लिये छोड़ गये। मैं उनके एक अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन में पहुँचा तो मेरी सुविधाओं को इतना ध्यान रखा मानो मैं ही उनका सबसे विशिष्ट अतिथि होऊँ। आनन्द की बात तो यही है कि हर कोई यह समझ लेता है कि स्वामी जी का उसी से बहुत अधिक प्रेम है और स्वामी जी सबके आत्मीय होकर भी सबसे निर्लेप रह सकते हैं, यह मैंने उनके व्यवहार में देखा है।

योग साधना में उनकी सिद्धि कहाँ तक हुई है, यह तो वही जाने जो उनसे अधिक योग निष्णात है, परन्तु जिस सहजता से वे योग विषयक शंकाओं का समाधान करते हैं और जिस सरलता से वे योग की जटिल क्रियाओं को हस्तामलकवत् करा देते हैं, वह अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है। जन कल्याण मार्ग के रूप में योग का इस प्रकार प्रचार-प्रसार कर देना हमने तो अन्य किसी महज्जन में नहीं पाया। अन्य जन भी होंगे और सम्भव है कि वे अधिक शक्तिशाली भी हों, परन्तु हमें तो परमात्मा ने जिनका सान्निध्य दिया उनमें स्वामी सत्यानन्द जी ही विशेष दमकते दिखाई दे रहे हैं।

मनुष्य की प्रकृति बनने में परिस्थिति, परम्परा और पूर्वजन्म, सबका अंशदान रहा करता है और जिसकी जैसी प्रकृति बन जाय वह उसी के अनुकूल मानव समाज का प्रेमी रहा करता है। मेरी कुछ ऐसी प्रकृति बन चुकी है कि वह श्री स्वामी सत्यानन्द जी को ठीक अपने अनुकूल पाती है। इसीलिये उनके प्रति मेरा आकर्षण है।

मैं सनातनी आस्तिक हिन्दू हूँ, परन्तु धर्म के हर एक तत्त्व पर विवेक से विचार कर लेने का अभ्यासी हूँ। मैं भले ही असफल रहा होऊँ, परन्तु कल्याणमयी लोक सेवा को ही मानव जीवन का केन्द्र-बिन्दु मानता हूँ। मैं बाहरी योग्यता के पहले भीतरी योग्यता का कायल हूँ। अपने सत्, चित्, और आनन्द के बाहरी विस्तार के पहले भीतरी विस्तार का आकांक्षी हूँ। मेरा चंचल मन कभी ज्ञान योग की ओर, कभी भक्तियोग की ओर, तो कभी कर्मयोग की ओर जब एकांगी भाव से भटक उठता है तब मैं सोचने लगता हूँ कि शायद वास्तविक योग पद्धति महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों में और उनकी नींव स्वरूप आसन-प्राणायाम आदि की क्रियाओं में है, जिन्हें वस्तुत: प्रयोग सूत्र कहना चाहिए।

तन और मन के स्वास्थ्य के लिये, जीवन की शान्ति के लिये, आत्मा के साक्षात्कार के लिये और समाज के कल्याण के लिए इस प्रयोग रूपी योग का जितना प्रचार हो सके उतना ही अच्छा। मेरी इन सब मानसिक स्थितियों में मैं देखता हूँ कि स्वामी सत्यानन्द जी बड़े सहृदय भाव से मेरे प्रेरणास्त्रोत बन जाया करते हैं। ये ही मार्ग उनके हैं जिनमें उन्होंने अत्यधिक प्रगति की है और प्रगति करते जा रहे हैं।

स्वामी जी के जन्मजात शुभ संस्कारों को प्रगति का आशीर्वाद मिला, दिव्य जीवन संघ के संस्थापक, स्वनामधन्य स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी से, जिन्हें इन्होंने गुरु रूप में वरण किया। जब वे परिव्राजक होकर चल निकले तब राजनाँदगाँव का सौभाग्य है कि आत्म-निर्भरता के मार्ग में यही उनका प्रारम्भिक क्षेत्र बना। इस क्षेत्र में उन्होंने न केवल एकान्त साधना के स्थलों का सदुपयोग किया, किन्तु जन सेवा के भी भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाये। एकाकी रहते हुए भी उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय संगठन का स्वप्न देखा। और केवल स्वप्नद्रष्टा ही बनकर नहीं रह गये किन्तु अपने स्वप्न को कार्य क्षेत्र में भी सुचारु रूप से उतार दिया, जिसके साक्षी उनके द्वारा भराये गये न केवल अनेकानेक अंतर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हैं, जिनमें बीसियों विदेशी राष्ट्रों के

प्रतिनिधि भाग लेते रहे, किन्तु बिहार योग पीठ, रायगढ़, गोंदिया, बम्बई, राजनाँदगाँव आदि की संस्थायें भी हैं। कोई भी वातावरण किसी भी सत्कार्य के बीजों से शून्य नहीं रहा करता।

चाहे कोई स्वामी जी का बकायदा शिष्य बने या न बने, वह उनके सान्निध्य से बराबर लाभ उठा सकता है। टेढ़े-मेढ़े कैसे भी प्रश्न पूछे जाएँ, वे नाराज नहीं होते और सब प्रकार की शंकाओं का समाधान सुहृत सम्मित वाणी में देने को तत्पर रहते हैं। तन और मन को स्वस्थ रखने के अनेक सुगम उपाय उन्हें विदित हैं। उनके अनुभव-सागर के जो भी बिन्दु मिल जाएँ, वे सब बड़े मूल्यवान् होते हैं।

उन्होंने एक बार कहा, 'एक इष्ट रखो, चाहे वह प्रभु का कोई कल्पित रूप हो, या कोरा श्यामल बिन्दु ही क्यों न हो। वह हर एक चेतना स्तर पर विद्यमान रहे और उससे हमारा जीवित सम्पर्क बना रहे। जब उससे ध्यान हटने लगे तब जप बन्द कर दिया जाना चाहिये।' दूसरे अवसर पर एक बार कहा, 'आसन, प्राणायाम, जप, ध्यान, आदि हृदय में नई जीवनी शक्ति, नई ताजगी भरने के लिये किये जाते हैं। यदि किसी प्रक्रिया से प्रसन्नता के बदले थकान बढ़ती हुई जान पड़े, तो समझ लेना चाहिये कि उस प्रक्रिया में कहीं-न-कहीं कोई गड़बड़ी है। वह न सुधर पावे तो उस प्रक्रिया को छोड़ ही देना चाहिये।'

अन्य एक अवसर पर उन्होंने कहा, 'वही व्यक्ति गुरु बनाने योग्य है जिसके सत्संग में शान्ति का अनुभव हुआ करे और जो समस्याओं को सुलझाने में सक्षम हो। अपनी श्रद्धा से व्यक्ति आगे बढ़ता है, न कि गुरु के गुणों-अवगुणों की छानबीन करने से। गुरुमुखी दीक्षा का अपना खास महत्त्व रहता है। उसके शब्द, मंत्र रूप हमारे अचेतन मन के कुसंस्कारों का नाश कर देते हें। अतएव, गुरु बनाना वांछनीय है, परन्तु गुरु उसे ही बनाया जाय जो हमारी श्रद्धा और हमारे विश्वास को प्रभावित कर सके। यह स्मरण रहना चाहिये कि दीक्षा चाहे व्यक्तिगत हो अथवा सामूहिक, शिष्य की श्रद्धा तथा लगन ही उसके विकास में आवश्यक तत्त्व हैं।'

इसी विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुये उन्होंने एक अन्य अवसर पर कहा, 'कोई गुरुमुख हो गया इसका यह अर्थ नहीं कि वह गुरु की क्रीत दास हो गया या वह गुरु को कभी छोड़ ही नहीं सकता। वह चाहे तो गुरु की आज्ञा से अन्य पथ-दर्शक के पास जा सकता है और वह चाहे तो गुरु की

कंठीमाला उसे वापिस सौंप कर उससे सदैव के लिये अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर सकता है।' उनका यह कथन एकदम व्यावहारिकतापूर्ण था। अपनी व्यावहारिकता में तो वे एक बार यह भी कह गये थे, 'यदि गृहस्थ संन्यासी हो सकता है तो संन्यासी गृहस्थ क्यों नहीं हो सकता? दोनों ही आश्रम अपने स्थान पर एक समान महत्त्वपूर्ण हैं।'

पश्चिम के देश बुद्धि प्रधान माने जाते हैं, परन्तु मैंने वहीं के लोगों में स्वामी जी के प्रति अत्यधिक श्रद्धा देखी है। स्वामी जी का कहना है कि पाश्चात्य देशों के लोग भौतिकता से ऊब चुके हैं और उससे लिपटी हुई पाश्चात्य आध्यात्मिकता भी उन्हें रोचक नहीं लग रही है। भारतीय रहन-सहन और साधना पद्धति में उन्हें रहस्यात्मकता मिलती है, अतएव शान्ति और आनन्द के लिये वे इसी ओर झुके पड़ रहे हैं। वे न केवल साधना पद्धति किन्तु गेरुए कपड़ों की वेशभूषा आदि भी पूरी श्रद्धा के साथ अपना रहे हैं। कुछ लोग तो सिर घोटते, तिलक लगाते और मृदंग पर जोर-जोर से 'हरि बोल' गाते हुए भी दिखाई पड़ जायेंगे।

वहाँ के लोगों में योग आदि विषयों की ओर तर्क भाव नहीं, जिज्ञासा भाव रहता है, परन्तु वे उन्हीं बातों को ग्रहण करते हैं, जो उनकी बुद्धि को पटें। वे लोग भारतीय संस्कृति को अपनाना चाहते हैं, क्योंकि वे इसकी शान्तिप्रद परम्परा के महत्त्व को मानते हैं, परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें इस संस्कृति के तत्त्व इस प्रकार समझाये जाएँ जिससे उनको आध्यात्मिक क्षुधा तृप्ति के साथ-साथ बौद्धिक समाधान भी मिलता चले। उनका अध्ययन उथला-उथला नहीं रहता।

एक बार तंत्र शास्त्र पर चर्चा चलने पर मैंने तंत्र विषयक अपने अधकचरे ज्ञान के कुछ नमूने स्वामी जी के समक्ष प्रस्तुत कर दिये। वे मुस्कराते हुये चुपचाप सुनते रहे। कुछ ही दिनों बाद मैंने तंत्र शास्त्र पर उनका एक लेख देखा जो उनके व्यापक अध्ययन और मौलिक चिन्तन से भरपूर था। कितना अद्‌भुत पाण्डित्य है उनमें! चाहे गीता शास्त्र पर उनका लेख हो, चाहे तंत्र शास्त्र पर अथवा और किसी विषय पर; चाहे हिन्दी में उनके भाषण हों या अंग्रेजी में, हर कहीं उनकी प्रवाहमयी शैली अपनी विशिष्ट छाप छोड़े बिना नहीं रहती।

स्वामी जी की प्रेरणा से राजनाँदगाँव निवासियों ने भी अन्य स्थानों के समान स्वामी जी के ही तत्त्वावधान में एक योग विद्यालय यहाँ भी स्थापित

करने का निश्चय कर लिया है। परमात्मा से मेरी यही प्रार्थना है कि वे स्वामी सत्यानन्द जी को माध्यम बनाकर गुरु रूप से इस योग विद्यालय को सब प्रकार हितप्रद एवं स्वावलम्बी तथा सर्वतोन्मुखी समृद्धिशाली चिर जीवनमुक्त करें।

*– डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्रा*
*एम. ए., एल. एल. बी., डी. लिट्*
*राजनाँदगाँव, छत्तीसगढ़*



## आडम्बरहीन क्रान्तिकारी स्वामी

स्वामी सत्यानन्द जी एक महान दिव्य-ज्योति हैं, जिनसे सम्पूर्ण संसार आलोकित हो रहा है। वे एक आडम्बरहीन, क्रांतिकारी व्यक्तित्व वाले, उच्च कोटि के योगी और गुरु हैं। एक ओर उनके अनुशासन से जहाँ प्रांगण निस्तब्ध हो उठता है, वहीं उनके निश्छल बाल स्वभाव से शिष्यगण आनन्द विभोर हो जाते हैं।

उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि हर व्यक्ति यही महसूस करता है कि स्वामीजी की कुछ विशेष कृपा उन पर है। उनका चमत्कार संसार में योग आन्दोलन का स्वरूप है। वे जिस योग आन्दोलन को चला रहे हैं, वह एक ईश्वरीय आदेश है, जो उन्हें एक शिला खण्ड पर समाधि की अवस्था में प्राप्त हुआ था।

*– स्वामी विष्णुदेवानन्द सरस्वती*

# दो शब्द



इस पुस्तक का संपादन करने वाली महिला परमहंस श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी की अनन्य शिष्या हैं। ये सद्गृहिणी सेवा और त्याग की प्रतिमूर्ति हैं। जब से ये श्री स्वामी जी की सेवा में आई; तभी से उनकी भक्ति एवम् उनका त्याग भी निखरा।

जिस प्रकार ऋषि पत्नी सती मदालसा अपने नवजात पुत्रों को *'शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि'* सम्बोधित कर अमृत्व का पाठ पढ़ाया करती थी, ठीक उसी प्रकार ये भी अपने एकमात्र पुत्र 'निरंजन' को उसके सोते, उठते, खेलते, खाते, श्री स्वामी जी की ही मधुर कथाएँ सुनाया करती थीं। फल यह हुआ कि वह बालक निरंजन भी श्री स्वामी जी की सेवा में लगा दिया गया। इस प्रकार माँ धर्मशक्ति का अपूर्व त्याग आज के इतिहास में अमर तथा प्रेरणाप्रद रहेगा।

श्री परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति को देखते हुए, अनेक जिज्ञासुओं के मन में आडम्बरहीन योगक्रान्ति के प्रणेता स्वामी जी के पूर्व जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रश्न अनायास उठकर अपना समाधान मांगा करते हैं। प्रकाशक को आशा है कि इस छोटी-सी पुस्तिका के पढ़े जाने पर ऐसे अनेक प्रश्नों का सहज ही समाधान हो जावेगा।

*हरि ॐ तत्सत्*

# प्रस्तावना

मेरे गुरुदेव, विश्व विख्यात स्वामी सत्यानन्द सरस्वती सर्वप्रथम सन् 1956 में 6 जून को राजनाँदगाँव पधारे थे। उस समय मेरे पिता जो स्थानीय कपड़ा के मील में बड़े बाबू थे। स्वामी जी जब भी आते, हमारे निवास स्थान में ही रहते; कई दिन और कभी-कभी कई महीने भी। मील के ऑफिसर, मातायें और बच्चे दिन भर आते रहते और हमेशा सत्संग होते रहता था। पता नहीं, किस महान् भावना से प्रेरित होकर अम्मा जी ने स्वामी जी के एक-एक शब्द को नोट करना शुरू किया। अम्मा जी की अलमारी में कितनी ही नोट बुक हैं, जिनमें स्वामी जी ने अपने बारे में जो कुछ बताया है, उन्होंने अपने हाथों से जो भी लिखा है, संस्मरण, लेख, कविता, वगैरह, उनके पत्रों के संग्रह, प्रवचनों का संग्रह – सब कुछ है।

मैं छोटा था तो कहानी के नाम पर अम्मा जी पूज्य स्वामी जी की ही बातें बताया करती थी, और सब शैतानी भूलकर उसको रटता रहता था। दादा जी कहते, निरंजन, तुम तो टेप रेकार्डर हो, इन्हीं बातों को दुहराते रहते हो।

जब मैं 4 वर्ष का था, पढ़ना शुरू किया, तो अम्मा जी की डायरी, नोट बुक, पत्र वगैरह सब निकाल लेता, और एक-एक शब्द पढ़ते रहता। अम्मा जी स्नेहवश मुझे कुछ नहीं कहती पर ध्यान रखती कि एक भी कागज गड़बड़ न हो। जब मैंने लिखना सीखा, अम्मा जी को लिखते देख मैं भी लिखने बैठता। अम्मा जी बतलाती जाती और मैं छोटे-बड़े, टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखता और अम्मा जी उसे संभाल कर रख लेती थीं। इस तरह मेरे लिखने का श्री गणेश हुआ। मैं पूछता, 'अम्मा जी इन सबका क्या करोगी,' तो वे कहती, 'निरंजन, तुम बड़े होकर एक बिल्डिंग बनवाना। नाम रखना *'सत्यधाम'*। उसके कमरे में स्वामी जी के सभी चित्रों को, पुस्तकों, पत्रों व लेखों के संग्रह को म्यूज़ियम जैसा सजा देना, वहीं पर मेरे भी सब लेखों को रख देना। यह तो स्वामी जी का जीवन चरित्र ही है। तुम्हारे लिये तो यह *'गुरु गीता'* है।

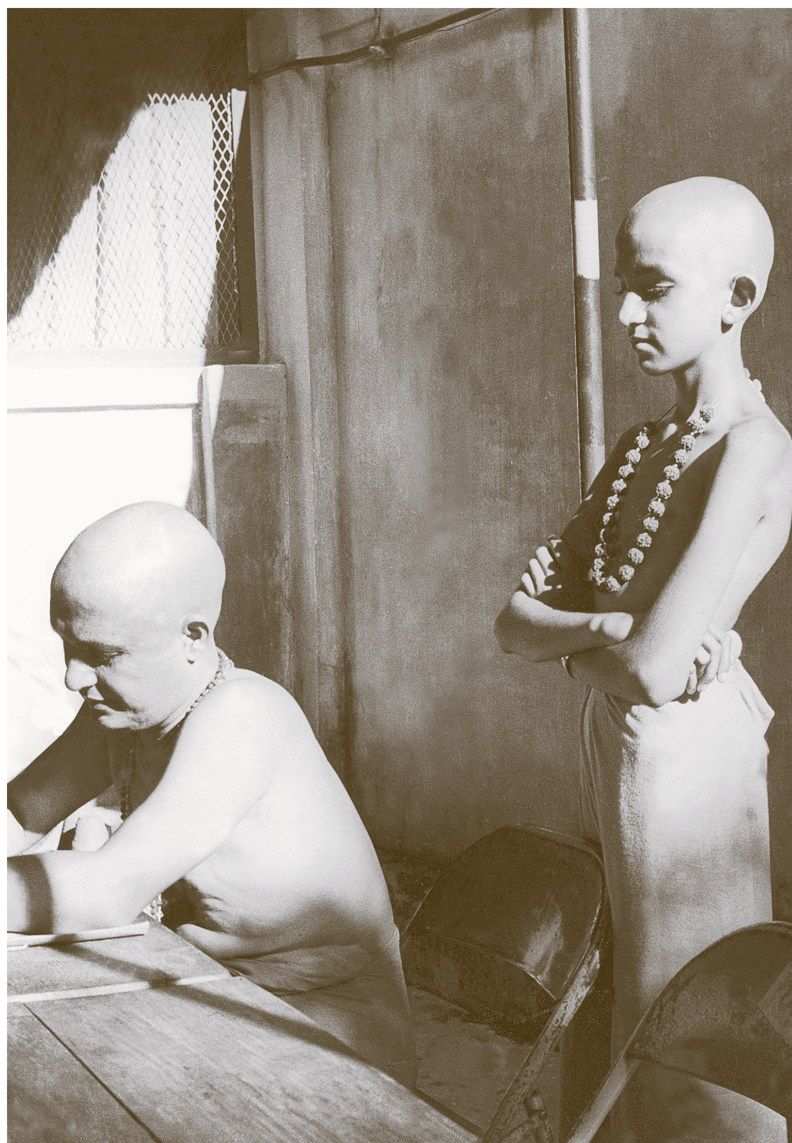












‘स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – एक साक्षात्कार’ नामक पुस्तक छपने के बाद, अम्मा जी मुंगेर आईं, तो मुझसे बोलीं – ‘निरंजन, मेरे पास भी स्वामी जी के बारे में बहुत सामग्री है, उसे इसी तरह छपाना चाहिये क्या?’ मुझे बड़ी खुशी हुई। अम्मा जी ने स्वामी जी से आज्ञा चाही छपाने की। पूज्य स्वामी जी ने कहा – ‘हमसे क्यों पूछते हो जी, आप लोग चाहो तो जरूर छपवाओ।’

9 अगस्त को स्वामी जी के साथ राजनाँदगाँव आया। तो फिर से अम्मा जी की अल्मारी की तलाशी ली। सब लेखों को देखा, पढ़ा और बाल सुलभ चंचलता कहिये कि अम्मा जी से बोला, ‘आप पहले मेरा वाला लेख तैयार कीजिये। मेरी बातें मेरे नाम से, आपकी बातें आप के नाम से, तैयार कीजिये।’ पिता जी से भी कहा, ‘मेरी वाली पुस्तक पहले छपाइये।’ दादा जी ने कहा – ‘सब तुम्हारा ही तो है भाई। दोनों तुम्हारे नाम से छपा दें।’ मैंने कहा, ‘एक में मेरा, एक में अम्मा जी का नाम रहेगा।’ वैसे दोनों ‘परिचय माला’ के रूप में एक-दूसरे के पूरक ही होंगे।

मुझे आशा है पूज्य स्वामी जी के भक्त, शिष्य और परिचित इस पुस्तक को पसन्द करेंगे और इससे लाभ उठावेंगे। प्रभु मुझे शक्ति दे कि मैं इसी तरह अनमोल ग्रंथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकूँ। यह तो मेरा प्रथम प्रयास है।

यह पुस्तक अपने दिग्विजयी गुरुदेव के कर कमलों में समर्पित करता हूँ, 108 मणियों को तेजोमय बनवाकर, विश्व को उजागर मानवता देने के उपलक्ष्य में। देव, यह तो तुम्हारी ही सम्पदा है, तुम्हीं हो लिखने वाले, तुम्हारी चीज तुम्हें ही स्वीकार करनी होगी। तुम्हारे ही शब्दों में –

*देह भ्रान्ति वश दास कहाता, जीव बिम्ब में अंश तुम्हारा।*
*आत्म भावमय तुम हम, दोनों, एक सत्य है निश्चय मेरा॥*

*– निरंजन*

आयुष्मान् निरंजन,

तुम्हारी यह पुस्तक एक अनमोल ग्रन्थ 'गीता' है। इसमें गुरु स्वामी सत्यानन्द जी (भगवान व्यास देव) और शिष्य निरंजन (श्री गणेश जी) का सदेह चित्र झलक रहा है। मुझे पूज्य स्वामी जी की पुत्री और तुम्हारी अम्मा जी होने का गौरव प्राप्त है। तुम्हें आशीर्वाद देना चाहती हूँ, पर कैसे, तुम तो सत्यम्मय हो। यही कामना करती हूँ, गुरुदेव सुमेरु बनेंगे, ओर तुम बनो धागा, जो माला को अपने में पिरो कर, सुमेरु के ऊपर छोटा-सा फूल जैसा हमेशा खिला रहता है।

*रक्त मांस मज्जा मेरा सब,*
*चित्त वृत्तियाँ भी मेरी।*
*स्वर मेरा औ ज्योर्तिमय सुत,*
*तेरी प्राण प्रभा मेरी॥*

*तुममें यह तेरा पन मेरा,*
*गति मेरी तेरे पग में।*
*बेटा मम मातृत्व भरा है,*
*तेरे नस-नस रग-रग में॥*

*ज्योति किरण तू अखिल विश्व का,*
*मेट तमस् की अंधियाली।*
*माँ की यही कामना बेटा,*
*बन गुरु मस्तक की लाली॥*

– *धर्मशक्ति*

# –1–

पूज्य गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के साथ मैं 9 अगस्त 1969 को राजनाँदगाँव पहुँचा। एक हफ्ते का प्रोग्राम था। पूज्य स्वामी जी राजनाँदगाँव सर्व प्रथम 1956 में आये थे। उनका परिव्राजक जीवन यहीं से शुरू हुआ था। पूर्व परिचित लोग आते और अपना अनुभव, 12 वर्ष का परिचय, सभी बातें याद कर अपने को सौभाग्यशाली समझते थे। राजनाँदगाँव मेरी जन्मभूमि है। मेरी भी बचपने की स्मृति साकार होने लगी। मेरे जन्म के पूर्व और इस जीवन के एक-एक क्षण उनके संस्मरण में ओत-प्रोत हैं। मेरी इच्छा भी हो रही है कि पूज्य स्वामी जी के बारे में कुछ लिखूँ, भले ही मेरा प्रयास सूर्य को दीपक दिखाने जैसा हो।

आज के युग में पूज्य साधु की हमें आवश्यकता नहीं, हमें तो जरूरत है प्रिय साधु की, जो भूले-भटके को राह दिखा कर, दीन-दुःखी को अपना कर, अपनी ज्योति से उसका पथ आलोकित कर सके। आज के युग में, संघर्षमय जीवन से व्यथित मानव को ऐसे स्वामी की जरूरत है जो स्नेहमयी माँ बनकर, आत्म-विश्वास से कह सके, 'मेरे बच्चों! मेरे साथ आओ, मेरा आँचल पकड़ लो, मैं तुम्हें तमस् से सत्यम् की ओर ले जाने के लिये ही *'अग्नि पथ का दीपक'* बना हूँ।'

स्वामी जी अंतर्राष्ट्रीय योग मित्र मंडल के संचालक एवं प्रेरक हैं। उनका लक्ष्य यौगिक अच्छाइयों को मानव मस्तिष्क में प्रवेश कराना है। वे योग के दुराग्रह एवं अज्ञान के किले को तोड़ना चाहते हैं। यह उनका पुराण शास्त्र में जकड़े हुए योग के विरुद्ध धर्मयुद्ध है।

आज स्वामी जी को कौन नहीं जानता! महल से लेकर झोपड़ी तक, देश-विदेश के कोने-कोने में, उनकी आवाज पहुँच रही है। मैं सोचता हूँ कि शायद भगवान ने मानव की अज्ञानता पर तरस खाकर, स्वामी जी के रूप में जादू की छड़ी का निर्माण किया, जिसे भगवान स्वयं देश-विदेश में घुमा रहे हैं, और मैं भी अपने को नहीं रोक सका। जादू की छड़ी बनने

इस संसार सागर में कूद ही पड़ा। स्वामी जी कहते ही रहे– 'राही सोच समझ कर आना।'

मेरी छोटी-छोटी बातें सुनकर लोग हसेंगे, पर मैं छोटी-छोटी बातों में ही सार तत्त्व बताऊँगा। वैसे तो मेरा जीवन ही स्वामी जी के संस्मरण, साक्षात्कार तथा स्मृति से ओत-प्रोत है, लेकिन मैं सत्यम् रूपी समुद्र में गोते लगाकर, अनमोल व बहुमूल्य रत्नों का संग्रह करूँगा, जिसके प्रकाश में आप सब कुछ पाने में सफल होंगे।

## –2–

सुनिये एक सच्ची घटना बतलाऊँगा। यह घटना 1963 अक्टूबर की है। मुंगेर आश्रम बनना प्रारम्भ हो चुका था। 18 जनवरी 1964 को अखण्ड ज्योति प्रज्वलित कर परमहंस पद पर आसीन होकर 3 वर्ष तक आश्रम से बाहर नहीं आने की योजना भी स्वामी जी ने बना डाली थी। उनके परिव्राजक जीवन का अन्तिम वर्ष था, इसलिये उनके सब परिचितों ने अपने-अपने शहर में प्रोग्राम बनाया था। राजनाँदगाँव में 5 दिन का प्रोग्राम था। उस समय मैं चार वर्ष का था। स्वामी जी कहते– 'निरंजन, अब हम नहीं आयेंगे। तुम मुंगेर आना, फिर हम समाधि लेंगे।' मैं बहुत खुश होता, और कहता, 'स्वामी जी समाधि लेकर निरंजन बन जायेंगे, तब मैं सत्यानन्द बन जाऊँगा।' दिन भर लोग आते रहते थे। सुबह से मंत्र लेने वालों की भीड़ लगी रहती, कि स्वामी जी अब नहीं आयेंगे, तो मंत्र तो ले ही लें। दिन भर प्रसाद बंटता था।

एक दिन की बात है। विनोद चाचा के यहाँ भोजन और दोपहर में महिलाओं का सत्संग था। स्वामीजी उनके यहाँ 10 बजे गये थे। हम लोग भी गये। इच्ची (रत्ना) एम.ए. फाइनल में थी। उन्होंने कहा, 'मुझे पढ़ाई करनी है, इसलिये नहीं जाऊँगी।' 12 बजे मीना दीदी आकर ले ही गई कि खाकर आ जाइये, रुकियेगा नहीं। स्वामी जी भोजन के बाद 1 घंटे के लिये ताराबेन के यहाँ गये। वहाँ से थोड़ी-थोड़ी देर के लिये दो जगह जाकर, 2 बजे वापस उसी महिलाओं के सत्संग में आना था। 1 बजे इच्ची भारती को लेकर घर जाने लगी तो मैं भी साथ में घर चला गया।

हमारा मकान बहुत बड़ा था, सामने बरामदा व दोनों तरफ कमरे थे। एक तरफ का कमरा दादा जी का ऑफिस, दूसरी तरफ का कागज का स्टोर रूम था। पीछे आँगन, दोनों साइड में कमरे, पीछे ऊँची-सी दीवाल थी, बिना दरवाजे की। इच्ची ने ताला खोला (सामने से तीनों दरवाजे बन्द थे)। मैं जल्दी से अन्दर अपनी पुस्तक लेने दौड़ गया। बड़े कमरे में स्वामी जी सोये थे। मैं चिल्ला पड़ा, 'इच्ची स्वामी जी हैं!' रत्ना और भारती स्वामी जी को देख कर घबड़ा गईं, कि दरवाजे का ताला तो हमने खोला, आप कैसे अन्दर आये। स्वामी जी हँस कर कहने लगे, 'अभी किसी से नहीं कहना, सब बेकार बातें करते हैं, अपने स्वार्थ की। हमने सोचा चुपचाप जाकर सोयेंगे।'

महिलायें रास्ता देखते-देखते थक गईं। 3 बज गये तो काकी ने पेट्रोल पम्प में नौकर भेजा। विनोद चाचा मील दौड़े दादा जी के पास। 4 बजे अम्मा जी घर आई, सब बातें सुन कर अम्मा जी ने कहा– 'देखा मनुवा, स्वामी जी के लिये कोई काम कठिन नहीं है।' फिर पेट्रोल पम्प व मील में दादा जी को फोन किया कि स्वामी जी यहाँ हैं।

मुझे बाल मंदिर जाना अच्छा नहीं लगता था, और छोटे-छोटे बच्चों से खेलना भी अच्छा नहीं लगता था। वहाँ गाना सिखाते *'लिटिल बेबी सो जा... ।'* मेरे दोस्त थे पड़ोस के बड़े-बड़े लड़के, दादा जी के दोस्त, मील के क्लर्क और बाबू। मैं समझता ये लोग मेरे मित्र हैं, मैं भला इन छोटे-छोटे बच्चों से क्या खेलता।

मैं सोचने लगा, अगर स्वामी जी मुझे भी सिखा दें बन्द दरवाजे से अन्दर आना तो कितना अच्छा हो। दादा जी मील में रहते, अम्मा जी घर का काम करतीं, प्रेस का काम भी देखतीं, इच्ची पढ़ाई करती, नोट्स लिखती रहती, और मैं बाल मंदिर जाता और चुपके से कमरे के अन्दर आता ... और आराम से सो जाता।

स्वामी जी से कितनी बार कहा– 'ऐसा जादू मुझे भी बतलाइये।' लेकिन स्वामी जी केवल हँस देते थे। मैं कहता, 'अम्मा जी व दादा जी को पता न चले, चुपचाप बता दीजिये ना स्वामी जी', तो वे और हँसते थे। फिर स्वामी जी कहने लगते, 'निरंजन, यह सब बताया नहीं जाता, तुम्हें एक दिन खुद मालूम हो जावेगा। जब हम तुम्हारे जितने थे, तब की बातें तुम्हें बतायेंगे।'

स्वामी जी – जब मैं 4 वर्ष का था मेरी दीदी 6 वर्ष की थी। तब हम लोगों को नैनीताल कॉनवेन्ट में पढ़ने भेजा गया। मैं बहुत शैतानी करता था। कॉनवेन्ट की सिस्टर मुझे हमेशा प्यार से समझाया करती थी। जैसे तुम्हें गुस्सा आता है, वैसे मुझे भी गुस्सा आता था। मेरे पिता जी के पास बन्दूक थी, वे कहते थे, 'कहना नहीं मानोगे तो शूट कर दूँगा।' पिता जी आर्य समाजी थे। जब छुट्टियों में घर आता, वे सुबह-सुबह उठा कर हवन में बैठा देते थे। फिर माता जी कहती थीं, 'जल्दी से गीता पाठ करो, तब नाश्ता मिलेगा।' फिर दादी कहती, 'बेटा, जल्दी से शंकर जी पर पानी चढ़ा आ, महाबीर पर सिन्दूर चढ़ा आ।' मैं सोचता, 'अभी तो सब का कहना मानूँगा, पर बड़ा होकर सब काम अपने मन का करूँगा।'

मैं – स्वामी जी, आप का नाम क्या था पहले?

स्वामी जी – मेरा नाम धर्मेंद्र था, धर्मेंद्र सिंह नायाल।

मैं – कभी दीदी से झगड़ा होता था या नहीं।

स्वामी जी – हम लोग कभी नहीं झगड़ते थे। मेरी दीदी बड़ी अच्छी थी। जब मैं किसी को सताता था तो दीदी मुझे समझाया करती थी। हम लोग सलाह करते थे कि हम घूमेंगे, देश-विदेश जायेंगे, बड़ा-बड़ा काम करेंगे, प्रेस रखेंगे और खूब पुस्तकें छापेंगे। अस्पताल खोलेंगे, उसमें दवा मुफ्त में देंगे। मंदिर बनायेंगे, उसमें दरवाजा ही नहीं लगायेंगे। दिन-रात मंदिर खुला रखेंगे।

मैं – आपके पिता जी का क्या नाम था स्वामी जी? वे भी मील में काम करते थे क्या?

स्वामी जी – मेरे पिता जी का नाम श्री कृष्णसिंह नायाल था। वे मील में काम नहीं करते थे, पोलिस इन्सपेक्टर थे।

मैं – तभी उनके पास बन्दूक थी! मुझे पोलिस वालों का ड्रेस अच्छा लगता है। पोलिस वाले खराब काम करने वालों को पकड़ कर ले जाते हैं, आप तो अच्छा काम कर रहे हैं, इसीलिये आपको पकड़ कर नहीं ले गये हैं। स्वामी जी, आपकी माता जी आपको रामायण और महाभारत की कहानी बताती थीं क्या?

स्वामी जी – हमारी माता जी को समय ही नहीं मिलता था। जब रसोई बनातीं तो हम लोग रसोई में जा भी नहीं सकते थे। खूब छूआ-छूत मानती थीं। फिर गाँधी जी आये, उनके भाषण सुनकर उनमें परिवर्तन हो गया। फिर तो नौकरानी रसोई बनाने लगी। उन्होंने छूआ-छूत मानना व परदा करना छोड़ दिया। गाँधी जी के साथ घूमने लगीं। कपड़े की दुकान व शराब की दुकान में पिकेटिंग भी करने लगीं। तब तो उन्हें कहानी सुनाने का समय ही नहीं मिलता था।

मैं – स्वामी जी, हड़ताल करने वालों को तो पोलीस वाले पकड़ते हैं न, तब तो माता जी को भी पोलीस वाले हड़ताल करने के जुर्म में जेल ले गये होंगे।

मैं – हाँ भई, उन्हें भी पोलीस पकड़ती थी, पर जेल में नहीं रखती थी। जंगल में ले जाकर छोड़ आती थी।

मैं – स्वामी जी, आपने भूत देखे हैं क्या?

स्वामी जी – हमने भूत देखा भी है, पकड़ा भी है, वह हमारा दोस्त है। भूतों का किस्सा तुम्हें पीछे बतायेंगे। अभी देखो, सामने बहुत लोग आ रहे हैं, इन्हें नेति कराना है। नेति का लोटा और गरम पानी ले आओ।

इस तरह मैं कुछ भी पूछता और स्वामी जी मेरे प्रश्नों का जवाब बराबर देते थे। मुझे याद है, स्वामी जी मुझे अच्छे तो लगते थे ही, पर उनके गेरुए कपड़े मुझे बहुत प्रिय थे। अक्सर उनके कपड़े लपेट लेता और जमीन में गन्दा भी कर देता था। जब वे बैठे रहते या प्रवचन देते रहते, मैं उनके पीछे चादर में छुपा रहता। उनके कुर्ते भी बड़े और ढीले-ढाले रहते थे। मैं कभी कुर्ते के अन्दर घुस जाता तो उन्हें गुदगुदी लगती और वे मुझे भगा देते थे।

अम्मा जी बतलाती हैं कि जब मैं 1 माह का था, उस समय स्वामी जी बम्बई से भागलपुर जाते समय 5 रोज के लिये राजनाँदगाँव रुके थे। जब वे आये तो दादी माँ ने मुझे उनकी गोद में दे दिया। 2 मिनट लिये रहे, फिर कहने लगे, बच्चे को संभालो, मुझसे गिर जायेगा। उसी समय के फोटो भी हैं। मुझे तो फोटो को देखकर हँसी आती है।

# – 3 –

जब मैं सन् 1965 की जुलाई में अम्मा जी के साथ मुंगेर गया था, उस समय 14 जुलाई को बड़े स्वामी जी (स्वामी शिवानन्द जी) की बरसी थी, 17 जुलाई को गुरु पूर्णिमा और 26 जुलाई को स्वामी जी का जन्मदिन। हमने वहाँ 3 उत्सव मनाये थे। मुंगेर में 15 दिन का योग प्रशिक्षण सत्र चलता था। आश्रम में कठोर नियम था कि 14 वर्ष से कम उम्र के बालक को नहीं रखते थे। सत्र में आने वाली किसी महिला के साथ छोटा बच्चा हो तो उन्हें धर्मशाला में ठहरना होता था। जब हम गेट पर पहुँचे तो स्वामी जी से पूछा गया कि धर्मशक्ति के साथ निरंजन भी है, गेट खोलें या न खोलें।

स्वामी जी ने कहा, 'निरंजन आश्रम में रहेगा, धर्मशाला में नहीं। गेट खोल दो।' गेट खुलने तक स्वामी जी स्वयं गेट पर आ गये थे। मैंने कहा, 'स्वामी जी, हम आ गये। माता जी कहती थी, हम लोगों को धर्मशाला में रहना पड़ेगा।'

स्वामी जी – निरंजन, तुम हमारे कमरे में रहना। चलो दीपक को प्रणाम करो और जल्दी से नहा लो, फिर भोजन करेंगे।

संयोग ऐसा कि राजनाँदगाँव से सावित्री गुप्ता के साथ 3 वर्ष का सतीश और रायगढ़ से गीता गुप्ता के साथ 3 वर्ष का शरद, ये दो बच्चे आ गये थे। हम लोग खूब शरारत करते, शोर मचाते। शाम के सत्संग में आने वाले आश्चर्य करते कि बच्चों को प्रवेश कैसे मिल गया, तो स्वामी जी कहते थे, 'निरंजन को तो आना ही है, उसके लिये आश्रम का गेट हमेशा खुला रहेगा और उसके कारण इन बच्चों को भी प्रवेश मिल गया है।' मुझे क्लास में भी जाने की इजाजत थी। मैं अपने आसन पर बैठकर सब की नकल करता। मुझे माला, पेन, नोट-बुक भी मिला था। लिखित जप के समय राम-राम लिख कर स्वामी जी को दिखाता था। नाद योग में आसन को लपेट कर घोड़ा बना कर बैठने में मजा आता था और योग निद्रा में मजे से सोता था, नींद भर, पूरा।

जहाँ ऑफिस है, पहले वहाँ पर क्रिया योग कुटिया थी, फूस की। चारों तरफ केले के पेड़, ऊपर अंगूर की बेल फैली थी। मैं कहता था, 'स्वामी

जी, यह तो ऋषि मुनियों का आश्रम है, दो-चार हिरण, एक-आध शेर क्यों नहीं रखते', तो स्वामी जी कहते थे, 'तीन हिरण तो आ गये हैं, और शेर मैं हूँ!' बड़ा मजा आता था।

हाँ, तो क्रिया योग कुटिया में अम्मा जी लोग क्रिया योग का अभ्यास करती थीं। उस समय स्वामी जी मुझे अपने साथ ऑफिस में ले जाते, कुछ लिफाफा देते, और कहते सीधा रखो, अलग-अलग रखो या गिनो। मैं उतना काम कर के अम्मा जी के पास भाग जाता तो फिर बुला लेते और टेबल पर बैठा लेते और कहते, 'ट्रेन कितने बार जाती है, कितने डिब्बे हैं, देख कर बताना।' आश्रम के पीछे ही रेलवे लाइन थी। खिड़की से दिखती थी। मैं देखता और बताते रहता, स्वामी जी हाँ-हाँ कहते और अपना लिखने का काम करते रहते। कभी कहानी बताते, कि मैं एक बार झाड़ से गिरा तो जमीन में धंस गया, फिर घर जाकर कुल्हाड़ी लाया और जमीन को खोदकर बाहर ऊपर निकल आया! कभी सुनाते कि चार पण्डे कैसे रात भर नाव चलाते रहे पर मथुरा घाट में ही रहे, वृन्दावन नहीं पहुँचे।

ऐसे ही अवसर पर मैंने एक बार फिर पूछा, 'स्वामी जी, भूत की कहानी बताइये न, आपने देखे हैं क्या?'

स्वामी जी कहने लगे, 'जब मैं पढ़ रहा था उस समय खूब मोटा हो गया था। लड़के मुझे रोड-रोलर कह कर चिढ़ाते थे। जब 10 वर्ष का था, छुट्टियों में घर आया था, तो एक स्वामी जी आये। उन्होंने मुझे कुछ आसन सिखाये और अपना डण्डा देकर चले गये। मैंने समझा यह जादू का डण्डा है। उसी समय लायब्रेरी में एक पुस्तक मिली पढ़ने को। भूत-प्रेत के बारे में बहुत-सी बातें थीं। मैं और मेरे एक दोस्त, दोनों ने मिलकर सोचा कि हम दोनों श्मशान में जाकर मंत्र साधेंगे। हम दोनों मित्र रात को जादू वाला डण्डा रख लेते और सोचते कि अब हमें क्या डर। डण्डा हमारे पास है। मंत्र साधेंगे। भूत आयेगा और हमारा सब काम करेगा। हमारे पिता जी को पता चल गया। बहुत नाराज हए। बोले, अब रात को घर से बाहर जाओगे तो शूट कर दूँगा।'

हमने सोचा, 'साधना छोड़ेंगे नहीं। थोड़ा-सा मंत्र बचा है, उसे पूरा तो करना ही है। दिन को ही श्मशान से राख लाकर दोनों दोस्तों ने अपनी-अपनी छत पर छिपा दिया। रात को सब सो गये तो हमने छत पर जाकर अपना काम शुरू कर दिया और सच में मंत्र पूरा होते ही ऐसा लगा कि चारों

तरफ कुछ हो रहा है, घर हिल रहा। दादी माँ और माता जी डर गईं। छोटे भाई रोने लगे। हम छत पर थे। पिता जी हमें खोजने लगे। हमने दरवाजा बन्द कर लिया था। वे नाराज हो रहे थे, 'खोलो दरवाजा! नहीं तो दरवाजा तोड़ दूँगा।' वातावरण से हम भी घबड़ा गये थे। कुछ सूझ नहीं रहा था। हमने राख वगैरह सब उठा कर नीचे फेंक दिया। फेंकते ही वातावरण शान्त और स्वाभाविक हो गया। पिता जी नाराज तो बहुत हुए, पर अंत में शान्त हो गये। जिस तांत्रिक साधक से हम सलाह लेते थे, दूसरे दिन उसने हमें बहुत डराया, कि तुमने राख वगैरह फेंका क्यों, अब भूत नाराज होकर तुम्हें भी कुछ कष्ट देंगे। मैंने कहा, 'भूत हमारा क्या कर सकता है', पर मित्र डर गया। मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ, पर मित्र का अचानक चलते-चलते एक्सीडेन्ट हो गया। पैर की हड्डी टूट गई। इस तरह हमने भूतों से दोस्ती की थी।

इस तरह स्वामी जी के साथ हमारा समय बीत रहा था। उन्होने हॉल के सामने बैठ कर मुझे महामृत्युंजय मंत्र सिखाया था। 14 जुलाई को मेरे दादा गुरु, स्वामी शिवानन्द जी का निर्वाण दिवस था। सुबह विशेष भजन-कीर्तन हुआ। 10 बजे दरिद्र नारायण भोजन हुआ। करीब 200 भिखारियों को भोजन और गेरू से रंगा कुर्ता दिया गया। स्वामी जी बड़े खुश थे। स्वयं परोस रहे थे। गोयनका जी भी परिवार सहित परोस रहे थे। सभी आश्रमवासी प्रसन्नता से दौड़-दौड़ कर काम कर रहे थे। मैं भी इस महायज्ञ में इधर-उधर कभी पानी, कभी पापड़ देकर खुश हो रहा था। ऐसा लगता था कि रामायण के चित्र में जो शंकर जी के गण हैं, वे सब यही लोग हैं और स्वामी जी ही शंकर जी हैं। कहीं कोई बाराती भूखा न रह जाये, इसीलिये वे स्वयं परोस कर खिला रहे हैं। शाम को जोरदार सत्संग हुआ। उन्होंने बड़े स्वामी जी की जीवनी बताई। बहुत-सी अच्छी बातें बताईं। प्रसाद भी बँटा।

17 जुलाई को गुरु पूर्णिमा के दिन 4 बजे सबेरे से मंत्र लेने वाले आने लगे थे। पुराने शिष्य, दूसरे गाँव वाले, 16 जुलाई की शाम से ही आ रहे थे। आम, केला और मिठाइयों का ढेर लगा था। हम लोगों को गड़बड़ करते देखा तो सुभद्रा जी ने रसोई में बुलाकर न हमें कुछ प्रसाद खाने को दिया, न कुछ और। हमने कहा, 'बड़ा वाला आम दीजियेगा, तो शोर नहीं करेंगे।' उन्होंने सोचा कि मंत्र दीक्षा और हवन कार्यक्रम चल रहा है, इसीलिये हमें चुप रहने की रिश्वत के रूप में आम दिया और बाहर नहीं जाने की हिदायत भी दी।

2 मिनट के बाद हम बड़ा-सा आम खाते-खाते स्वामी जी के पास पहुँच गये। उनके पास बैठकर स्वाहा भी करने लगे, आम भी खाने लगे। स्वामी जी ने पूछा, 'निरंजन, सुबह से आम खाना ठीक नहीं है, किसने दे दिया?' तो हमने कह ही दिया– 'स्वामी जी, यह आम सुभद्रा माता जी ने दिया है।' स्वामी जी सुभद्रा माता के ऊपर बहुत नाराज हुये। मैं समझ नहीं सका कि स्वामी जी सुबह आम खाने से क्यों नाराज होते हैं। भोजन के समय तो सब को आम देते हैं और मुझे कभी अपना हिस्सा भी दे देते हैं, उस समय मैं 2-3 बड़े-बड़े आम खा जाता हूँ, पर अभी गुस्सा क्यों? फिर अम्मा जी से पूछा तो उन्होंने बतलाया कि सुबह आम खाने से पेट खराब होता है, सर्दी-खाँसी होती है, स्वामी जी इसलिये मना करते हैं।स्वामी जी सब की माँ के सदृश्य हैं? मुझे आश्चर्य हुआ कि स्वामी जी, पिता जी तो हो सकते हैं, माँ कैसे होंगे ...? मैं यही सोचता रहा और बार-बार उनके चेहरे को देखता था। स्वामी जी ने पूछा– 'निरंजन, कुछ सोच रहे हो?' मैंने अपनी शंका बता दी, फिर तो वे बहुत हँसे। कहने लगे, 'आज हम कैसे शेर बने, कितना मजा आया।' मैं भी बहुत हँसा कि हमारे साथ सुभद्रा माता भी हिरन बनी, और इस तरह मुझे आश्रम जीवन का अनुभव मिलना शुरू हुआ।

## –4–

हर सत्र में दूसरे रविवार को रामायण होती थी। सब लोग सुबह से रामायण लेकर बैठे थे। एक टेबल पर चारों साइज की रामायणों का ढेर रख दिया गया था। जो आते एक पोथी लेकर बैठते। 3 बजे बड़ा गेट खुला। शहर की जनता ने आकर रामायण ले लेकर पाठ करना शुरू किया। हाल पूरा भर गया तो लोग बाहर बैठे। 5 बजे आरती हुई। प्रसाद बँटा, भजन, कीर्तन, प्रवचन हुए। फिर साधना करने वालों को दीक्षा पत्र दिया गया। इसके बाद प्रसाद खाने-पीने के लिए 30 मिनट की छुट्टी हुई। तब तक फिल्म दिखाने की तैयारी शुरू हुई। पहले दिखायी गयी 'महात्मा ईसा की जीवनी', फिर दिखायी गयी बच्चों के लिये 'मिकी माउस'। उसमें सबको बहुत मजा आया। खरगोश, चूहे, बिल्ली, कुत्ते–सब सूट-बूट-हैट-टाई लगाये अभिनय कर रहे थे। सब हँस रहे थे।

इस तरह 15 दिन बीत गये। हमारे वापिस आने की तैयारी हुई। स्वामी जी ने रास्ते के लिए सब्जी-पराठे बनवा कर रखवा दिये। बिस्कुट, फल, मिठाई भी रखवाई। अम्मा जी व सावित्री मौसी को रास्ते के बारे में सब बातें समझायीं। हमारे आने के समय स्वामी जी गेट पर आये तो मैंने पूछा 'आप भी स्टेशन चलेंगे स्वामी जी?' स्वामी जी बोले, 'नहीं भाई, हम 3 वर्ष तक कहीं नहीं जायेंगे। डेढ़ वर्ष हो गया, हम गेट के बाहर भी नहीं गये हैं। हमारी इच्छा भी कहीं जाने की नहीं होती, पर आज तुम लोगों को स्टेशन तक पहुँचाने की इच्छा हो रही है, और यह बन्धन अखर रहा है।'

अम्मा जी और सावित्री मौसी से बोले–'बाप के घर से हँसते हुए जाना चाहिये। तुम लोगों ने बहुत कुछ सुना, सीखा और समझा है, कितना हमारा सत्संग किया है। हमेशा याद रखना, भावना से कर्त्तव्य ऊँचा होता है। कर्त्तव्य पथ से कभी नहीं डिगना, और बाप का नाम नहीं डुबाना। रास्ते में बच्चों को अच्छी तरह संभालना। बाप के घर को भूलना नहीं। जब इच्छा हो आना, दरवाजा हमेशा खुला रहेगा। मैं और मेरा आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ है। जाओ जी, अच्छी तरह जाना, जाकर पत्र देना, हरि ॐ तत्सत्।'

इस तरह हम उनसे विदा होकर स्टेशन आये। जब गाड़ी छूटी तो हम आश्रम की तरफ ही देख रहे थे। मुझे लग रहा था स्वामी जी जरूर दिखेंगे और सच ही स्वामी जी खिड़की के पास खड़े हाथ हिला रहे थे। ये बातें हैं तो छोटी-छोटी, पर इनमें जाते जाओ तो लगता है मानो अथाह हैं। जैसे *'हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता'* वैसे ही स्वामी जी भी हैं।

## –5–

*सुना था प्रभु राम हुवे थे, देखा नहीं कृष्ण को कभी।*
*राम और कृष्ण की महिमा, ग्रंथ ही बताते हैं॥*

हम स्वामी सत्यानन्द जी को देख, सुन और समझ सकते हैं। उनसे कुछ ले सकते हैं, पा सकते हैं, समय पर कोई तुलसीदास प्रकट होकर सत्यायण की रचना भी करेंगे। वैसे भी सन् 1954 में पूज्य स्वामी शिवानन्द जी ने स्वामी जी के 31वें जन्मदिवस के उपलक्ष्य में Swami Satyananda–His Life and Works नामक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर सत्यम् रूपी रत्न की

ज्योति बिखेरी ही है। उसमें एक जगह मैंने पढ़ा–प्राय: साठ-सत्तर वर्ष के बाद जयन्ती मनाई जाती है परन्तु सिर्फ तीस वर्ष के एक युवक शिष्य की जयन्ती मनाने का संकल्प कर के जिस नये मार्ग का स्वामी शिवानन्द जी ने निर्माण किया है, इसमें भविष्य द्रष्टा ने महान् भविष्य का संकेत किया है। महान् गुरु के महान् शिष्य, दोनों वंदनीय हैं। अब तो वह पुस्तक दुर्लभ है, इसीलिये मेरी प्रबल इच्छा है कि पूज्य गुरुदेव स्वामी सत्यम् के दो बाल मित्रों, अश्विनी कुमार पंत और के. सी. जोशी के पत्र, जो उन लोगों ने सत्यम् अभिनन्दन ग्रन्थ में छपवाये हैं, उन्हें पूरा का पूरा छपा दूँ। पहले आप लोग श्री अश्विनी कुमार पंत जी का पत्र पढ़िये। देखिये वे क्या लिखते हैं–

## स्वामी सत्यानन्द जी के साहित्यिक जीवन की एक झलक

*लेखक– अश्विनी कुमार पंत*

'आज से पन्द्रह वर्ष पहले की बात है। मैं उस समय गवर्नमेंट इन्टरमीडियेट कॉलेज, अल्मोड़ा में छठवीं कक्षा में पढ़ता था। इसी समय हमारे विद्यालय के कुछ उत्साही नवयुवकों ने 'माँ' नामक एक पत्रिका निकाली। वैसे तो उसमें अनेकों सुन्दर कहानियाँ, लेख और कविताएँ थीं, परन्तु 'हृदयहीन' उपनाम से लिखने वाले एक विद्यार्थी की कविताओं ने कुछ एक हलचल-सी मचा दी। लोगों को विश्वास नहीं होता था कि स्कूल का एक विद्यार्थी ऐसी सुन्दर व महान् रचनायें कर सकता है। उस समय मुझे भी इस ओर रुचि थी। मैंने भी 'माँ' में लिखना आरम्भ किया और शीघ्र ही 'हृदयहीन' से मेरी प्रगाढ़ मित्रता हो गई। यह हृदयहीन थे श्री धर्मेंद्रसिंह नायाल। तब वे नवीं कक्षा के एक होनहार विद्यार्थी थे।

कुछ दिनों बाद धर्मेंद्र ने स्वयं 'भारत' नामक एक पत्रिका का सम्पादन करना आरम्भ कर दिया। धर्मेंद्र के सत्संग ने मेरे हृदय में भी प्रोत्साहन उत्पन्न किया और उनके कहने पर मैंने भी 'अग्रगामी' नामक पत्रिका प्रकाशित की। एक बार जब प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पंत जी अपनी जन्म भूमि आये तो हमने उन्हें अपनी पत्रिकायें दिखाईं। उन्होंने हम लोगों के प्रयास की सराहना की परन्तु कहा कि यदि हम लोग सब मिल कर एक ही पत्रिका निकालें तो

अधिक अच्छा होगा। इस पर मैंने और धर्मेंद्र ने साथ-साथ कार्य करने का विचार किया और 'अग्रगामी-भारत' पत्रिका संयुक्त रूप से प्रकाशित की। धर्मेंद्र से बहुत अनुरोध करने पर भी उसने प्रधान संपादक बनना स्वीकार नहीं किया और विवश होकर मुझे ही यह पद संभालना पड़ा। भले ही धर्मेंद्र सहायक के रूप में कार्य कर रहा था, परन्तु वास्तव में सम्पूर्ण सम्पादन व निरीक्षण उसी के द्वारा होता था।

हम बालकों के इस उद्योग से छोटे-बड़े सभी प्रभावित हुए और हमें प्रोत्साहन मिलता रहा। पन्त जी ने स्वयं अपने हाथों से हमारी पत्रिका में कवितायें लिखीं। धर्मेंद्र ही पत्रिका की आत्मा था। उसने 'हृदयहीन', 'प्रेमी', 'निराला', 'वही' और 'पल्लव' नाम से अनेकों कवितायें, कहानियाँ व लेख लिखे। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी में उसकी योग्यता देख अध्यापक लोग तक दंग रह जाते। इसी समय उसने हिन्दी के मुख्य-मुख्य छन्दों व अलंकारों के प्रदर्शन करने के लिए कवितायें लिखना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रयास में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। जिसने भी इन कविताओं को पढ़ा, बिना सराहना किये न रह सका। 'पल्लव' की कविता अब पल्लवित हो चली थी।

इन्हीं दिनों कविवर सुमित्रानन्दन पंत जी के सम्मान में एक कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। 'पल्लव' की कविता सर्वोत्तम रही। पंत जी ने कहा, 'यह बालक अवश्य ही एक दिन हिन्दी साहित्य में अपना नाम उज्ज्वल करेगा'। पंत जी की वाणी आज सत्य सिद्ध हो गई है। बालक धर्मेंद्र आज स्वामी सत्यानन्द जी के रूप में अपना नाम हिन्दी साहित्य के चिदाकाश में उज्ज्वल कर रहा है।

हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत तथा अंग्रेजी से भी धर्मेंद्र को विशेष प्रेम था। उसने संस्कृत में भी लिखना प्रारम्भ कर दिया था। उसका विचार अंग्रेजी की भी एक पत्रिका निकालने का था। इतनी अल्पायु में तीन साहित्यों का विशेष ज्ञान होना वास्तव में अपौरुषेय था।

अब धर्मेंद्र का मन क्लास की निरर्थक पढ़ाई में बिल्कुल नहीं लगता था। जब अध्यापक अल्जेबरा अथवा ज्योमैट्री समझाया करते तो वह सब से पीछे की सीट में बैठा या तो कविता बनाया करता या अग्रगामी-भारत के लेखों का संशोधन करता रहता। धर्मेंद्र और मैं बहुधा पहाड़ों में घूमते-घूमते बड़ी दूर एकान्त में चले जाते। धर्मेंद्र कभी-कभी हिमालय के अगम्य शिखरों को एक-टक देखते रहता और अपने आपको भूल-सा जाता था। मैं जब कभी उससे इस विषय में पूछता तो वह हँस कर टाल दिया करता था। क्या मालूम

था कि वह हिमालय के उन शिखरों में अपने उस उज्ज्वल भविष्य को खोज रहा था, जो कि संतों के आश्रम में निहित था।

एक दिन धर्मेंद्र एकाएक अल्मोड़ा छोड़कर चला गया। कहाँ और क्यों? किसी को भी नहीं मालूम।

इसी तरह सात साल बीत गये। धर्मेंद्र की आकृति स्मृति मात्र रह गई और जब कभी पुरानी घटनाएँ याद आतीं तो हृदय भर आता था, आँखों से आँसू गिरने लगते। पता नहीं कहाँ है, कैसा है।

सन् 1950 की बात है। मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में एल.एल.बी. का छात्र था। एक दिन मुझे अचानक एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि लेखक मेरे पिछले सात वर्षों के विषय में जानना चाहते हैं, और मेरा पत्र पाने पर अपना परिचय देंगे। कुछ देर तक मैं बड़ी उलझन में पड़ा रहा, लेकिन तुरन्त ही मुझे धर्मेंद्र का ध्यान आ गया। पत्र के नीचे सत्यानन्द नाम के हस्ताक्षर थे। मुझे विश्वास हो गया कि यह स्वामी सत्यानन्द मेरा पुराना सहचर धर्मेंद्र ही है। मैं प्रसन्नता से पागल हुआ जा रहा था। मैंने तुरन्त ही पत्रोत्तर लिखा और मेरा विश्वास ठीक निकला। सात वर्ष पहले जो बालक धर्मेंद्र एकाएक अल्मोड़ा छोड़कर चला गया था, वही आज ऋषिकेश का तपस्वी स्वामी सत्यानन्द है। जिस बालक ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से एक छोटी-सी पर्वतीय नगरी को चकित कर दिया था, वह आज सारे भारतवर्ष को अपने अनवरत परिश्रम द्वारा पूजनीय स्वामी शिवानन्द जी का पवित्र संदेश दे रहा है।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के विषय में अधिक लिखना यहाँ पर अनावश्यक है। उनके असंख्य पाठक उनके सन्यस्त जीवन के विषय में जानते ही हैं। मैंने उनके पूर्वाश्रम की केवल एक झांकी प्रस्तुत की है, जिसके विषय में बहुत कम व्यक्ति जानते हैं। यह मेरा अहोभाग्य है कि अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष मुझे इस महापुरुष के सत्संग में व्यतीत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

आज शिवानन्द नगर में उनकी 31वीं वर्षगांठ मनाई जा रही है, इस शुभ अवसर पर मैं अपनी शुभकामनायें भेंट करता हूँ। ईश्वर से यह प्रार्थना है कि स्वामी सत्यानन्द सरस्वती चिरायु रहें, और सदा अपनी अलौकिक लेखनी द्वारा अपने पूज्य गुरु, श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का अमर पवित्र और कल्याणकारी सन्देश समस्त विश्व को देते रहें।

पंत जी के इस पत्र ने हमें 'पूत के पाव पालने में दिख जाते हैं' वाली झांकी दिखा दी है। दूसरा महत्त्वपूर्ण पत्र श्री के.सी. जोशी जी की कलम से पढ़िये–

# आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व की कथा

*लेखक– के.सी. जोशी*

आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व की बात है, जब मैं अल्मोड़ा में विद्यार्थी जीवन व्यतीत कर रहा था। उसी समय मेरा परिचय धर्मेंद्र नामक एक अद्‌भुत बालक से हुआ। अल्मोड़ा में मुझे लोग 'नानू' के नाम से पुकारते थे। मेरा एक और मित्र था जिसका नाम अश्विनी कुमार पंत (आमी) था। धर्मेंद्र हमेशा से ही कविता की ओर आकर्षित रहे। उनकी अनेक कविताएँ कई पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई थीं। उनके हिन्दी भाषा के ज्ञान को देखकर बड़े-बड़े साहित्यिक और अध्यापक लोग भी आश्चर्य करते थे। उनकी प्रवृत्ति बचपन से ही पवित्र और चिन्तनशील थी।

धर्मेंद्र के पिता पोलिस के इन्सपेक्टर थे। एक छोटा भाई था, जिसका नाम था भूपेंद्र। अल्मोड़ा के नायाल खोले मोहल्ले में वे लोग रहते थे। सन् 1940 में धर्मेंद्र अचानक कहीं चले गये। बहुत पता लगाने के बाद भी कुछ पता न मिला। इन्हीं विचारों में तीन-चार माह व्यतीत हो गये कि एक दिन अकस्मात् ही धर्मेंद्र का पत्र मिला, जिसमें पता चला कि वे Veterinary Research Institute मुक्तेश्वर में थे। अपने मित्र से मिलने की तीव्र अभिलाषा को मैं दबा न सका और दूसरे ही दिन मुक्तेश्वर की ओर चल पड़ा। चौदह मील का रास्ता पार कर अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँचा। ईश्वर की बड़ी कृपा हुई कि मैं समय पर पहुँच गया, नहीं तो धर्मेंद्र अपने ग्राम चले गये होते। उनके ग्राम का नाम गाज था, जो मुक्तेश्वर से चार मील की दूरी पर है। दो दिन के बाद मैं और धर्मेंद्र दोनों साथ ही अल्मोड़ा आये। वे मेरे साथ ही मेरे घर पर रहे। मेरे घर वाले उन्हें आदर और स्नेह की दृष्टि से देखते थे। एक दिन रहने के बाद वे फिर मुक्तेश्वर लौट गये और कीटाणु-विज्ञान (Bacteriology) का अध्ययन करते रहे।

इस प्रकार एक माह भी व्यतीत न हो पाया था कि एक रात अकस्मात् ही धर्मेंद्र आ गये। पूछने पर उन्होंने बताया कि उन्होंने सब कुछ त्याग दिया है। दो-चार दिन रहने के बाद एक दिन बोले कि मैं ऋषिकेश जाऊँगा। मित्र से बिछुड़ते हुए दु:ख तो बहुत हुआ पर ईश्वर की यही इच्छा थी। जाते हुए मुझे अपनी एक फोटो देते गये, जो आज तक मेरे पास है। कुछ दिनों के पश्चात्

उनका एक पत्र मिला, जो उन्होंने ऋषिकेश से लिखा था। उस पत्र में उन्होंने लिखा था, 'मित्र यह मेरा तुम्हारे लिये अन्तिम पत्र है। दूसरा पत्र तुम्हें उस समय मिलेगा, जब मैं सच्चा मनुष्य बन जाऊँगा।' उसी पत्र में उन्होंने यह कविता भी लिखी थी।

*इन गीतों में सुख मेरा है, इन छन्दों में सूना पन है।*
*इन भावों में चिता सजग है, पर मुझमें तो पागलपन है।।*

उस पत्र को पढ़कर मुझे तो रोना आ गया। उसके बाद सात वर्ष तक मुझे उनका पता न मिला। कितनों से पूछा, पर वे कुछ पता न दे सके। सन् 1950 में जब स्वामी शिवानन्द जी भारत भ्रमण के लिये निकले, उसी समय मेरे एक मित्र, आमी का पत्र मुझे मिला कि धर्मेंद्र श्री स्वामी शिवानन्द जी के शिष्य हो गये हैं, और वे सितम्बर में कलकत्ते आने वाले हैं। मैंने कलकत्ते में उनके दर्शन किये, वे वास्तव में एक महान् पुरुष हो गये थे। उनकी तेजोमयी दिव्य मूर्ति को देखकर मेरे नेत्र गौरव से भर आये। उनके उस तेजस्वी स्वरूप को देखकर मुझे सचमुच आह्लाद का अनुभव हुआ। मेरे जैसा मनुष्य भी कितना भाग्यशाली है। स्वामी जी की भेजी हुई 'आरोग्य जीवन', 'शिवानन्द दिग्विजय' तथा अन्य कितनी ही पुस्तकें मैंने पढ़ी। आज भी स्वामी सत्यानन्द जी का पवित्र स्वरूप सदा मेरे हृदय पटल पर अमर है। वह कोख धन्य हुई, जिसमें वे पले, वह भूमि धन्य हुई, जहाँ वे रहे और मैं तो भाग्यशाली हूँ ही, क्योंकि मैंने अपने जीवन के कई वर्ष एक 'जीवन संत' के साथ व्यतीत किये। वे अमर रहें।



स्वामी जी के दोनों मित्रों के पत्र हमें कहाँ से कहाँ पहुँचा देते हें। इन पत्रों को ज्यों-का-त्यों देने का लोभ मैं नहीं रोक सका। वैसे तो पूरी पुस्तक उनके महान कार्यों से भरी है, पर मुझे तो अपना अनुभव लिखना है। स्वामी जी के गुरु भाई स्वामी ज्योतिर्मयानन्द जी लिखते हैं–'गंभीर गगनगामी होमा पक्षी ने तीन-चार अंडे दिये शून्य आकाश में ही। वे गिरने लगे। रास्ते में ही इनसे पंखयुक्त बच्चे फूट निकले। कुछ तो चल पड़े आकाश की ओर 'माँ, माँ' की रट लगाते और एक चल पड़ा मृत्युलोक की ओर, अमरत्व का संदेश सुनाने। और वही हैं सत्यम्–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।'

कितना सुन्दर परिचय है स्वामी जी का। वे तो अथाह समुद्र हैं। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ, गदरे पानी पैठ।' जो जैसा चाहे उसी रूप में उन्हें पा सकता है। मेरे लिये तो वे 'सत्यम् माता, पिता सत्यम्, सत्यम् सखा, भ्राता सत्यम्' हैं। मैं उनके साथ खाता हूँ, साथ में सोता हूँ और कभी हम लोग मल्लयुद्ध भी करते हैं। एक बार जनवरी की बात है, स्वामी जी दोपहर में रजाई ओढ़कर सोये थे, मैं भी साथ में सोया था, उन्हें कहानी सुना रहा था। थोड़ी देर में चंचलता वश बाहर जाता, फिर दौड़ते आता, कूदकर बिस्तर पर चढ़ता और रजाई में घुस जाता। कई बार ऐसा ही किया तो स्वामी जी कहने लगे, 'निरंजन, देखो तुम मेरी रजाई धूल भरे पैर से गन्दी करोगे तो मैं भी तुम्हारी रजाई गन्दी कर दूँगा'। मुझे खूब हँसी आई, मैंने कहा, 'आप की रजाई और मेरी रजाई, दोनों आप की ही तो हैं।' तो वे बोले, 'यह नहीं समझूँगा कि मेरी ही है, मैं तुम्हारी रजाई पैरों में धूल लगाकर जरूर गंदी कर दूँगा!'

## –6–

नवम्बर सन् 1965 में मुंगेर में द्वितीय योग सम्मेलन होने वाला था। मैं जुलाई में मुंगेर आ चुका था, इसीलिये फिर इच्छा हो रही थी मुंगेर आने की, पर दादा जी कहते थे कि सम्मेलन में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चे आयेंगे ही नहीं, फिर तुम्हें कैसे ले जायें। स्वामी जी की चिट्ठी आई कि निरंजन को जरूर लाना साथ में। फिर तो मुझे जाने को मिल ही गया। स्वामी जी मुझे अपने साथ ही रखते थे, लोग कितना ही कहते रहते कि यह तो 5 वर्ष का ही है, हमारा लड़का 10 वर्ष का है या 12 वर्ष का है।

सन् 1966 के तीसरे योग सम्मेलन में स्वामी जी ने कुछ ऐसा कहा था कि अब वे समाधि ले लेंगे। मैंने दादा जी से बहुत जिद की कि स्वामी जी समाधि लेने के बारे में कहते हैं, अतएव मुझे जरूर ले जाइये, पर वे कह दिये कि तुम्हारे लिये स्वामी जी को बहुत बातें सुननी पड़ती हैं और उस समय वे मुझे नहीं ले गये। उधर स्वामी जी दादाजी पर बहुत नाराज हुए कि निरंजन को क्यों नहीं लाये। निरंजन साथ में आवेगा ही, इसलिये हमने आपको धर्मशाला में ठहराने का इन्तजाम किया था कि लोगों को कुछ कहने का मौका न मिले। मैं मुंगेर नहीं जा सका इसलिये चुपचाप घर में बैठा था।

सुबह दूध वाली आई, मुझे देख कर कहने लगी, 'निरंजन बाबा, तुम नहीं गये, स्वामी जी कब आयेंगे यहाँ, उनके दर्शन कब होंगे?' और उसने मुझे एक कहानी बताई कि 3 साल पहले एक बार मोतीपुर में माता (चेचक) की बहुत शिकायत थी। जब कई केस खराब होने लगे तो गाँव वालों ने भजन, कीर्तन, देवी का पूजा-पाठ करना शुरू किया। उस समय हम लोगों के मन में ऐसा लगा कि स्वामी जी गाँव में जायेंगे तो सब ठीक हो जायेगा। हम लोगों ने स्वामी जी से चलने का आग्रह किया। स्वामी जी गये, हवन व कीर्तन कराया, हम लोगों को देवी की महिमा भी बतायी, उसी दिन से बीमारी कम हो गई ओर चली गई, और तब से अभी तक माता से हमारे मुहल्ले में किसी प्रकार का नुकसान नहीं हुआ है। कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं, फिर वह स्वामी जी के फोटो को प्रणाम कर के चली गई।

सन् 1967 में योग सम्मेलन गोंदिया में हुआ। गोंदिया का नाम सुनते ही मुझे खुशी होने लगी कि अब स्वामी जी से मिल सकूँगा। सन् 1967 के 30 अक्टूबर की शाम को स्वामी जी की ट्रेन यहाँ पहुँचने वाली थी, 4 डिब्बे रिजर्व थे उनके, स्वामी जी के साथ 9 माह के टीचर्स ट्रेनिंग वाले साधक थे और मुंगेर निवासी भी थे, तथा खड़गपुर, टाटानगर, रायगढ़ और बिलासपुर से भी लोग शामिल हो गये थे। स्वामी जी 3 साल के बाद निकले थे, इसीलिये हर स्टेशन में लोग उनके दर्शन के लिये उमड़ पड़ते थे। राजनाँदगाँव में भी उनके दर्शनार्थियों से प्लेटफार्म भरा हुआ था। गाड़ी खड़ी हुई, स्वामी जी उतरे, भीड़ उमड़ पड़ी, मानो पुष्पक विमान से श्री राम जी उतरे हों। दर्शनार्थी, गाड़ी से उतरने वाले, गाड़ी से जाने वाले–सभी वहाँ जमा हो गये। ट्रेन 10 मिनट की जगह 40 मिनट खड़ी रही। मैंने तो स्वामी जी को हरि ॐ कहा और वे जहाँ से उतरे थे, उसी डिब्बे में चढ़कर, खिड़की से मजा देखते रहा। सब को स्वामी जी ने प्रसाद दिया, रेलवे वाले भी स्वागत कर रहे थे। सभी स्टेशनों में प्रसाद बाँटते हुए वे गोंदिया पहुँचे।

1 नवम्बर से प्रोग्राम शुरू हुआ। उनके कार्यों को देखकर, उनके प्रवचनों को सुनकर लोग आश्चर्यचकित होने लगे। सुबह 4 बजे से प्रोग्राम शुरू होता था, नाश्ता व भोजन के समय मिलने वालों की भीड़ लगी रहती थी, रात 12-1 बजे तक लोग उनसे अपना शारीरिक व मानसिक दुःख-दर्द बतलाते और उपाय पूछते। स्वामी जी सब को इतने सुन्दर ढंग से समझाते कि दूसरे दिन से ही उनमें परिवर्तन हो जाता, वे स्वस्थ व सबल दिखने लगते थे।

# –7–

सन् 1968 अप्रैल में विदेश जाने के 15 दिन पहले स्वामी जी ऋषिकेश गये थे। अपने गुरु जी की समाधि के दर्शन करने तथा उनसे आशीर्वाद लेने। 9 माह के योग टीचर ट्रेनिंग वाले विद्यार्थी भी थे, मैं व अम्मा जी भी थे। हम लोग 3 अप्रैल की शाम को ऋषिकेश पहुँचे। वहाँ सब इन्तजाम था। एक बस खड़ी थी जो हम सबको आश्रम तक ले गई। वहाँ नई बिल्डिंग में हमें ठहराया गया। 6 कमरे हमें दिये गये थे। सब सामान रखकर, स्नान वगैरह से निवृत्त होकर, हम सब स्वामी जी के साथ गये अन्नपूर्णा में। पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती तो विदेश गये हुये थे। देख भाल स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती करते थे। सेक्रेटरी थे स्वामी प्रेमानन्द जी सरस्वती। उनका आदेश था, पहले स्नान वगैरह के बाद भोजन, फिर ऊपर सबसे मिलने का कार्यक्रम, क्योंकि भोजन 5 बजे शाम को हो जाता था।

हम लोग भोजन के बाद पूज्य स्वामी शिवानन्द जी की समाधि के दर्शन के लिए गये। फिर विश्वनाथ मंदिर और फिर स्वामी कृष्णानन्द जी और स्वामी माधवानन्द जी की कुटियों में। मैं स्वामी जी के साथ ही रहता था। सबकी आँखें मेरे ऊपर लगी रहती थीं। मुझे आश्चर्य से देखते थे। स्वामी जी सब का परिचय देते थे। मेरे लिये कहते, यह अपना परिचय स्वयम् है, इसी से पूछो। स्वामी कृष्णानन्द जी ने पूछा–भाई, तुम्हारा नाम क्या है? मेरे मुँह से स्वामी जी के ही शब्द निकले–जगद्‌गुरु शंकराचार्य स्वामी निरंजन सरस्वती। स्वामी कृष्णानन्द जी ने कहा, 'ओ भाई, इतने बड़े नाम से तो हम डर गये!' सब आकर स्वामी जी से मिल रहे थे, प्रसन्न हो रहे थे। खूब हँस रहे थे। फिर हमने स्वामी सत्यानन्द जी की पुरानी कुटिया देखी।

हम लोगों को स्वामी जी पुरानी बातें बताते जा रहे थे। हम लोग विश्वनाथ मंदिर गये। बगल में एक रूम है जहाँ स्वामी शिवानन्द जी का स्टेच्यू है, जो खिड़की से ऐसा दिखता है कि मानो स्वामी शिवानन्द जी साक्षात् बैठे हैं। और ऊपर गये, वहाँ अखण्ड कीर्तन भवन है, जहाँ 24 घंटे भजन-कीर्तन होते रहता है। सरस्वती जी की विशाल मूर्ति है, बड़े स्वामी जी की मूर्ति भी है। वहाँ कुछ लोग भजन व गीता पाठ कर रहे थे। वहाँ पर भजन, गीता, रामायण, कीर्तन चलते ही रहता है। निश्चित समय पर सुबह और शाम 7 से

9 बजे तक विशेष सत्संग होता है। उस दिन स्वामी सत्यानन्द जी के सम्मान में विशेष सत्संग हुआ। स्वामी कृष्णानन्द जी, स्वामी माधवानन्द जी, एक अमेरिकन स्वामी जी और माता हृदयानन्द जी ने प्रवचन दिया, फिर स्वामी सत्यानन्द जी ने अपने आश्रम जीवन की झाँकी बताई।

दूसरे दिन भी सत्संग हुआ। बाहर से भी लोग आये थे। प्रवचन हुआ। प्रसाद भी रोज बँटता था। तीसरे दिन विशेष सत्संग हुआ विदाई का। पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी को पुस्तकें, फल का पिटारा व मिठाई भेंट दी गई और हलुवा का प्रसाद बाँटा गया।

दिनांक 4 की सुबह हम लोग समाधि दर्शन को गये। वहाँ रोज 1 घंटे तक स्वामी करुणानन्द जी खंजरी बजाकर भजन करते हैं। वे ऑस्ट्रेलिया के हैं। उम्र भी 80 के आसपास है। उनका भजन 'ब्रह्म मुरारी सुरार्चित लिंगम्' बहुत प्रसिद्ध है। फिर हम लोग प्रेस देखने गये। प्रेस में मुझे बहुत दिलचस्पी है, क्योंकि राजनाँदगाँव में मेरा भी एक 'योग विद्या प्रेस' है, इसलिये प्रेस देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। एक कम्पोजिटर है सेवकराम। उसने मुझे सब दिखाया। कितने तरह के टाइप हैं और ऑटोमैटिक कम्पोज़िंग भी बताया। स्वामी जी ने भी कम्पोज़ कर के सब को बताया। वहाँ की सब मशीनें इंग्लिश मॉडल हैं। स्वामी जी ने हमें एक नई मशीन दिखाई जिसमें प्रिंटिंग, कटिंग, फोल्डिंग होकर निकलता है। मैंने सोचा, दादा जी से कह कर ऐसी ही मशीन योग विद्या प्रेस के लिये भी मंगवाऊँगा।

फिर हम बड़े स्वामी जी की कुटिया में गये। वहाँ सब को ही विशेष अनुभूति हुई। उनका आसन, कुर्सी, बिस्तर, ध्यान की जगह, टाइप राईटर, पुस्तकें–सब हमें दिखाये गये। ऐसा लगता था कि स्वामी शिवानन्द जी कहीं से भी आते ही होंगे। स्वामी सत्यम् सब को बता रहे थे अपने गुरुदेव की बातें, पर मेरी आँखें देख रही थीं कि कभी उनकी आँखें चमक जाती हैं, कभी कुछ ढूँढने लगती हैं, कभी गला भर आता है, कभी कुछ सोचने लगते हैं। अचानक मुझे लगा कि स्वामी जी, शिवानन्द जी बन गये हैं और मैं सत्यानन्द जी बन गया हूँ। स्वामी जी मुझसे कह रहे हैं, 'ओ स्वामी सत्यानन्द जी, पुस्तकें सब को दीजिये,' और मैं चौक पड़ा ...

विदेशी महिलायें तो स्वतन्त्र घूमती हैं, हमारे साथ 5 भारतीय मातायें भी थीं। स्वामीजी ने सब से कहा, 'यहाँ आप लोग स्वयं घूमिये, दर्शनीय स्थानों को देखिये, अगर आप लोगों को असुविधा हो तो धर्मशक्ति यहाँ कई बार

आ चुकी है, वह आप लोगों को सब दिखायेगी।' मैंने कहा, स्वामी जी मैं आप के साथ रहूँगा, तो वे बोले, 'निरंजन, मैं यहाँ विशेष प्रयोजन से आया हूँ। मैं अपना काम करूँगा। तुम अम्मा जी के साथ सब देखो, उनसे पुरानी कहानियाँ भी तुम्हें सुनने को मिलेंगी।' हमने लक्ष्मण झूला, गीता भवन, परमार्थ निकेतन, कितने ही मंदिर व आश्रम देखे। पूरा ऋषिकेश घूमे।

मैं अम्मा जी के साथ आश्रम में सब जगह घूमते रहता था। प्रेस में घंटों रहता था। स्वामी दयानन्द जी प्रेस की बातें बताते थे और सेवकराम स्वामी जी की बहुत बातें बताते। अम्मा जी के साथ सब जगह घूमता और पुरानी बातें सुनता रहता। हम लोग समाधि स्थान में घंटों अकेले बैठे रहते।

दिनांक 6 से हरिद्वार में अर्धकुम्भी मेला शुरू था। दिनांक 5 को हमारे बहुत-से साथियों ने दिनांक 6 के सुबह 3 बजे हरिद्वार जाने का प्रोग्राम बनाया। मैंने स्वामी जी से पूछा 'आप जायेंगे स्वामी जी?' तो उन्होंने बताया, 'मैं पहले ऐसी जगह बहुत जाया करता था। मेरे गुरु जी मना करते थे, उस दिन मुझे विशेष काम देते थे पर मैं भी रात को ही वह काम, चाहे लिखना हो, प्रसाद बनाना हो, या जो भी काम हो, पूरा करके सुबह चल ही देता था। एक बार भीड़ में फंस गया तो उत्तरीय गायब हो गया। किसी तरह गंगा जी तक भीड़ के रेले से पहुँच ही गया, पर स्नान करते समय धोती भी शायद किसी के पैर में फंसकर चली गई। मैं भीड़ में पानी के अन्दर कब तक रहता? मैंने सोचा, नागा साधुओं की टोली जा रही है, इतने नागाओं में एक नागा और सही, पर मन में कितनी परेशानी हुई। किसी तरह एक परिचित मिले, उनसे वस्त्र मिला, और जब आश्रम पहुँचा तो बड़े स्वामी जी द्वार पर ही खड़े थे। देखते ही बोले, 'सत्यम् वस्त्रम् देहि।' मैंने चरणों में पड़ क्षमा याचना की, और कहा, आप की आज्ञा न मानने का फल मिल गया, अब ऐसी गलती नहीं होगी, और तभी से हमने कुम्भ में जाना छोड़ दिया है।'

मैं – स्वामी जी, आप कभी बड़े स्वामी जी का कहना नहीं मानते थे, जैसे किसी को कुछ देने की बात पर, बताइये।

स्वामी जी – स्वामी जी तो पूरे शिव भोले थे, हम सेक्रेटरी थे। कोई आकर कहता, स्वामी जी बद्री, केदार या गंगोत्री जाना है, पैसे नहीं हैं या वापस घर जाने के लिये पैसे नहीं हैं, मुझे 60 रु. या दो कम्बल चाहिये, तो स्वामी जी कहते, 'ठीक है जी, जाओ

स्वामी सत्यानन्द से ले लो।' मुझे गुस्सा आता कि खावो-पीवो फिर धोती, कम्बल और रुपये की मांग। मैं उन लोगों से कहता, आपको कहाँ जाना है, चलिये मैं टिकट कटा देता हूँ। रुपये नहीं पाने पर वे लोग जाकर शिकायत करते तो स्वामी जी मुझे बुला कर कहते, 'इन्हें रुपये क्यों नहीं दिये आपने, दे दो भाई।' मैं कुछ कहने लगता तो कहते, 'ओ ... म्।' स्वामी जी का ओम् हमें चुप कर देता। फिर उस आदमी से कहते, 'अरे भाई लड़का ही तो है, जाइये जहाँ जाना है, टिकिट के ही पैसे ले लीजिये।'

मैं – स्वामी जी, क्या पहले भी इतने लोग भोजन करते थे? खूब राशन लाना पड़ता था क्या? अभी तो तीन सौ-चार सौ लोग खाते हैं।

स्वामी जी – पहले भी तीन सौ-चार सौ लोगों का भोजन होता था। राशन भी ट्रक व गाड़ियों से आता था। कई बार न पास में पैसा होता न बैंक में पैसा रहता। हम लोग परेशान होते कि सुबह भोजन की व्यवस्था कैसे होगी। स्वामी जी के पास जाते तो वे कहते, 'फिकर नहीं करना, देने वाला देगा, उसे सब के भोजन की चिन्ता है, हमें व आपको नहीं', और वे कीर्तन करने लगते, और अचानक कहीं से रुपये व राशन आ ही जाता।

एक बार ऐसा हुआ कि कुछ भी न था। शाम होने पर हम सभी परेशान थे। आखिर गये स्वामी जी के पास। उन्होंने कहा, 'क्या राम पर विश्वास नहीं है? भजन करो जी, आत्मविश्वास को सबल बनाओ।' करीब 6 बजे एक कार आई, उसमें एक महिला थी। उन्होंने स्वामी जी के दर्शन की इच्छा प्रकट की। हमने कहा, 'माता जी, अभी स्वामी जी नहीं मिल सकेंगे। आप विश्राम कीजिये, 7.30 बजे सत्संग में उनसे मिलियेगा। उन्होंने दुःखी स्वर में कहा, 'स्वामी जी मैं अभी लौट जाऊँगी, सिर्फ उनके दर्शन करना चाहती हूँ। आप लोगों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ ...।' उनके स्वर व आँसू से हमारा भी मन व्यथित हो उठा। हमने जाकर स्वामी जी का दरवाजा खट-खटाया और निवेदन किया। वे 1 मिनट

आँख बन्द करके चुप रहे, फिर बोले, 'ले आवो।' हमने उन माताजी को बुला लिया। उन्होंने आते ही स्वामी जी के पैर पकड़ लिये और 10 हजार का चेक पैरों पर रख दिया। जरा देर में आँसू पोंछते हुए कहा, 'स्वामी जी, दिल्ली से आ रही हूँ, कैप्टन श्री ... मेरे पति थे, उन्होंने अन्तिम समय में कहा था, कि मैं आप के चरणों में दस हजार रख दूँ, फिर दूसरा खर्च करूँ। आप आशीर्वाद दीजिये कि उनकी आत्मा का कल्याण हो, उन्हें शांति मिले। मुझे अभी वापस जाना है। सब मेरा इन्तजार कर रहे होंगे', और वह चली गई। स्वामी जी आत्म विभोर हो कीर्तन करते रहे। फिर उन्होंने चेक हमें देकर कहा, 'जाइये जी, अभी हलुवे का प्रसाद बनाइये, और सेक्रेटरी महाराज, अपना आत्म-विश्वास सबल बनाइये। प्रभु सब जानते हैं।' हम लोग शाम को ही ऋषिकेश सामान लाने गये और इस तरह सब का भोजन बराबर चलता था। तीन सौ-चार सौ लोग पहले भी भोजन करते थे।

मैं – स्वामी जी, आप पानी भी लाते थे गंगा जी से और रसोई का सब काम भी करते थे?

स्वामी जी – हाँ भई, हमने सब काम किया है। पहले हमें अखण्ड संकीर्तन भवन में कीर्तन की ड्यूटी दी गई थी। वहाँ हम दिन-रात भजन ही करते। थक जाते तो लेट कर ही, 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे' करते रहते। बैठकर, घूमकर, कभी हारमोनियम पर, कभी मंजीरा बजाकर। फिर बर्त्तन साफ किये, पानी लाये, रसोई बनाया। जब सब मिल कर गंगा जी से पानी लाते तो हम जंगल से फूल, बेल पत्ती लाने चले जाते और जब सुबह चार बजे उठते तो अकेले ही 60-70 बाल्टी पानी लाकर भर डालते थे। आनन्द आता रहा उस समय।

मैं – स्वामी जी, आप की कुटिया के उस तरफ चटाई की लेटरीन बनी है। उसे आप ही ने बनाया था क्या?

स्वामी जी – एक अर्द्धकुम्भ के अवसर पर स्वामी चिदानन्द जी ने एक ऐसे कुष्ठ रोगी को देखा जिसके अंग गल रहे थे। उन्हें बड़ी दया आई, और हम दोनों गुरु भाई उसे बोरे में लपेट कर आश्रम

में उठा ले आये। उसकी सेवा व दवाई करने लगे। स्वामी जी ने दवा के लिये रुपये और हमें सेवा का आदेश दिया। हम लोग उसके शरीर में दवाई लगाते, स्नान कराते, टट्टी फेंकते, दाढ़ी बनाते, याने सभी काम करते। मैं सब काम करता पर टट्टी उठाकर दूर फेंकना अखर जाता। आखिर उपाय सूझा। एक दिन चार बांस लगाकर चटाई बांध दिया और रोगी से कहा कि यहाँ बैठकर टट्टी कीजिये, संन्यासी से टट्टी उठवाने के पाप से बचेंगे। तो वह खुश हो गया। तभी से यह बना है, कभी काम आता था। इसे किसी ने निकाला भी नहीं है।

मैं – स्वामी जी योग म्यूजियम में भी तो आपने खूब मेहनत की होगी। कैसे सूझता था आपको?

स्वामी जी – सब स्वामी जी की प्रेरणा थी। मैं कब क्या करता था, स्वयं को कुछ भी नहीं पता। अन्दर से प्रेरणा मिलती थी और मैं उसमें दिन और रात जुट जाता था। कितना भी थका रहूँ, स्वामी जी को देखते ही मुझे रास्ता मिल जाता, और मैं कितना भी कठिन काम को पूरा कर ही लेता था। योग म्यूजियम तो ऐसा लगता था कि मैं जीवन रूपी चित्र अलबम में लगा रहा हूँ।

मैं – स्वामी जी, आपको पहले बड़े स्वामी जी ने कहाँ देखा और क्या बोले?

स्वामी जी – मैं ऋषिकेश आया तो कालीकमली वालों के यहाँ गया। एक बार सत्संग में स्वामी जी भी आये थे। मुझे देख कर बुलाया, 'ऐ लड़के इधर आओ।' मैं पास गया तो 2 मिनट देखते रहे, फिर बोले, 'सुबह शिवानन्द आश्रम में आकर मिलो हमसे।' मुझे वे इतने अच्छे लगे कि मैं सुबह ही उनके पास गया और उन्होंने मुझे अपने पास रखकर भजन करने का आदेश दे दिया। उसी समय अखण्ड संकीर्तन भवन का निर्माण हुआ था। पहली ड्यूटी मेरी ही लगी थी।

मैं – स्वामी जी, पहले कम उम्र वालों को संन्यास नहीं देते थे, फिर आपने कैसे झगड़ा किया?

स्वामी जी – ओह, तुम तो बढ़ी-बढ़ी बातें पूछने लग गये। नियम तो यही था, गृहस्थ आश्रम के बाद संन्यास आश्रम। बेटा-बेटी की शादी

करने के बाद संन्यास लेकर लोग हरिद्वार, ऋषिकेश, उत्तरकाशी जैसी जगह में जाकर भजन-ध्यान करते थे या मथुरा-वृन्दावन में रहते थे। स्वामी चिदानन्द जी, कृष्णानन्द जी, पूर्णबोधानन्द जी और हमने सोचा कि बड़ी उम्र में लोग संन्यास लेकर जप, ध्यान, साधना करते है और अपना ही उपकार कर के मर जाते हैं। हमने इसी उम्र में संन्यास लेने का निश्चय किया कि इस उम्र में साधन पथ पर चलते हुए देश के लिये भी कुछ कर सकेंगे। स्वामी जी के शान्ति पथ के इतिहास में हम लोग कुछ अध्याय जोड़ सकेंगे। जिसका पन्ना फट रहा हो, उससे क्या आशा कर सकेंगे। हमने स्वामी जी से निवेदन किया कि आप बूढ़ों को संन्यास देकर माला देकर बैठा देते हैं, वे साधना करके अपना कल्याण कर लेते हैं। हमें संन्यास दीजिये। और उन्होंने हमसे कहा–

*राही! सोच समझकर आना*
*इस पथ में आराम नहीं है*
*कहीं पर भी विश्राम नहीं है*
*जीवन भार उठा कर पंथी*
*बहुत दूर है जाना।*

पहले तो हमें स्वामी जी ने बहुत टाला। लेकिन आखिर हमारी बातें उन्हें माननी ही पड़ीं। शिवानन्द आश्रम में कम उम्र के संन्यासी, ग्रेजुएट संन्यासी, कर्मयोगी संन्यासी मिलेंगे, जो प्रेस, अस्पताल, स्टूडियो, पोस्ट ऑफिस, सब काम संभाल सकते हैं।

निरंजन तुम तो बड़ी-बड़ी बातें पूछने लग गये। चलो सत्संग का समय हो चुका है।

और हम लोग ऊपर गये।, पर मुझे चैन कहाँ? सब बातें अम्मा जी को बताने और क्या पूछना चाहिये, यह जानने की उत्सुकता थी। थोड़ी देर में अम्मा जी को लेकर आ गया और हमारी बातें होने लगीं।

## –8–

दिनांक 6 की सुबह तीन बजे कई लोग हरिद्वार गये। हमारे कमरे की बूढ़ी माता जी भी गई। अम्मा जी वगैरह ने सोचा हम लोग वहीं चल कर स्नान करेंगे। मैं भी चलने लगा, अम्मा जी ने मना किया। मैं नहीं माना तो उन्होंने सहेलियों को जाने दिया, बोली काफी ठंडी हवा है, मैं निरंजन को लेकर एक घंटे बाद आऊँगी नहाने। मैंने नहाने जाने को बहुत कहा तो वे मुझे शॉल ओढ़ाकर बोलीं, 'चलो घूमेंगे।' हम लोग गंगा किनारे घूमते-घूमते बड़े स्वामी जी की कुटिया की तरफ चले गये। उधर गहराई व चट्टान के कारण नहाने वाले नहीं रहते, दिन में हमेशा नाव या मोटर बोट खड़ी होती हैं।

मुझे बातें व कहानी सुनने का बहुत शौक है। कुछ-कुछ पूछते जा रहा था। कुटिया की ओर गंगा किनारे सुनसान में मुझे उजाला-सा लगा। मैं जल्दी से आगे बढ़ा और वापस आकर बोला, 'अम्मा जी, वहाँ बड़े स्वामी जी की ज्योति है, जल्दी चलिये,' और हाथ पकड़ कर दिखाया, 'ये देखिये।' अम्मा जी ने धीरे से कहा, 'ये बड़े स्वामी जी नहीं, अपने स्वामी जी हैं, ध्यान कर रहे हैं।' फिर वापस आकर उन्होंने बताया कि 'कई बार मंत्र देते समय बड़े स्वामी जी के चेहरे से ज्योति इसी प्रकार निकलती थी। स्वामी जी अपने गुरु का ध्यान कर रहे होंगे, और यह ज्योति ध्यान की होगी या गुरु जी के आशीर्वाद की होगी।'

अम्मा जी ने बताया कि 'गुरु और शिष्य दोनों ही महान् हैं। गुरु जी का शरीर समाधि में है, पर उनकी आत्मा उनके शिष्यों में ओतप्रोत है और उनके मार्ग में ज्योति बिखेरती, उनके पथ को आलोकित कर रही है।' मेरी तो समझ में कुछ आ ही नहीं रहा था। बस स्वामी जी और ज्योति ही दिखते थे। अम्मा जी से पूछते ही जा रहा था। अम्मा जी ने बताया, 'सन् 1959 के मई महीने में, तुम्हारे भगवती चाचा के गाँव में हम लोगों का साधना कैम्प लगा था। हम लोग 7 व्यक्ति थे। 4 बजे सुबह से हमारी साधना शुरु होती थी। एक बड़े कमरे में ध्यान का क्लास लगता था। एक दिन सुबह करीब साढ़े चार बजे मुझे ध्यान में अजीब-सी अनुभूति हुई। मैंने घबड़ाकर आँखें खोली तो स्वामी जी के शरीर से ज्योति निकल रही थी। जैसे अभी तुमने

देखा है, वैसे ही ज्योति। मैं देखती ही रही, कब बन्द हो गई, मुझे पता ही नहीं चला। उसके बाद ध्यान में कई दिनों तक नहीं बैठ सकी और अपना पुरश्चरण भी पूरा नहीं कर सकी।'

उसके बाद स्वामी जी माउन्ट आबू गये। फिर आकर बांधा गये जुलाई में, गुरु पूर्णिमा से चार दिन पहले। बांधा बाजार में सेठ बलभद्र जी के बगीचे में चातुर्मास करने की बात तय हुई थी। तुम्हारे दादा जी और मैं गुरु पूर्णिमा के दिन सुबह बस से बांधा गये। हम पूजा का सामान और प्रसाद ले गये थे। देहाती नदी, कच्ची सड़क, बस धीरे-धीरे गई। कई जगह रुकी भी। हम लोग 11 बजे के बाद बांधा पहुँचे। बगीचे में जाकर कुटिया का दरवाजा खट-खटाया। वहाँ स्वामी जी ने विशेष साधना शुरु की थी 2 माह के लिये। सुबह से शाम तक एकान्त और साधना, शाम को हल्का फलाहार-सा भोजन, फिर सत्संग। हाँ, तो उस दिन सुबह से ही दरवाजा बन्द था। आवाज सुनकर स्वामी जी भीतर से बोले, 'सत्यव्रत जी हैं क्या?' और दरवाजा खोल कर बोले, 'हम जानते थे आप लोग आयेंगे। पर बड़ी देर कर दी। क्या भोजन कर के आ रहे हैं?' तुम्हारे दादा जी बोले, 'स्वामी जी, पहले पूजा, फिर प्रसाद लेंगे। हम लोग सुबह से चले हैं।'

स्वामी जी बोले, 'आप लोग कितनी पूजा करेंगे! अच्छा चलिये, यह जो छोटी-सी पहाड़ी है, वहाँ हनुमान जी का मन्दिर है, वहीं एकान्त में बैठेंगे।' फिर हम तीनों ऊपर गये। हमने पूजा की। स्वामी जी आँख बन्द करके बैठे थे। ऐसा लगा कि वे ध्यान में हैं। हम लोगों ने भी ध्यान करना चाहा, पर मेरी आँखें बंद नहीं हो रही थीं। ऐसी ही ज्योति निकली। मैंने तुम्हारे दादा जी को भी दिखाया। देखते-देखते ऐसा लगा कि वह ज्योति हम लोगों की तरफ बढ़ रही है। मैं घबड़ा गई। आँखें बन्द हो गईं, फिर भी तेज सहन नहीं हो रहा था। मैंने दोनों हाथों से आँखों को दबा लिया। तन्द्रा जब टूटी, तुम्हारे दादा जी कह रहे थे, 'पानी ले आओ और स्वामी जी को परोसो।' मैंने आँखें खोलीं तो स्वामी जी हँस रहे थे। हमने स्वामी जी का प्रसाद खाया। जरा देर बातें कीं, फिर वापस राजनाँदगाँव आ गये।'

मैंने पूछा, 'मैं कितना बड़ा था उस समय?'

तो अम्मा जी ने हँसते हुए कहा कि निरंजन, स्वामी जी शायद तुम्हें ही ढूँढ रहे थे उस ज्योति में। यह बात है जुलाई 1959 की, और तुम्हारा जन्म है फरवरी 1960 का।

# –9–

मैं हमेशा कल्याण की कहानियाँ पढ़ता था और मेरी दादी भागवत पुराण की कहानियाँ हमेशा बताती थी। कई जगह प्रसंग आता है, श्राप-वश या कार्य-वश देवताओं को भी जन्म लेना पड़ता है। वे जन्म लेते हैं, मानवीय लीला भी करते हैं। जैसे राजा जनक थे, दुनिया की नजरों में भोगी, पर वे थे यथार्थ में योगी, महान् योगी। वैसे ही हमारे गुरुदेव स्वामी सत्यम् हैं। मुंगेर का योग विद्यालय–शिवानन्दाश्रम क्या राजमहल से कम है! पर वे रहते हैं जमीन के अन्दर छोटे-से कमरे में, जिसे 'अन्डर ग्राउण्ड' कहते हैं।

दूध कितना भी आवे, पर उन्हें चाहिये सिर्फ एक कप चाय, वह भी नींबू की काली चाय। कितना ही भोजन बने पर उन्हें चाहिये एक-दो रोटी, थोड़ी-थोड़ी दाल, चावल, सब्जी। यदि सब चीजों को एक कटोरे में मिलाकर दे दो तो और भी अच्छा। भोजन भी एक बार ही चाहिये। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, राजनीतिज्ञ श्री कृष्ण, अपने समय और अपनी जगह पर ठीक थे। पर आज के युग में, जहाँ 'मैं' के अलावा मेरा कोई अस्तित्व है ही नहीं, इस कलयुग में, योग को इतने व्यावहारिक रूप में सर्वसुलभ करके शारीरिक और मानसिक शान्ति रूपी गंगा बहाने वाले स्वामीजी भगीरथ, राम और कृष्ण ही होंगे। उनके साथ रहकर मैंने यही समझा है। स्त्री और पुरुष में कोई भेद है ही नहीं। भेद तो देखने वाले की आँखों में है। स्वामी जी तो शरीर के अन्दर जो जीवात्मा रूपी कीमती तत्त्व है, उसे ही देखते हैं।

स्वामी जी जो भी बात बतायेंगे या समझावेंगे, आत्म विश्वास के साथ। उनकी बातें जीवन की अनुभूति है, सच्ची अनुभूति। स्वामीजी अटूट आत्म-विश्वास से जो भी बात कहेंगे, सुनने वाले के हृदय में अंकित हो ही जाती है। कोई कैसा भी तर्क लेकर आवे, मन शान्त करके ही जावेगा। प्राचीन ऋषियों के तपोवन का चित्र जिसमें शेर-हिरण और सभी पशु-पक्षी एक साथ ही रहते हैं, उसी का बदला हुआ चित्र देखिये शिवानन्दाश्रम, मुंगेर में। भारतीय और विदेशीय, स्त्री और पुरुष, एक साथ साधना करेंगे, एक साथ भोजन करेंगे, थाली धोवेंगे, सुबह तीन बजे स्नान भी करेंगे। योग विद्यालय के अन्दर आप देखेंगे– *'जात पात पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।'*

स्वामी जी के पास अपना और पराया, देशी और विदेशी, स्त्री और पुरुष का भेद है ही नहीं। उनकी आँखें केवल आत्मा को ही देखती हैं। उन्हें निन्दा-स्तुति की परवाह नहीं। जब वे शिवानन्दाश्रम, ऋषिकेश में थे, उस समय बड़े स्वामी जी की अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद में दिन-रात एक कर देते थे, और अब मानव मन के अनुवाद में दिन और रात लगे रहते हैं। मानव किस तरह जप-ध्यान, आसन-प्राणायाम, भोजन-उपवास, भजन-कीर्तन से अपने शरीर और मन को स्वस्थ और शान्त बना कर आनन्दानुभूति का अनुभव कर सकता है। इसी के प्रयोग में उनका समय लगा रहता है। उनकी इस प्रयोगशाला में बड़े-बड़े डॉक्टर और सिविल सर्जन आश्चर्यचकित होकर आते हैं और सफलता की चाबी लेकर ही लौटते हैं।

विश्व के सभी राष्ट्रों से साधक आते हैं। योग रिसर्च के लिये विदेशी साधक आसन-प्राणायाम-जप-ध्यान के साथ योग के सभी पहलू को आत्म-विश्वास से सीखते हैं। गीता-रामायण श्रद्धा से सुनते हैं और समझने का प्रयत्न भी करते हैं। हिन्दी-संस्कृत पढ़ना भी शुरु करते हैं और गुरु मंत्र का पुरश्चरण भी करते हैं। एक प्रसंग सुनिये।

जनवरी, सन् 1969 की बात है। सुबह 3 से 8.30 तक क्लास, फिर चाय-नाश्ता, 9 से 11.30 तक क्लास, फिर भोजन-विश्राम, 2 बजे से 4 बजे तक क्लास फिर शाम का भोजन, शाम को 6 बजे से सामूहिक सत्संग, प्रश्न-उत्तर या शंका समाधान, 7.30 बजे के बाद जप-ध्यान या विश्राम। यदि चाहें तो कुछ देर हवन कुण्ड में बैठकर कुछ चर्चा कर सकते थे। वहाँ पर अपनी व परिवार की, साधना की या विनोद की, हर तरह की बातें होती थीं। एक दिन 50-60 साधक-साधिकायें हवन कुण्ड के चारों तरफ, सीढ़ी में, लान तक बैठे हुए थे; चर्चा कृष्ण जी पर चल रही थी। एक विदेशी साधक ने आश्चर्य से पूछा, 'स्वामी जी, कृष्ण जी तो योगी थे, पर उनकी सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ कैसे थीं? सोलह हजार एक सौ आठ रानियों के वे पति कैसे हो सकते हैं?'

स्वामी जी ने समझाया कि 'पति' सिर्फ husband को नहीं, रक्षक को भी कहते हैं। जैसे राष्ट्रपति, याने देश का जिम्मेदार व्यक्ति। जब असहाय राज कन्याओं को भौमासुर सिद्धि के लालच में अग्नि में बलि देने ले जा रहा था उस समय कृष्ण जी ने उन सब की रक्षा की। अब वे बेसहारा थीं। उन सब को भोजन, वस्त्र और जीवन निर्वाह के सभी साधन देकर, उनका पालन-पोषण

किया। रक्षक, स्वामी या पति जो भी कह सकते हैं, पर husband नहीं। जैसे आप सब यहाँ हैं, यहाँ का प्रमुख जिम्मेदार व्यक्ति मैं हूँ, आप सब ने अपने आप को मेरे भरोसे छोड़ दिया है, मैं आप लोगों को ज्ञान और शिक्षा देने वाला हूँ, आपकी रक्षा करने वाला हूँ, याने आप लोगों का पति हूँ, स्वामी हूँ, husband नहीं हूँ। सभा का संचालन करने वाला सभापति कहलाता है। वह सभा का husband नहीं होता। समझने में जरा-सा फेर हुआ कि बात का बतंगड़ बना। जैसे रामायण में अंगद ने रावण के दरबार में कहा, 'फिरहिं रामु सीता मैं हारी।' अंगद ने कहा, 'राम सीता तो वापस हो ही जायेंगे, मैं हार जाऊँगा।' अंगद ने यह तो नहीं कहा, 'राम वापस जायेंगे, मैं सीता को हार जाऊँगा।' अर्थ लगाने वाले चाहे जैसा अर्थ लगाते हैं।

स्वामी जी के एक-एक वाक्य हृदय में अंकित हो जाते हैं। उनके कार्य देखकर भ्रम होता है। योग में कोई भी साधना ऐसी नहीं जो उन्हें सिद्ध न हो। यंत्र विद्या, तंत्र विद्या, मंत्र विद्या, वाक्-सिद्धि, स्पर्श-सिद्धि, दृष्टि- सिद्धि, गन्ध-सिद्धि और भी जितनी सिद्धियाँ हैं, सब स्वामी जी के चरण चूमती हैं, लेकिन उन्होंने कभी सिद्धियों का प्रदर्शन नहीं किया। हाँ, जन कल्याण के लिये जरूर प्रयोग करते होंगे, भले ही उन्हें परेशानी क्यों न हो। आपको एक बात और बता दूँ। आप स्वामी जी के बारे में जानना चाहते हैं तो यदि उपलब्ध हो तो कल्याण के सन् 1940 के विशेषांक याने आज से 30 वर्ष पहले के अंक में, उनके बारे में एक छोटा-सा लेख पढ़िये और स्वयं सोचिये।

मैंने स्वामी जी के बारे में बहुत-सी बातें बताईं। आगे और भी बताऊँगा। इसे मात्र कहानी न समझिये। इसे पढ़कर सत्यम् रूपी समुद्र से मोती निकालने का प्रयत्न कीजिये। सत्यम् रूपी गंगा बह रही है, आप लोग जल लेते जाइये। आप को अब एक कहानी सुनाऊँगा।

एक बार देवराज इन्द्र ने तीन मुनियों की तपस्या भंग करनी चाही, और उन्हें डिगाने के लिये केंचुली-नृत्य का कार्यक्रम बनाया। नृत्यांगनाओं ने नृत्य शुरु किया। उर्वशी ने नृत्य करते-करते वस्त्र उतारना शुरू किया। जैसे ही पहला वस्त्र उतारा, एक मुनि बोल उठे, 'बन्द करो यह नृत्य'। उर्वशी ने अन्य अप्सराओं से कहा, 'इनकी तपस्या भंग हो गई।' उर्वशी ने दूसरा वस्त्र उतारा। दूसरे मुनि चीख उठे, 'इस अश्लील नृत्य को बन्द कराइये देवराज।' उर्वशी ने कहा, 'इनकी तपस्या भी भंग हो गई।' उर्वशी पूरे वस्त्र उतार चुकी थी और नृत्य करते-करते थक रही थी, पर मुनि मार्कण्डेय नृत्य देखने में

मग्न थे। उन्होंने कहा, 'नर्तकी! शरीर के सभी वस्त्र तो तुमने उतार डाले, अब ऊपरी चर्म भी उतार डालो। हड्डियों के ढाँचे में नाचती तुम बड़ी भली लगोगी,' और इन मुनि की तपस्या अभंग रही। कहीं मुनि मार्कण्डेय ही न हों हमारे स्वामी सत्यानन्द के रूप में। कंचन का संन्यास कठिन है, कामिनी का संन्यास कठिनतर है और कठिनतम है यश और नाम का संन्यास।

*'क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया'* के गहन पथ पर सतत् साहस के साथ चलने की इन्होंने भीष्म प्रतिज्ञा की और एक शुभ घड़ी में '... सन्यस्तं मया' की गंभीर गुरु गर्जना की, और सुन्दरम्-शिवम् की खोज में चलने वाला युवक स्वयं 'सत्यम्' हो गया।

सुन्दर नारायण शास्त्री लिखते हैं कि स्वामी सत्यम् अपने गुरु की प्रतिमूर्ति हैं। वही मस्ती, वही मुस्कान, वही कर्मठ जीवन आप में है जो शिव में था। पर आप में अहं नहीं। नित्य-प्रति आप गुरु का दर्शन करने जाते, उस समय एक अद्‌भुत छटा फैल जाती थी। वहाँ आप छाया के समान खड़े होते थे, लगता था कि शरद के चन्द्र का प्रतिबिम्ब धवल जल में पड़ रहा है। उस समय आपका बाल रूप फूट पड़ता था। विचित्र होता था वह समय।

योग्य गुरु के योग्य शिष्य स्वामी सत्यम् कई जगह अपने गुरु के नाम शिवानन्दाश्रम बनाकर और अखण्डदीप प्रज्ज्वलित करके गुरुदेव के यश को देश और विदेश के कण-कण में बिखेर रहे हैं।

क्रिया योग जैसी गुप्त साधना को स्वामी जी ने जन-जीवन में सुलभ कर दिया है। जिस साधना को संन्यासियों ने गुफाओं और कन्दराओं में अपने को कैद कर के किया, उसी साधना को स्वामी जी ने हॉल में ज्योति के सामने बैठकर एक साथ सैकड़ों लोगों को सिखाया। मुझे याद है सन् 1965 में जब मैं पहली बार अम्मा जी के साथ आया था, उस समय स्वामी जी क्रिया योग की दीक्षा क्रिया योग कुटिया (फूस की कुटिया) में देते थे। अम्मा जी और साथियों को सिखाने के बाद स्वामी जी ने उन लोगों को यह आदेश दिया था कि इस क्रिया का नाम कहीं पर नोट नहीं करना। किसी को न पूछना न बताना। यदि एकान्त न मिले तो चेहरे पर चादर डालकर करना। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने जब स्वामी जी से इस बारे में पूछा तो उन्होंने बताया, 'इस क्रिया का नियम ही ऐसा है। जब तक स्वामी शिवानन्द जी जीवित थे मैंने किसी को नहीं दिया। 14 जुलाई को स्वामी जी ने निर्वाण प्राप्त किया, उसके बाद ही मैंने क्रिया योग देना शुरू किया है'।

फिर स्वामी जी हँसने लगे। मैंने कारण पूछा, तो उन्होंने कहा, 'कई साधनायें तो मैंने बड़े स्वामीजी से छीन ली थीं।' मैं समझ नहीं सका। तब स्वामी जी ने बताया, 'कुछ साधनायें ऐसी थीं जिन्हें स्वामी जी ने हम लोगों को नहीं बताया था। पर वे अपनी कुटिया में साधना करते थे, और मैं अपनी कुटिया में साधना करता। अपने को उनमें लीन करके उनकी गुप्त साधना को मैं सीख सका था।'

मैंने पूछा, 'स्वामी जी को इसका आभास तो रहा होगा।'

स्वामी जी ने कहा, 'उन्हें सब मालूम था। यदि वे गुप्त विद्या देना नहीं चाहते, तो मेरा कनेक्शन अपने से मिलने ही नहीं देते। शायद उनकी प्रेरणा से ही मेरे मानस की लाइन मिली हो या अपनी शक्ति का मीडियम बनाने के लिये करेन्ट मिलाये होंगे। जैसे-जैसे शिष्य की साधना गहरी होते जाती है, वह गुरु के निकट होते जाता है। गुरु और शिष्य शरीर से दो, पर आत्मा से एक हैं। इस युग में सच्चे गुरु और सच्चे शिष्य बहुत कम हैं। स्वामी जी तो बड़ी शांति से इतने महान् कार्य का श्री गणेश कर गये, पर हमें देखो न, इधर-से-उधर भटकना पड़ रहा है।'

यह कहकर वे हँस पड़े। फिर गम्भीर होकर कुछ सोचने लगे। मुझे ख्याल आया, दीवाली के दिन खूब पटाखे चलाये हमने। स्वामी जी बहुत खुश थे, बहुत लोग बैठे थे। किसी ने कहा, निरंजन के कारण आश्रम में बड़ी रौनक हुई, तो स्वामी जी कहने लगे, 'भगवान ने हमसे कहा कि तुम्हें बेटा नहीं देंगे, पर चेला तो जरूर ही देंगे।' मेरे मन में भावना उठ रही है कि जैसे शिवम् के लिये सत्यम्, वैसे ही सत्यम् के लिये निरंजन।

मैंने आप लोगों को बहुत-सी बातें बताई हैं, अब इस पुस्तक को समाप्त करूँगा। यदि आप लोग और जानना चाहेंगे तो मैं हमेशा आप लोगों की सेवा में ऐसी पुस्तक प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता रहूँगा।



# निरंजन नीरांजलि

## *स्वामी निरंजन की बाल्यकालीन रचनाएँ*

*'होनहार वीरवान के होत चिकने पात'*– स्वामी निरंजन की प्रखर बुद्धि, स्वतंत्र चिंतन, प्रकाण्ड विद्वत्ता और बहुआयामी प्रतिभा उसी समय परिलक्षित होने लगी थी, जब उन्होंने बचपन से योग विद्या पत्रिका के लिए कविताएँ और लेख लिखने शुरू किये थे। कहीं पर कोमल हृदय का मृदु काव्य तो कहीं कर्मठ क्रांतिकारी का प्रेरक उद्‌घोष; कहीं भावुक शिष्य की प्रेमपुलकित श्रद्धांजलि तो कहीं युगद्रष्टा की कठोर चेतावनी– इन अल्पवयस्क योद्धा संन्यासी के मन-कोदण्ड से छूटे अमोघ वाक्-बाण अपने निशाने पर लगने से नहीं चूकते।

*– सम्पादक*

# निरंजन नीरांजलि

गिरिवर के उत्तुंग शिखर पर
सुरसरि के पावन पथ पर।
शान्ति दूत अध्यात्म भूत
तेरे ही कारण गर्वित धरा महान्॥
तुमको प्रणाम हे ध्रुव ललाम।
हे सत्यम्! तुमको प्रणाम॥

तेरे पद रज भी पा जाऊँ
यदि तेरे अगण्य भक्तों की भी।
हे करुणामय तर जाऊँ
मिट जावे लालसा जी की॥
तुम अखिल धरा के गुरु महान्।
हे सत्यम्! तुमको प्रणाम॥

देव तुम परम सच्चिदानन्द
हम मृत्यु लोक के भार।
करो हे सत्यम् करतार
श्रद्धा के दो फूल स्वीकार॥
श्रद्धा-सिंचित संपृक्त हिये
अंजलि में दो अल्प प्रसून लिये
हे सत्यम्! तुमको प्रणाम॥

*योगविद्या, जुलाई 1969*

# आत्मसुधार यज्ञ

यह मानव-जीवन परमात्मा का अमूल्य वरदान है। इसके दुरुपयोग से मनुष्य राक्षस बन कर विध्वंसकारी कार्यों से मानवता का शत्रु बन सकता है, और सदुपयोग से देवता बन कर मानवता का अनन्त कल्याण कर सकता है।

यह जीवन स्वयं में एक बहुत बड़ा प्रयोग है, जो परमात्मा की परम शक्ति-प्रकृति के निर्देशन में हो रहा है। पूरा विश्व ही इसके लिये एक सुन्दर प्रयोगशाला है। हमारी आध्यात्मिक चेतना विषय के अंधकार में बहुत नीचे गिरी हुई है। हम दिव्य परमात्मा स्वरूप सच्चिदानन्द होकर भी अपने को भूल बैठे हैं। अविद्याग्रस्त होने के कारण हमने मोह की मदिरा पी ली है। नशे में अपनी सारी आध्यात्मिक विभूति गँवा बैठे हैं, फिर दीन-हीन-दुःखी होकर क्षणिक विषयों के पीछे पागल की भाँति घूम रहे हैं।

संसार के क्षण-भंगुर विषय मृगतृष्णा के जल की भाँति हैं, जिसके पान से मानव की अतृप्त आत्मा तृप्त नहीं हो सकती। आज इस भौतिकवाद के युग में भोग और तृष्णा की ज्वाला ने इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि सारी मानवता पूर्णतः अशान्त है। हममें सच्ची शांति नहीं, सुख नहीं, संतोष नहीं, केवल अशांति, दुःख, और भय का वातावरण छाया हुआ है। यह अविद्याग्रस्त मानव अज्ञान के कारण मृत्यु के गर्त की ओर बेतहाशा भागा जा रहा है, पर इसे स्वयं पता नहीं। मृत्यु के भय से ग्रस्त, अविद्या के भय से अन्धकार में भटकते हुए दुःखी मानव को सत्य का सही मार्ग कौन बतलायेगा? सच्ची शांति, सच्चा सुख कहाँ मिलेगा? वह कौन-सी जगह है, जहाँ पर जाने के बाद पूर्ण विश्रान्ति मिलती है, सारी अपूर्णताएँ समाप्त हो जाती हैं, सारी उलझनें संतोष और शांति में बदल जाती हैं?

### परमात्मा का स्वरूप

वह जगह है परमात्मा के चरण। वह परमेश्वर कहीं दूर नहीं, बल्कि अपने ही अन्तस्तल की गहराइयों में छिपा है। वह है सत्य की परम ज्योति जिससे संसार के सारे विषय प्रकाशित होते हैं। वह है अनन्त शान्ति, शक्ति, प्रेम, आनन्द और अमृत का समुद्र। मैं इस असत्यपूर्ण मायावी जीवन को उसी परम सत्य के चरणों में समर्पित करता हूँ, जो सबका आधार है। मेरे जीवन

का हर क्षण और उसकी सारी चेष्टाएँ उसी परमात्मा के लिये होंवे, इसका मैं प्रयास कर रहा हूँ। यही है मेरा आत्मसुधार यज्ञ। वह सत्य मेरे लिये परम ज्योति का रूप है।

## सत्य की शरण

अनन्त ज्ञान और प्रकाश की किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं। मुझे विश्वास है कि अविद्याग्रस्त, दु:खी मानव को सत्य के चरणों में शांति मिलेगी। ऊपर उठने की प्रेरणा-शक्ति सत्य ही देता है। सूर्य की भाँति वह सबको जगाता है। हे अज्ञानान्धकार में भटकने वाले मानव! तू सत्य की शरण में जा, वहाँ तुझे ज्ञान का आलोक मिलेगा, शक्ति की प्राप्ति होगी। आनन्द और अमृत का सागर लहरायेगा। इसीलिये हम प्रार्थना करते हैं उस परम शक्ति से कि तुम मझे ले चलो – असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर। सत्य, प्रकाश और अमृत का समन्वय करते हुए साधक सच्चिदानन्द योग की शरण लेता है।

## योग का ध्येय एवं स्वरूप

योग हमारी माँ है। सारे विश्व में स्वामी जी के द्वारा दिव्य-चेतना संचरण हो रहा है। योग परमात्मा की एक दिव्य शक्ति है, जो दुनिया की अनेक विषमताओं से मनुष्य को छुड़ाती है।

आज दुनिया की सब विषमताओं को हटाकर समता के द्वारा सुसंगठित करने का एकमात्र साधन योग है। योग सिर्फ आसन-प्राणायाम तक सीमित नहीं, बल्कि अनेक टूटे हुए हृदय-तारों को एक करके परमात्मा से प्रेमतत्त्व जोड़ता है। पूरे विश्व का कल्याण करना ही योग का ध्येय है। योग का प्रारम्भ आत्मा से होता है, जिसकी झलक पा लेने के बाद मानव कहने लगता है, *सत्यम् शरणं गच्छामि।*

उस परम सत्य का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। सत्य के मार्ग पर चलना छुरे की धार पर चलने के समान अत्यन्त कठिन है, परन्तु बहादुरों के लिए दुनिया का कोई भी काम कठिन नहीं। नेपोलियन के अनुसार 'असम्भव' शब्द केवल मूर्खों के शब्दकोश में पाया जाता है।

सत्याग्रही बालक को योग की शरण में जाना पड़ेगा। स्वामी जी का ऐसा प्रताप है कि वे बच्चों में एक दिव्य शक्ति पैदा करके दु:खद मार्ग को भी

सरल बना देते हैं। अपने प्रिय इष्ट से मिलकर एक होने की उत्कण्ठा का नाम ही प्रेम तत्त्व है। प्रेम तत्त्व और भक्ति योग, ये दिव्य आध्यात्मिक विषय हैं। साधक के हृदय में उस परम तत्त्व का उदय होने पर उसके जन्म-जन्मान्तर के कल्मष धुल जाते हैं।

आध्यात्मिक स्वतंत्रता पर तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। अज्ञान का बन्धन काटो और मुक्ति का संदेश जलाओ। तुम्हारा असली स्वरूप आनन्द और अमृत है, दु:ख या दासता नहीं।

*योगविद्या, मई 1969*



## सच्चिदानन्द

सत्, चित् और आनन्द–
एक ही रूप के तीन नाम हैं।
त्रिगुणी ब्रह्म का स्वरूप सच्चिदानन्दमय है।
जल तरल, मधुर और चमकदार होता है।
ये तीनों गुण एक ही साथ समाहित हैं,
अलग-अलग नहीं प्रतीत होते।
मोमबत्ती ज्वलनशील,
उष्ण और प्रकाश वाली होती है।
ये तीनों गुण एकत्र हैं।
वैसे ही सच्चिदानन्द तीन होकर भी एक है,
जो ब्रह्म का स्वरूप है।
एक के होने से तीनों का समावेश है।

*योगविद्या, मई 1969*

# स्वामी जी का दण्ड-कमण्डल

आत्म-शुद्धि स्वामी जी का गेरू बाना है, भस्म या विभूति संतत्व है और विवेक है दण्ड, जिसने फुफकारते हुए इन्द्रिय रूपी सर्पराज को निष्प्राण कर दिया है।

सौम्यता उनका कमण्डल, जिसमें पवित्र अमृत भरा है। आत्म-संयम है उनका मृगाम्बर, और वे निरहंकारिता का कौपीन धारण किये हैं।

ब्रह्मचर्य पालन से वे क्षुधा की शान्ति कर लेते हैं, आत्म-मनन कर अपनी तृष्णा मिटाते हैं। ब्रह्मनिष्ठा में अमृत का पान किया करते हैं। ब्रह्म-पुरी उनका निवास है।

समस्त ब्रह्माण्ड उनके स्वाध्याय की पुस्तिका है। जिह्वा उनकी माला है, जिससे सतत् राम-राम निकलता है। मन को वश में कर नये रंग में ढालना ही उनका संन्यास है।

आज्ञा चक्र में जब वे ध्यान करते हैं उनका त्रिवेणी-स्नान और बनारस का गंगा-स्नान सम्पन्न हो जाता है। वे ज्ञान-गंगा में गोता लगाकर स्नान करते हैं। सतत् ध्यान में योगानुष्ठित रहना उनका हंस-दण्ड है, और प्रणव ही उनकी कुशा है, वही दूर्बा है।

अत: संन्यासियों में श्रेष्ठ वही हैं।

*योगविद्या, सितम्बर 1969*



क्षमा एक ऐसा गुण है, जिसका उपार्जन कर लेने पर जीवन में आनन्द की तह लहराने लग जायेगी। क्षमा एक प्रकार की वीरता है, अभूतपूर्व वीरता।

*योगविद्या, दिसम्बर 1969*

# ओ संन्यासी...

ओ संन्यासी...
तुमको आह्वान है उनका,
जो तुम्हारे तेजस्वी मुख दर्शन को तरस रहे हैं,
जो तुम्हारे मुख से उद्गारित वचन सुनने को व्याकुल हो रहे हैं।
देखो... तुम आगे बढ़ते जाओ।
तुम्हें देख वसुन्धरा गर्व से फूल उठती है।
जिधर तुम दृष्टि डालते हो उधर शस्य श्यामला धरा पर
शान्ति नृत्य कर उठती है।
तुम्हारे भगवे वस्त्र, जो संन्यास-तत्त्व से ओत-प्रोत हैं,
सात्त्विकता का परिचय दे रहे हैं।
तुम्हारे मुख में ब्रह्माण्ड है
तुम्हारी दृष्टि में दुनिया की दृष्टि है
तुम्हारी वाणी में पण्डितों की वाणी है
तुम्हारे चरण-कमलों के हल्के भार से दुष्टजन कंपित हो उठते हैं।
उठो संन्यासी, तुम्हारी आवश्यकता है संसार को,
देखो... रास्ता सीधा है, मंजिल एक है, काँटे अनेक हैं।
बढ़ते जावो, बढ़ते जावो।

*योगविद्या, अगस्त 1969*



तुम मंदिर में सर झुकाते हो, ठीक है वहाँ भगवान बसते हैं। किन्तु दुनिया में क्यों सर झुकाते हो जहाँ शैतान बसते हैं! इसलिए दुनिया में सर उठाकर चला करो।

*योगविद्या, अगस्त 1969*

# विज्ञान का भस्मासुर

आधुनिक विज्ञान के नकारात्मक प्रभाव के विषय में बोलते हुए पूज्य स्वामीजी ने अपने प्रवचन में एक बहुत सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया–

वैज्ञानिक पुत्र ने हर्ष से उछलते हुए अपने भोले-भाले किसान पिता से कहा, 'अब हमने ऐसा रसायन तैयार कर लिया है जो अपने सम्पर्क में आने वाली हर वस्तु को गला देगा।'

'यह तो ठीक है बेटा, पर ...' पिता ने हैरानी से पूछा, ' ... पर जब वह हर वस्तु को गला देगा तब तुम उसको रखोगे किसमें?'

आगे स्वामीजी ने बताया कि यही प्रश्न चिन्ह आज हर वैज्ञानिक के सामने है। आधुनिक विज्ञान हमारी समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता। जब विज्ञान हमें तुष्ट ही नहीं कर पाता तो फिर वह किस काम का! सबसे उत्तम विज्ञान है– आत्म-विज्ञान। वह आत्म-विज्ञान जिसे योग की प्रयोगशाला में आत्म-विश्वास और अंत:क्रियाओं की टेस्ट-ट्यूबों से परखा जाता है। आधुनिक विज्ञान प्रयोगशाला में एक शिशु-शरीर का निर्माण कर सकता है, पर प्राण नहीं फूँक सकता। भला वह हमारे देश के योगियों की, जो मुर्दे में जान फूँकने की ताकत रखते हैं, बराबरी कर सकता है क्या!

*योगविद्या, अगस्त 1969*



अविद्या की निवृत्ति में न तो दु:ख का अभाव है, न आनन्द की उपलब्धि, फिर इसे जीवन का परम प्राप्तव्य कैसे माना जायेगा? जीवन में उपलब्धि-योग्य श्रेष्ठ पद तो वह होना चाहिए जिसमें दु:ख की अत्यधिक निवृत्ति हो और आनन्द की शाश्वत प्राप्ति। अत: अविद्या का नाश कालान्तर में सुख प्राप्ति के हेतु है।

*योगविद्या, जून 1969*

# अभिलाषा

करूँ काम सेवा का जग में,
जिससे जग का हो उपकार।
करूँ काम वैसा ही जग में,
जिससे मिटे जगत् का भार॥

सत्य अहिंसा और सेवा की,
मैं साकार मूर्ति बन जाऊँ।
छीन इन्द्र से स्वर्ग सिंहासन,
मैं सहर्ष भूतल पर लाउँ॥

जीवन हो सद्गुण से पूरित,
नहीं करूँ पर-अपर आशा।
करूँ विश्व की सेवा मैं कुछ,
यही एक मेरी अभिलाषा॥

*योगविद्या, दिसम्बर 1969*



आदमी मोह में कैसे पड़ता है, इसका एक उदाहरण मुझे याद आ रहा है। एक आदमी ने एक पेन्टर से कहा कि मेरे यहाँ रंग लगाना है। ठीक समय पर वह रंग लेकर आया और पेन्ट करके बोला, मैं एक घण्टे में आता हूँ, फिर देखूँगा कि रंग कैसा लगा है। वह पेन्टर एक घण्टे में फिर आया। मकान मालिक ने उसे दिखाने के लिये जैसे ही दरवाजा खोला कि सब मच्छर अंदर घुस गये और रंग की चमक देखकर उसपर जा चिपके। इसी प्रकार आदमी भी संसार रूपी मोह-माया में चिपक कर फँस जाता है।

*योगविद्या, मार्च-अप्रैल 1969*

# गुरु देवो भव

सूरज को बड़ा कहते हैं, इसीलिये नहीं कि वह ऊँचाई पर है, परंतु इसलिये कि वह दुनिया को नि:स्वार्थ और निष्पक्ष भाव से प्रकाशित करता है। गुरु को इस संसार में सबसे श्रेष्ठ स्थान दिया गया है क्योंकि गुरु के अनुभवों के आधार पर हमारी शिक्षा आरम्भ होती है।

मानव में यह शक्ति नहीं कि गुरु की महिमा का मूल्य निर्धारित कर सके। हम केवल इस निश्चय तक पहुँच सकते हैं कि गुरु श्रेष्ठ होते हैं। प्राचीनकाल में बड़े-बड़े महाराजा लोग भी गुरुवर्ग पर भक्ति और श्रद्धा रखते थे। गुरु की आज्ञा को वेदवाक्य मानकर उसका पालन करने में अपनी सम्पत्ति तथा पारिवारिक सुखों को भी तिलांजलि दे देते थे।

हमारी शास्त्र-पद्धति सदा ही गुरु के प्रति भक्ति और श्रद्धा का प्रतिपादन करती आई है। सच तो यह है कि गुरु अपने जैसे अनेक शिष्य बना देते हैं पर कई शिष्य मिलकर भी एक गुरु का निर्माण नहीं कर सकते। गुरु की बुद्धिमत्ता अत्यन्त उच्च कोटि की होती है, जिसके द्वारा वे समस्त विश्व का निरीक्षण करते रहते हैं। गुरु में ऐसी शक्ति होती है कि किसी भी कार्य के परिणाम का विचार पूर्वत: ही कर लेते हैं। उनके आशीर्वाद से कोई भी कार्य सिद्ध किया जा सकता है। उनका विचार ही बल और संकल्प होता है, और इसी शक्ति के बल पर वे अंधकार से प्रकाश की ओर का मार्ग प्रदर्शित करते हैं और मानव-जीवन की कठिनाइयों का परिहार भी करते हैं।

मेरे गुरु स्वामी सत्यानन्द सरस्वती भी सच्चे और आदर्श गुरु हैं जो सारे विश्व को आत्मानुगामी बनाने पर तुले हैं। उनका प्रभाव अमिट रहेगा। प्रत्येक मानव उनके सदुपदेशों से अपने जीवन पथ पर शान्ति के साथ और निष्कण्टक रूप से यात्रा कर सकेगा। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है–

*यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ,*
*तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन:।*

गुरु के प्रति उतनी ही भक्ति हो जितनी देवता के प्रति, वही शिष्य उपनिषदों के अर्थ को समझ सकता और सत्य को जान सकता है।

*योगविद्या, जुलाई 1970*

# सत्यम् के प्रति

उन्नीस सौ तेईस की बात है
24 दिसम्बर की भली रात है।
कृष्णसिंह के घर जन्म लिया
विधाता ने देवता-सा रूप दिया॥

धर्मेंद्रसिंह ने कैसा कठोर रूप लिया
त्याग विषय भोग का अनूप किया।
सेवा किया ध्यान किया जप किया
'पल्लव' ने कैसा कठिन तप किया॥

संत बना, साधु बना, परिव्राजक बना
सत्य रूप सत्यम्, सत्यमेव बना।
गुरु ज्योति का प्रकाश जग को दे रहा
शिवानन्दाश्रम व कुटीर बना रहा॥

कैसा बना देखो अहा शिवानन्दाश्रम
जहाँ आ रहे देश-विदेश से साधकगण।
आज है 24 दिसम्बर, हम सब मिलकर
खुशियाँ मना रहे, मन के दीप जला रहे॥

शिवानन्दाश्रम में ज्योति चमक रही
शिवानन्द कुटीर भी जगमगा रहा।
रायगढ़, राजनाँदगाँव व विदेशों में
अखंड दीप, सत्यम् ज्योति फैला रहा॥

चुन-चुन कर, परख कर 108 को
108 संन्यासियों की माला बना रहा।
स्वयं दिव्य रूप मेरू सा बन कर
गुरु चरणों में भेंट सानन्द चढ़ा रहा॥

कहे 'निरंजन' सुनो आत्म बन्धुओं
गुरु शिवम्, शिष्य सत्यम् दोनों महान् हैं।
24 दिसम्बर जैसे 8 सितम्बर भी याद रहे
इस महान् 'यज्ञ' में आप सब का योग रहे॥

*योगविद्या, दिसम्बर 1970*



## ईश्वर की सर्वव्यापकता

*जले विष्णु: थले विष्णु: विष्णु: पर्वतमस्तके।*
*ज्वालामालाकुले विष्णु: सर्वं विष्णुमयं जगत्॥*

भगवान की व्यक्त चेतना जिधर भी गई उधर उसने उस पदार्थ का रूप धारण कर लिया। जैसे पानी का कोई रूप-रंग नहीं है, जिस बर्तन में डाला जाय उसका ही रूप धारण कर लेता है, जैसे मिट्टी कुम्हार के हाथ में भिन्न-भिन्न रूप धारण कर अलग-अलग नाम पाती है, वैसे ही इस चेतना का भी कोई निश्चित रूप नहीं है। वैज्ञानिक युग में हम इसे सरलता से समझ पाये। ईश्वर चेतना ही सबका आधार है।

*यच्च किंचिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽथवा।*
*अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायण: स्थित:॥*

जो देखा या सुना, जो अन्दर है या बाहर, सब कुछ नारायण से व्याप्त है। हमारे पूर्वजों का जीवन इसी भाव से ओत-प्रोत था।

*योगविद्या, अगस्त 1970*

# पद चिहन पर श्रद्धा सुमन

तिरुपति के विष्णु मंदिर में भगवान विष्णु ने 'अप्पय दीक्षित' को शिवजी के रूप में दर्शन देकर कहा था– तेरे वंश में जन्म लेकर 'शिवानन्द' के नाम से दुनिया में ज्ञान, कर्म व योग के द्वारा सच्चे और स्थायी सुख का पथ प्रदर्शन करूँगा। पट्टमडई ग्राम में 8 सितम्बर 1887 को वेंगु अय्यर के पुत्र रूप में 'शिव शक्ति' का अवतरण हुआ, नाम रखा गया 'पी. वी. कुप्पुस्वामी'। वैभव की गोद में जन्मे, शरीर से स्वस्थ, खेल में चतुर, पढ़ने में प्रवीण, संगीत में अनुरक्त, भाषण में पटु, सफलता की सीढ़ियों को पारकर डॉक्टर होकर मलाया में प्रधान चिकित्सक के रूप में, तन, मन, और धन से गरीब दीन-दुखियों के सहायक बन गये।

विचित्र संयोग, 1923 में अल्मोड़ा में 'दिव्य शक्ति' का अवतरण हुआ, और डॉ. कुप्पुस्वामी मलाया से भारत लौट आये। उन्होंने ऋषिकेश पहुँचकर गंगा तट पर शृंगेरी मठ के परमहंस स्वामी विश्वानन्दजी से संन्यास दीक्षा ली और 'स्वामी शिवानन्द' हो गये। कठोर तप और कठिन साधना काल, फिर 4 वर्ष कैलाश-मानसरोवर में तपस्या करके ऋषिकेश लौट आये और आनन्द कुटीर, शिवानन्द नगर में दिव्य जीवन संघ की स्थापना की। और इस प्रकार वे जंगल के सन्त नहीं, जीवन के सन्त बन गये। उनकी आनन्द कुटीर भिक्षा की झोली नहीं, आत्मदान की अंजली बन गई। उन्होंने अनेकों रत्नों को उज्ज्वल बनाकर विश्व को दिया, जो आज जगमगाते हुए देश-विदेश में प्रकाश फैला रहे हैं। उनमें एक रत्न हैं स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जो देश-विदेश के अगणित साधकों की आत्म-प्रेरणा के केन्द्र, विशाल वट वृक्ष के रूप में हमारे सामने हैं। वे महान् होकर भी हमसे अलग नहीं हैं, हममें ही हैं।

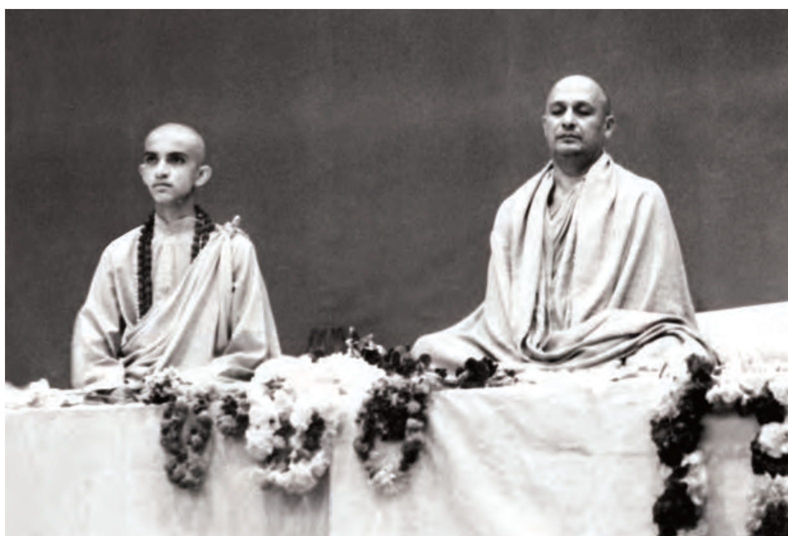
उन्हें साधक की वन्दना ही नहीं, आत्म-निवेदन भी प्राप्त होता है और उत्तर में सम्पूर्ण महानता के साथ उसके जीवन में ओत-प्रोत हो जाते हैं। यही कारण है कि स्वामी सत्यानन्द जी के शिष्य दर्शनों के टेकनिक में नहीं फँसते, विधानों की माया जाल से नहीं चकराते। वे उसकी उंगली पकड़कर सीधी सड़क पर लगा देते हैं। यह सड़क भी जंगलों की ओर नहीं जाती, परिवारों के बीच से चलती है। साधुओं का एक दल बनाना, संस्कृति से अभिषिक्त राष्ट्र का सामूहिक-मानदण्ड-निर्माण ही उनका अभीष्ट है।

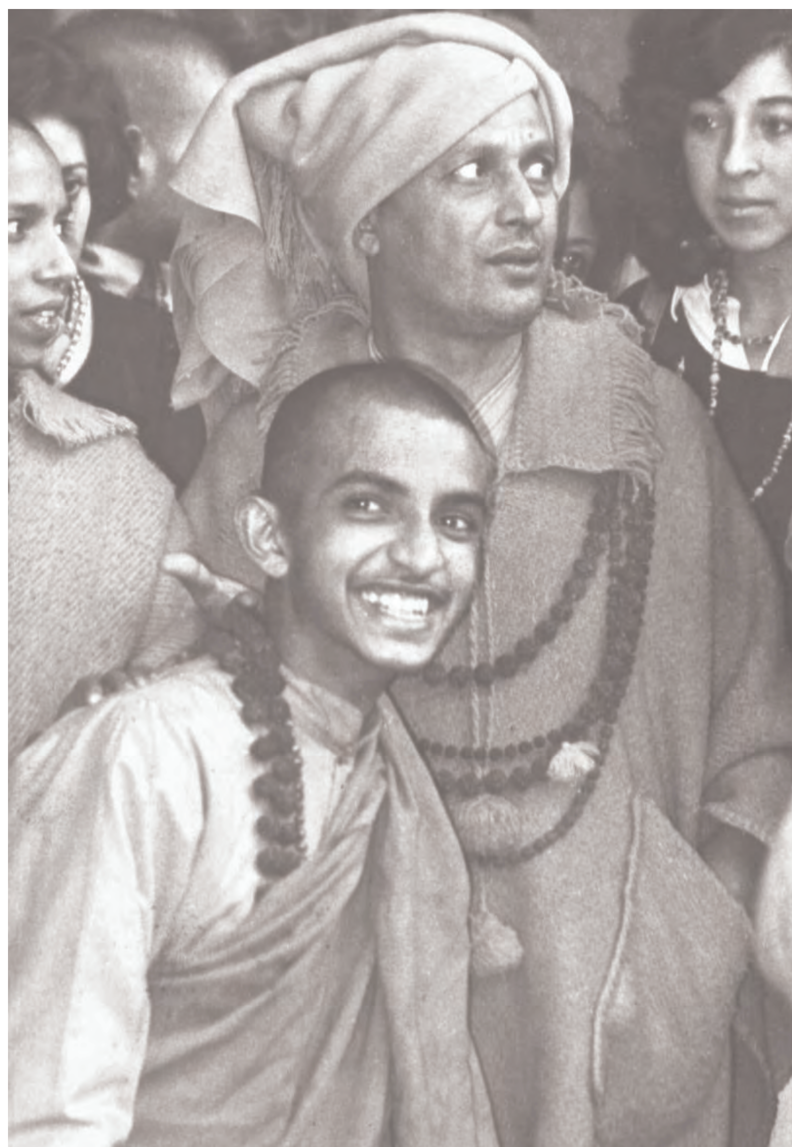

हं
ॐ
क्षं
योग मित्र मण्डल











देश और विदेश में जगह-जगह 'शिवानन्दाश्रम' की स्थापना कर, 'अखण्ड-दीप' प्रज्वलित करके 8 सितम्बर के पुनीत पर्व पर 108 संन्यासियों की माला, गुरुदेव स्वामी शिवाननदजी को अर्पण करने वाले शिष्य स्वामी सत्यानन्द जी इस युग के विभूति हैं, हमारी संस्कृति के प्रदीप हैं, उनका विशाल कार्य लौकिक होकर भी अलौकिक है। इनका जीवन चरित्र प्रतिक्षण हमारे मार्ग को निर्देशित कर रहा है। जो आज संसार का सच्चा हितैषी एवं अधिपति है, ऐसे अलौकिक महापुरुष के चरणों में बारम्बार प्रणाम।

*स्वामीजी की वर्ष गाँठ, सन्देश नया दे जाती है।*
*साधक होकर करो साधना, मन में यह उपजाती है।।*

*योगविद्या, नवम्बर 1970*



## स्वामी जी का विनोद

किसी सेठ ने बड़े उत्साह से एक मंदिर बनवाया। प्रांगण मात्र हिन्दुओं से पूर्ण था, इसलिए सेठ जी को संतुष्टि न हुई। उन्होंने मन्दिर तुड़वाकर फिर वहाँ मस्जिद बनवायी किन्तु वहाँ सिर्फ मुसलमान ही आये। पुन: मस्जिद को गिरवाकर गुरुद्वारा बनवाया। तो यहाँ भी केवल सिक्ख-बन्धु ही पधारे। फिर सेठ ने गुरुद्वारा तुड़वाकर चर्च बनाया। वहाँ भी केवल ईसाई भाई ही आए। अन्त में सेठ जी ने उसे भी गिराकर संडास बनवा दिया, जहाँ हिन्दु आए, मुसलमान आए, सिख-ईसाई सभी आए।

यह कहानी स्वामी जी ने एकता के गूढ़ अर्थ को समझाने के लिए विनोद में सबको सुनाई। सभी धर्मों की मौलिक एकता को समझो, पहचानो और सबके साथ प्रेमभाव रखो।

*योगविद्या, अगस्त 1969*

# अभिशाप और क्रान्ति

*(दीपावली के अवसर पर बालयोगी निरंजन के उद्‌गार)*

मैं दीपावली के शुभ अवसर पर समस्त नई पीढ़ी का अभिवादन करता हूँ। आत्मबन्धु! तुम क्रान्ति के पोषक हो, मैं क्रान्ति का प्रतीक हूँ। तुम्हें आक्रोश है समाज, धर्म, एवं जीवन की समस्त सड़ी-गली मान्यताओं से, आओ, मैं तुम्हें जीवन का सही मूल्यांकन दूँगा। क्रान्ति हर युग में होती है, उसे प्रतिवाद सहना पड़ता है, संयम से काम लेना पड़ता है। क्रान्ति आहुति चाहती है, मैंने भी आहुति दी है, अपनी सुख-सुविधाओं की। आज हम विनाश की कगार पर खड़े हैं। विनाश के उमड़ते बादल, अस्त्रों की टंकार और एटमी धुएँ से हमारी आँखें जल रही हैं। आओ बन्धु, हम प्रेम और शान्ति की बात करें। हमारी आँखों में विश्व की मंगलकामना का सुनहरा सपना घुल जाये। आपसी फूट, वैमनस्य, अन्तर्द्वन्द्व, कुण्ठा, निष्क्रियता–सभी खोखली भौतिकता से ग्रस्त हैं। क्या आधुनिक मानव जीवन की यही परिभाषा है? मेरे जीवन की परिभाषा तो स्वतंत्रता, मित्रता और निर्भीकता है।

तुमने कभी सीमेन्ट-कंक्रीट की बनी दीवार को देखा है, जो एक बार हरहरा कर गिर जाए तो स्वयं कभी उठ नहीं सकती? और टूटे हुए वृक्ष को देखा है जो उठ जाता है, एक बार नहीं, असंख्य बार, असंख्य कोपलों, असंख्य शाखाओं में, जो चिर शाश्वत संदेश लेकर धरती की छाती में फिर उग जाता है–बन्धु यही अन्तर है भौतिकता और आध्यात्मिकता में। तुम नई सभ्यता की चकाचौंध में मत जाओ। पुरातन आदर्श हैं, उन्हें मत भूलो। तुम शिष्य बनो, आज्ञाकारी, विवेकशील और विनम्र। तुम भीड़ से बचो, भीड़ में विवेक का अभाव है। अपनी आत्मा के इंगित पथ पर चलो, तुम्हें ही भारत का गौरवशाली अतीत पुनर्जीवित करना है। छात्र की वर्त्तमान भ्रष्ट परिभाषा से बचो। आन्दोलन तुम्हारी रग-रग में व्याप्त है, पर देश को विध्वंस से बचाओ। देश को मजबूत बनाओ, उसका अनिष्ट न करो। सत्य के पथ पर जाओ, अध्यात्म को न भूलो। मैं तुम्हें पलायन नहीं देता, जीने की एक नई दिशा देता हूँ।

मैं अभी दस वर्षीय बालक हूँ, लेकिन विद्या आयु की मोहताज नहीं है। मैं शीघ्र ही विदेश यात्रा पर जा रहा हूँ, तुम्हारे प्रतिनिधि के हैसियत

से, जहाँ उन लोगों को भारत की संस्कृति से परिचित कराऊँगा। भौतिकता के अभिशाप से सभी पीड़ित हैं और युद्ध की आशंका से सभी भयभीत। मैं उन्हें शान्ति का रास्ता बताऊँगा। जहाँ हम सब एक ही खेमें में, एक ही सर्वोत्तम पद्धति से जियेंगे। मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ, तुम इस क्रान्ति के यज्ञ में मेरा साथ दो। आज मेरे आश्रम में समस्त विश्व के युवा प्रतिनिधि मौजूद हैं। जो अब तक अपनी चेतना को एक भ्रष्ट क्रान्ति के पीछे गुमराह किये बैठे थे, जो एल.एस.डी. की गोली से इस अशान्त जगत से पलायन कर बैठे थे, वे आज मेरे साथ हैं, नये विश्व के सृजन के अभियान में। वे भारत में शान्ति ढूँढने आये हैं, और तुम विदेशों का अन्धानुकरण कर रहे हो। अपनी संस्कृति से अवगत होवो, जो विश्व के तमाम भूले-भटकों के लिये लाइट-हाऊस है।

*नई दुनिया के ज्योति अंक से साभार उद्धृत,*
*योगविद्या, दिसम्बर 1970*



## श्रद्धा

श्रद्धा में मुख्य बात यह है कि इसे आप किस रूप में करते हैं। जब मनुष्य को अपनी साधना में कोई असन्तोष नहीं होता, तब उसे श्रद्धा कहते हैं। भावना अविचलित और शक्तिशाली होना चाहिये, श्रद्धा अन्धी होनी चाहिये।

जो व्यक्ति भगवान को नहीं मानता, उसे संशयात्मक कहते हैं। उसे न इस लोक में सुख है, न उस लोक में। न ही इस अवस्था में कोई शान्ति होती है। इसी श्रद्धा को लाने के लिए एक विचारधारा का नाम है, 'संन्यास', दूसरी विचारधारा का नाम है, 'कर्मयोग'।

*योगविद्या, अगस्त 1970*

# गुरु की आवश्यकता

गुरु पूर्णिमा के पावन एवं पवित्र दिवस पर राजनाँदगाँव के नवनिर्मित योग विद्यालय में आप लोगों को महान् गुरु के साक्षात्कार होंगे। सर्व प्रथम सत्संग योग विद्यालय में जो हुआ वह था आदिगुरु श्री शंकराचार्यजी की जयंती और अब आया है 'गुरु शिष्य महोत्सव'। जिसे देवताओं ने भी मनाया, उसे मानव भी मना रहे हैं।

भगवान श्री राम, श्री कृष्ण, श्री व्यासदेव, श्री शंकराचार्य, श्री स्वामी विश्वानन्दजी तथा स्वामी शिवानन्द जी के भी गुरु थे, और इन सबकी गुरु भक्ति परमोच्च कोटि की थी। तुलसीदास जी कहते हैं– 'बंदौं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि', आगे कहते हैं– 'गुरु बिन ज्ञान नाहिं जग माँहि'। यह संदेश हमें जीवन पथ पर सच्चा प्रकाश दिखा रहा है। उपनिषद् कहते हैं– 'दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोर्करुणां विना।' तात्पर्य यह है कि गुरुकृपा के बिना परमावस्था की प्राप्ति भी असंभव है। इसी महत्त्वपूर्ण संवाद का आदेश हमें गीता दे रही है।

*तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।*
*उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥*

ज्ञानी तथा तत्वदर्शी गुरुदेव हमें ज्ञान प्रदान करेंगे। इसी बात की गूंज योग वाशिष्ठ का संदेश है– 'वास्तविक ज्ञानेच्छुक को गुरु-वाक्य आत्म-दर्शन के योग्य बनायेंगे।' गुरु-वाक्य शिष्य के हृदय में ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित करेंगे। बिना गुरु के ज्ञानावस्था में पहुँचना बड़ा दुष्कर है। गुरुकृपा द्वारा परिपूर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। गुरु ही मार्ग की बाधाओं का निराकरण करते हैं। गुरु अविद्या के आवरण को हटा देते हैं।

गुरु के समीप जाने के पहले आप में ये गुण होने चाहिये– गुरु भक्ति, निष्काम कर्म, यम, नियम, अभ्यास, उपासना तथा योग। मानसिक सत्य तथा मानसिक ब्रह्मचर्य का अभ्यास। जीव भावना से स्वतंत्र रहिये, तब गुरु महावाक्यों का उपदेश देंगे, आपको अपरोक्ष ज्ञान देंगे। आपके मार्ग की बाधाओं और संदेहों का निराकरण करेंगे। किन्तु हृदय से आपको सच्चा अभ्यास तथा परिश्रम करना पड़ेगा। दिव्य दृष्टि द्वारा, ज्ञान चक्षु द्वारा आपको

सत्-चित्-आनन्द की दशा का अनुभव करना होगा। शास्त्रों में श्रवण, मनन, निदिध्यासन की आज्ञा है, यही युगों का संदेश है, यही गीता और रामायण का संदेश है, यही ऋषि-महर्षियों का संदेश है जो गुरु-शिष्य परम्परा से चला आ रहा है। ये शब्द भी मेरे नहीं, मेरे गुरुदेव के हैं। यह शिक्षा हमारी वंश परम्परा से चली आ रही है।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं– 'मेंहदी के पत्ते हरे होते हैं, उन्हें तोड़कर पत्थर पर पीसा जाता है, फिर वह नववधु के हाथों में लगाया जाता है। सुन्दर रंग देता है यह, पर यह रंग आया कहाँ से? मेंहदी जब तक पत्थर की शिला पर पीसा न जाय तब तक वह रंग नहीं दे सकती, यद्यपि रंग उसके अन्दर होता है। बीज जब तक अपने को मिट्टी में नहीं मिला देता तब तक फूल नहीं बनता, यद्यपि फूल बीज में ही होता है। दिया जब तक जलता नहीं, प्रकाश नहीं दे सकता, यद्यपि प्रकाश उसमें ही होता है। ओ मानव! सब कुछ तेरे में ही है, पर उसे तू पहचान नहीं पा रहा है। मेंहदी को पीसने वाले की, बीज को माली की और दिये को ज्वाला की आवश्यकता है। हे मानव! तुझे भी एक गुरु की आवश्यकता है, जिसके चरण कमलों में बैठकर तू ज्ञान ज्योति प्राप्त करके अपने आप को और संसार को प्रकाशित कर सके।'

बड़े भाग्य से सद्गुरु का प्रादुर्भाव होता है, और वही सौभाग्य मेरे पूज्य व प्रिय बन्धुओं, राजनाँदगाँव निवासियों को प्राप्त हो रहा है।

*योगविद्या, जून-जुलाई 1971*



संसार त्याग का मार्ग सच्चा नहीं है। जन पथ से नाता तोड़ना तो जीवन से पलायन है। 'न दैन्यं, न पलायनम् ' दुनिया से भागो मत, सामना करो और आगे बढ़ो। इन्द्रियों का दमन करने की आवश्यकता नहीं, इनके द्वारा ही तो प्रभु का आशीर्वाद, शब्द-रूप-रस-स्पर्श-गंध बनकर आ रहा है। इस आनन्द को ज्योति में प्रज्ज्वलित करो, और वासना के फूलों को स्नेह के फूलों में परिणत करो।

*योगविद्या, फरवरी 1971*

# पिता की अनुभूति पुत्र उदार

बेलफास्ट,
आयरलैण्ड

अम्मा जी,

दादा जी की मृत्यु हो गई सुनकर मुझे दु:ख हुआ, मैं रोया भी, लेकिन दु:ख के कारण नहीं, बल्कि श्रद्धांजलि देने के लिये। आप चिन्ता न करें, मैं हूँ, स्वामी जी हैं। आप दु:ख नहीं मनाइये, आना-जाना तो लगा ही रहता है, आपकी जो इच्छा हो बतलाइये, मैं पूरी करूँगा। आप चाहें राजनाँदगाँव में रहें, मुंगेर में रहें या मेरे पास आ जावें। आप जब बुलावें हम आयेंगे ...

*मरण है अवकाश जीवन कर्म,*
*क्यों न समझूँ मैं पिता का मर्म।*
*व्याप्त है मुझमें पिता के प्राण,*
*शोक से माता तुम पावो त्राण।।*
*है महायात्रा उनकी इस हेतु,*
*कि स्वर्ग में फैलें ये गैरिक संत।*
*ठेलकर मृत्यु को भी पा समक्ष,*
*पा गये हैं दादा जी अपना लक्ष।।*
*वे हैं अशोच्य अनुकरण योग्य,*
*अभिमान योग्य अनुसरण योग्य।*
*हैं गुरु सत्यम् तत्त्व ज्ञानी,*
*पर व्यथा उन्होंने भी मानी।।*
*माँ, सत्यम् पर अखंड विश्वास रहे।*
*जब तक इस तन में श्वास रहे।।*

*योगविद्या, मार्च 1972*



# दादा जी – एक सच्चे संन्यासी

हाँ! हम उन्हें श्रद्धा, आदर एवं स्नेह से 'दादा जी' ही कहा करते थे। हम सब पर उनका 'दादा' तुल्य ही स्नेह था। भौतिक जगत् के पिता ने उनका नाम 'सत्यव्रत' रखा एवं अध्यात्म पिता ने इस नाम को सुन्दर स्वरूप प्रदान कर 'स्वामी सत्यव्रतानन्द सरस्वती' रखा। अंत समय तक उन्होंने इस सत्य के व्रत को तन-मन-धन से निभाया।

संन्यासी तो अनगिनत हैं, परन्तु सच्चे संन्यासियों की गिनती ऊंगली पर की जा सकती है। सच्चा संन्यासी, त्यागी या वैरागी वही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है जिस पर किसी प्रकार के सुख-दुःख, हानि-लाभ, माया-मोह का कोई प्रभाव किसी अवस्था में तिल मात्र भी नहीं पड़ता। ऐसे ही सच्चे ज्ञानी एवं संन्यासी थे हमारे 'दादा जी'। उनकी चैतन्य आत्मा थी। धन को तो वे मिट्टी मोल समझते। हर पल उनके चेहरे पर प्रसन्नता होती। आप प्रसन्नचित्त रहते एवं दूसरों को खुश रखते। अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल की सफलता ही उनके जीवन का उद्देश्य रहा। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने प्रधान सचिव का कार्य सफलतापूर्वक निभाया। गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा एवं भक्ति के कारण प्रतिपल वे गुरु का आशीर्वाद ग्रहण करते। उनके जीवन का यह आदर्श सभी संन्यासियों के लिये एक अमूल्य शिक्षा है।

आज 'दादा जी' का भौतिक शरीर हमारे बीच नहीं है। हम सब स्वामियों का प्रण है कि उन्होंने जो अधूरा कार्य छोड़ा है उसकी पूर्ति कर उनकी आंतरिक इच्छा को तृप्त करें। यही उस सच्चे संन्यासी, हमारे दादा जी के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाभिव्यक्ति होगी।

धन्य हैं दादा जी जिन्होंने अपनी अन्तिम श्वास तक जनकल्याण के लिये योग-प्रचार का कार्य किया। ऐसे सच्चे संन्यासी के चरणों में हम सब नतमस्तक हैं।

*योगविद्या, अक्टूबर 1972*



# निष्काम कर्मयोगी

'योग-दीक्षा' एक अभूतपूर्व पुस्तक है। यह गुरु-शिष्य सम्बन्ध की एक मजबूत कड़ी है जिसके सहारे आप सब एक नई दिशा, एक नया आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। मेरे गुरुदेव परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा लिखे एवं कहे गये अनमोल वचनों का संग्रह पुस्तक के रूप में, मेरे दादा जी, स्वामी सत्यव्रतानन्द सरस्वती (पूर्वाश्रम के सत्यव्रतलाल श्रीवास्तव) की पुण्य स्मृति में, आप सबको समर्पित है। पारस्परिक विभिन्न सम्बन्धों का जाल दुनिया के रंग-मंच पर मात्र अभिनय है। कौन किसका पिता, कौन किसका पुत्र! सब कुछ क्षणिक है। संसार के अनोखे रंगमंच पर मेरे दादा जी ने सफल अभिनय कर पिता का दायित्व निभाया।

पूज्य दादा जी का जन्म 26 जून सन् 1914 को एक सुसम्पन्न परिवार में हुआ। शिक्षा प्राप्ति कई उलझनों के मध्य हुई। बैकुण्ठपुर में नौकरी प्रारम्भ की। कुछ वर्ष पश्चात् राजनाँदगाँव आ गये। उनका पारिवारिक जीवन कर्मसंन्यास की प्रथम सीढ़ी थी। परिवार के सदस्यों की मदद, सेवा, शादी-ब्याह जैसे कई महान् यज्ञ उन्होंने किये। समाज के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता रहे।

अप्रैल सन् 1953 में पूज्य दादा जी मेरे दादा गुरु, स्वामी शिवानन्द सरस्वती के सम्पर्क में आये। इस सत्संग से उनकी जीवन-दिशा ही बदल गई। मंत्र दीक्षा ली। आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ सुचारु रूप से हो गया। इतने से ही उन्हें संतोष नहीं था। सुअवसर आते ही उन्होंने परिव्राजक सत्यानन्द सरस्वती को आमन्त्रित किया। भविष्य गुरुदेव से छिपा नहीं था। 'पवन तनय बल पवन समाना, का चुप साधि रहेउ बलवाना' का कार्य स्वामी जी के पत्रोत्तर के इस वाक्य ने किया– 'मेरा नाम सत्यम् है, तुम्हारा सत्यव्रत है, तुममें मेरे व्रत की विशेषता है।' स्वामी जी के वाक्य में दादा जी को भी सार्थकता जान पड़ी। दादा जी का प्रत्युत्तर था– 'तब माया बस फिरऊँ भुलाना, ता ते मैं नहीं प्रभु पहिचाना।' 'अब लौ नसानी अब न नसैहौं' का व्रत श्री सत्यव्रत जी ने ले लिया। 6 जून 1956 को पूज्य स्वामी जी के राजनाँदगाँव पदार्पण के साथ ही इनका सेवाव्रत आरम्भ हुआ। प्रेरणा लेते रहे, कार्य करते-करते पूर्णत: सत्यम्मय हो गये। सन् 1963 में चैतन्य बने। सन् 1967 में संन्यास ग्रहण कर ब्रह्मगुरु यज्ञ में अपने को होम कर दिया।

मेरा अहोभाग्य! ऐसे ही दिव्य पिता की गोद में मैंने अपने को पाया। उनकी कर्त्तव्य-परायणता, अम्मा जी की सहनशीलता, पूज्य स्वामी जी के विराट् व्यक्तित्व ने मेरे व्यक्तित्व को तराशने में सहयोग दिया।

आज पूज्य दादा जी की अविराम अनुपस्थिति में भी मैं अपने को उनके समीपस्थ पाता हूँ। उनके आदर्श मेरे जीवन के प्रेरणा चिन्ह हैं और सदैव रहेंगे। उनकी संकल्प शक्ति, निर्भीकता, पवित्रता मुझे विरासत में मिली है। जो कुबेर का धन वे मुझे सौंप गये हैं वह है 'गुरु की कृपा'। गुरु-आशीष सदा प्राप्त हो एवं श्रद्धेय दादा जी की दिव्य दृष्टि मुझे सुपथ पर चलने को इंगित करती रहे, यही हार्दिक कामना है।

निष्काम कर्मयोगी ब्रह्मलीन सत्यव्रतानन्द सरस्वती एवं देवतुल्य महान् योगी परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शुभेच्छा के सहारे ही गुरु एवं पिता के स्वप्नों को वास्तविकता प्रदान करने के लिये मैं दृढ़प्रतिज्ञ हूँ। बन्धु, इसी की एक कड़ी 'योग दीक्षा' आप सबके सामने है, आप सबके लिये है।

*योगविद्या, अगस्त 1972*



एक ऊँचे टीले पर एक प्रतिमा रखी थी। एक इतिहासकार आया और ज्योंही उसकी ओर देखा कि खुशी से उछल पड़ा– 'ओह, बीसवीं सदी में यह उन्नीसवीं सदी का चमत्कार कहाँ से आ गया!' थोड़ी देर बाद एक चित्रकार आया। प्रतिमा को थोड़ी देर तक प्रसन्न मुद्रा में निहारने के बाद बोला– 'ऐसी सुन्दर कलाकृति रोम के अजायबघर में भी न होगी। पाषाण में प्राण फूंक दिया गया है।' थोड़ी देर बाद एक किसान आया। मूर्ति के सौन्दर्य की ओर बिना विशेष ध्यान दिये, वह मूर्ति के चरणों में झुक गया। एक आदमी यह सब देख रहा था। उसने कहा– 'ये तीनों व्यक्ति चश्माधारी हैं। एक के चश्मे में इतिहास, दूसरे के चश्मे में सौंदर्य, तीसरे के चश्मे में श्रद्धा का कांच जड़ा है।' यह व्यक्ति पत्रकार था।

ऊपर आकाश में बैठे परम मूर्तिकार ने सोचा, 'सब मेरे छेनी-हथौड़े की ही तो करामात है।'

*योगविद्या, अप्रैल 1972*

# गुरु पूर्णिमा प्रणाम

गुरु पूर्णिमा अत्यधिक आध्यात्मिक महत्त्व का दिन है। मनुष्य इसी दिन जीवन के संघर्षों पर विजय प्राप्त करता है। विद्या-अविद्या के मध्य छिड़ी लड़ाई में अविद्या पराजित होती है। विवेक-शक्ति व्यक्ति को नया संदेश देती है– 'हे मानव! उठ, अपने लक्ष्य सत्य की खोज कर।' यही संदेश मनुष्य की चेतना को एक दिन चरम सीमा पर पहुँचा देता है। उसे सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। उसकी चैतन्य आत्मा सत्य-ज्ञान से आलोकित हो जाती है। इस अवस्था में उसकी अविद्या, वासना, शोक और परिताप के विकार ज्ञान रूपी अग्नि में जलकर भस्म हो जाते हैं। वह सदैव परमानन्द में लीन रहता है। इस परमशांति की स्थिति में वह स्वयं में पूर्ण रहता है। सम्पूर्ण विश्व को वह स्वयं में अंतर्निहित देखता है। किसी से ईर्ष्या-द्वेष नहीं रखता, वरन् प्रेम-करुणा के द्वारा सबको आनन्द देता है वह। उसके विचार, व्यवहार और कार्य सारे विश्व का मार्गदर्शन करते हैं। अज्ञान परितप्त दु:खी मानवता को उसके द्वारा परम शांति एवं शक्ति मिलती है। इसी आदर्श ज्ञान की विभूति के साक्षात् दर्शन हम अपने पूज्य गुरुदेव परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती में करते हैं।

आज की पुण्य बेला में यही आंतरिक कामना है कि परम पुण्य स्वरूप गुरुदेव के चरण कमलों में हम सब बालक आत्मसमर्पण करने योग्य बनें–
परमहंस तुम पुण्य काम, तुमको प्रणाम शतकोटि हृदय से।

*योगविद्या, अगस्त 1972*

समुद्र में तूफान आया, नौजवान मल्लाह बड़ी हिम्मत व फुर्ती से ऊपर मस्तूल में चढ़कर पाल खोलने लगा। नौजवान जब उतर रहा था तो उसकी निगाहें समुद्र की उत्तुंग लहरों पर पड़ी। वह चिल्ला उठा, 'बचाओ, समुद्र की लहरें मुझे खा जायेंगी!' बूढ़े मल्लाह ने कहा, 'बिना नीचे देख नौका पर उतर आओ', और नौजवान मल्लाह कुशलतापूर्वक नीचे आ गया। उन्नति की उच्चतम अवस्था पर पहुँचकर यदि कोई घबराकर पतन की ओर बढ़ना उत्तम समझे तो इससे बढ़कर कोई मूर्खता नहीं।

*योगविद्या, अप्रैल 1972*

# उद्‌गार

*बाल स्वामी निरंजन,*
*लंदन, 26 जुलाई, 1972*

एक स्वर्णिम दिवस।
अगरू धूम की श्याम लहरियों से,
घिरा होगा मेरे देश का आश्रम!
नत होंगे शत-शत जन,
गुरु! तुम्हारे चरणों में!
सबके साथ मुझे भी अभय दान देना।

हे सत्यम्,
मेरे सत्य का पथ प्रदर्शित करना।
मेरे देह के दोने में,
विवेक, वैराग्य, निवृत्ति, संयम एवं संकल्प
का पंचामृत भर देना।
मेरे अवगुणों की,
उस यज्ञ में आहूति देना।

मैं एकाकार हूँ,
तुमसे विलग होकर भी।
सुदूर ... राजतंत्र के प्रतीक इस देश में,
सम्पन्नता के बीच
भावनाओं की विपन्नता है।
ऊँची उठती मीनारें, कम्प्यूटर्स,
धुँआ उगलते कल-कारखाने–
यहाँ मानव का भी
यंत्रीकरण हो चुका है।
जन-मन के बीच
खूँटे गड़े हैं– व्यक्तिवादिता के,
जो आपस में एक नहीं होने देते।

चतुर्दिक बिखेरते,
श्वेत बर्फ के नन्हें कण–
सूरज की रोशनी में चमचमाता लंदन!
लेकिन कितना कुहासा है,
चारों ओर छाया हुआ अंधेरा।

दुधमुहे बच्चे यूनीफार्म में बमों की बात करते हैं!
'टीनएजर्स' दिग्भ्रमित हैं!
भौतिक सुख ने उनकी आत्मा को
पंगु बना दिया है।
लाठी टेकते हुये बूढ़े,
इतिहास के साक्षी हैं।
उन्होंने मेरे देश को तड़पते हुये देखा था
गुलामी की यंत्रणा से।

यहाँ टैब्लेट का युग है!
मां लोरी नहीं सुनाती,
पिता कहानी नहीं बताते।
बच्चे नींद की टैब्लेट खाकर सो जाते है!
मैं इस विज्ञान के देश में
ज्ञान यज्ञ करूँगा!
हविष्य बनेंगे,
बच्चों के चेहरे पर लगे प्रौढ़ता के नकाब,
'टीनएजर्स' के अधकचरे संस्कार,
बूढ़ों के मिथ्या अहंकार।

यंत्रीकृत मानव
मेरी 'ओऽम्' की ध्वनि से थम जायेगा।
मैं उन्हें प्रीति के जन्म एवं
अंधकार के मरण से मिलाऊँगा।
मेरी संकल्पित प्रजा के क्षितिज को
और विशाल बना दो।

मेरी फैली हुई भुजाओं को
असीम बना दो।
आकाश की तरह,
जहाँ सूर्योदय ग्रहणमुक्त हो।
भिन्न-भिन्न व्याधियों के टैब्लेट,
सैकरिन टैब्लेट,
एमायल नाइट्रस टैब्लेट,
एफेड्रीन टेब्लेट,
अब इन्हें जीवन के कगार पर नहीं ले जायेगी।
मैं उन्हें खींच लाऊँगा।

मेरी यौगिक संस्कृति
अब एक नये जीवन का
पाथेय बनेगी,
उनकी वेदनाओं का अंत करेगी,
और मेरे प्रभाती की मंगल ध्वनि से
उनके शुभ दिनों की शुरूआत होगी।



शरीर और मन का परस्पर असहयोग एवं अन्तरात्मा की आवाज का विरोध कर विभिन्न पथों पर उनका स्वच्छंद विहार ही जीवन के असह्य दु:ख एवं अशांति का कारण है। मन और इन्द्रियों के विभिन्न स्तरों को आत्मस्वर के साथ एकाकार करने का ही नाम 'योग' है। शरीर एवं मन द्वारा अग्राह्य आत्मा योग द्वारा स्पष्टत: प्रतिबिम्बित होती है। योग के सतत् अभ्यास से योगी के लिए कुछ भी असम्भव नहीं रहता। वह किसी भी क्षेत्र में, किसी भी परिस्थिति में. किसी भी रूढ़िग्रस्त धर्म के बन्धन में क्यों न हो, उसके जीवन में निराशा के लिए कोई स्थान नहीं रहता, क्योंकि योग का द्वार उसके लिए सदा उन्मुक्त रहता है।

*योगविद्या, मार्च 1972*

# गुरु पूर्णिमा – हमारा पावन पर्व

गुरु पूर्णिमा हर वर्ष एक नया संदेश ले कर आती है, और गुरु-शिष्य को झकझोर कर, सचेत कर फिर आने का आश्वासन देकर चली जाती है और हम अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग हो संसार-सागर में अपना कार्य सफलतापूर्वक करने तत्पर हो जाते हैं।

सन्त-महापुरुष इस जग में आत्मज्ञान के मार्ग का पथ प्रदर्शन कराते हैं। वे हमें इस जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा दिलवाते हैं। वे भगवान के दूत हैं, इस पीड़ित मानवता की सहायता के लिये आते हैं, पथ भूले दीन-दुःखी मानव को रास्ता बताते हैं।

प्रश्न उठता है कि वह कौन-सी शक्ति है जो हमारे लक्ष्य, गुरु व प्रभु के मध्य बाधक है, और हमें अपनी चुम्बकीय शक्ति से दूर हटाती है। जब हम विवेक से सोचते हैं तो उत्तर मिलता है कि यह शक्ति दुनिया के विषय भोगों के प्रति मोह-माया रूपी आसक्ति है? यह दुनिया एक बहुत ही सुन्दर जेल खाना है। इसके जाल में हम मछलियों की तरह फँस गये हैं। यह शरीर एक किराये का मकान है, जो हमें एक सीमित समय के लिये मिला है। अवधि पूरी होते ही हम भले ही अनेकों प्रयत्न करें, हँसे या रोयें, आत्मा तो प्रस्थान कर ही जाती है, और यह शरीर भी अपने तत्त्वों के साथ मिल जाता है।

हमारी आत्मा युगों-युगों से जन्म-मरण के बन्धन में है। चौरासी लाख योनियाँ इस आत्मा के लिये भयंकर काल कोठरियाँ हैं। जन्म-मरण चक्र से मुक्ति मानव जीवन में ही हो सकती है। सिर्फ मानव जीवन से ही कुछ नहीं होने वाला जब तक शरीर रूपी अभेद्य किले पर विजय प्राप्त करने के लिये सन्तों का सहयोग और गुरु का आशीर्वाद न प्राप्त हो। सन्त महात्मा हर युग में आते हैं। अपने स्वार्थ के लिये नहीं हमारे कल्याण के लिये। जगत् रूपी जंगल में भटकते मानव के उद्धार के लिये वे जन्म और मृत्यु के दुःख को सहर्ष स्वीकारते हैं। सन्तों को न हमारे शरीर की जरूरत है, न धन की, न मन की। वे तो राजाओं के भी राजा हैं। गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को कहते हैं–

*यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।*
*अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥*

हे अर्जुन! जब-जब धर्म की हानि एवं अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं आता हूँ। इस शताब्दी में भी बहुत से सन्त हुए हैं, जैसे आदिगुरु शंकराचार्य, स्वामी दयानन्द, रमण महर्षि, परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी योगानन्द। फिर आये महामण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द सरस्वती, जिनका जन्म मद्रास के प्रतिष्ठित घराने में हुआ, उच्च शिक्षा प्राप्त की और डॉक्टर होकर मलाया में दीन-दुखियों की सेवा शुरू की। विधि का विधान था या जन्म-जन्म का संस्कार, उनका मन वैराग्य की ओर अग्रसर होने लगा, और वे राजसी वैभव तैयाग कर 1923 में भारत आये। गुरु की खोज में वे ऋषिकेश पहुँचे, और वहाँ गंगा माँ के किनारे महान् गुरु का साक्षात्कार हुआ। उसी वर्ष कैलास-मानसरोवर के निकटस्थ ग्राम में हमारे प्रेरक सन्त का जन्म हुआ। सन्त बालक ने छोटी उम्र में ही सत्य-ज्ञान का अन्वेषण शुरू किया। सुसम्पन्न परिवार, सुशिक्षित माता-पिता, कॉन्वेन्ट की शिक्षा – ये सब प्रलोभन उन्हें बांध नहीं सके। शिक्षा के क्षेत्र में वे सफलतापूर्वक बढ़ते गये, और एक दिन विश्वविद्यालय के प्रांगण से आध्यात्मिकता की खोज में निकल पड़े। मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर और गुरुद्वारा को देखते-समझते सद्गुरु की खोज में ऋषिकेश पहुँचे, जहाँ उन्होनें स्वामी शिवानन्द जी को गुरु रूप में पाया। गुरु ने इस त्यागी बालक को निकटतम शिष्य बनाया, तथा ब्रह्मविद्या गुरुओं की प्राचीन परम्परा में संन्यास दीक्षा दे, नाम दिया स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने गुरु आश्रम में 12 वर्ष कठिन साधना कर योग के विभिन्न पहलुओं पर अधिकार प्राप्त कर, गुरु से परिव्राजक बन भारत भ्रमण की आज्ञा माँगी। गुरु ने भी शिष्य की कठिन से कठिन परीक्षा लेकर, 'जिसे शस्त्र काटे न मृत्यु मिटावे, बुझावे न पानी न अग्नि जलावे' के मंत्र से अभिषिक्त कर, दिग्विजय करने का आशीर्वाद देकर विदा किया। मई 1956 से इनका परिव्राजक जीवन शुरू हुआ। 14 जुलाई 1963 को स्वामी शिवानन्द जी ने महासमाधि ली। उस समय परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी मुंगेर शहर में गंगा किनारे स्थित आनन्द भवन में साधना कर रहे थे। गुरु के आदेशानुसार आश्रम बनाने तथा अखण्ड-दीप प्रज्वलित करने का निर्णय लिया। साधना की एक उच्च अवस्था को प्राप्त कर, 19 जनवरी 1964 को बिहार योग विद्यालय, शिवानन्द आश्रम का निर्माण कर वहाँ अखण्ड दीप जलाकर अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल का

निर्माण किया। इतने अल्प समय में देश-विदेश में कितने ही आश्रम व संस्था की शाखाओं का निर्माण हो चुका है।

ब्रह्मलीन स्वामी शिवानन्द जी के त्याग व संन्यास के 50वें वर्ष तथा परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी के जन्म के 50वें वर्ष पर मुंगेर शहर में 9 अक्टूबर से 14 अक्टूबर तक एक विशाल विश्व योग सम्मेलन का आयोजन हो रहा है। 15 जुलाई, गुरुपूर्णिमा के पावन दिन, गुरु चरणों के स्मरण के साथ स्वामी जी के शिष्य ब्रह्मलीन स्वामी सत्यव्रतानन्द जी को भी हम नहीं भूल सकेंगे। उन्हें हम लोग प्यार से 'दादा जी' कहा करते थे। वे अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल के जनरल सेक्रेटरी थे, योग विद्या प्रेस के संचालक थे। राजनाँदगाँव योग विद्यालय उनकी इच्छाओं का साकार रूप है। उन्हें गुरु और गुरु आश्रम के प्रति इतनी लगन थी कि वे जीवन की अन्तिम घड़ी में भी आश्रम से ही आ रहे थे। उन्होने तन-मन-धन से गुरु का काम किया और अन्त में गुरु के आश्रम में ही स्थान लेकर अपने ये प्रिय शब्द 'जाऊँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे' चरितार्थ किये। धन्य हैं वे गुरु और धन्य हैं ऐसे शिष्य, उनके चरणों में मेरा शत-शत प्रणाम।

*योगविद्या, जुलाई 1973*



गुरु के प्रतीक का ध्यान ही सर्वोत्तम ध्यान है, उनके चरणों की पूजा ही सर्वश्रेष्ठ पूजा है, उनके वाक्यों का अनुपालन ही सर्वसुन्दर मंत्र है और उनकी कृपा ही मोक्ष के लिये सर्वप्रिय सोपान है।

हमारे गुरुदेव परमहंस सत्यानन्द सरस्वती आदर्श गुरु हैं जो सारे विश्व को आत्मानुगामी बनाने पर तुले हैं। उनका प्रभाव अमिट रहेगा। प्रत्येक मानव उनके सदुपदेशों से अपने जीवन पथ पर निष्कण्टक यात्रा कर सकेगा। देश-विदेश के बन्धुओं! आप सबको पूज्य गुरुदेव परमहंस सत्यानन्द सरस्वती का आशीष प्राप्त हो। ओम् सत्यम्।

*योगविद्या, जुलाई 1975*

# आत्मा के दोने में श्रद्धा के फूल

पूज्य गुरुदेव की स्वर्ण जयन्ती के पावन पर्व पर मुद्गल ऋषि की पवित्र भूमि मुंगेर में, कष्ट हरणी गंगा मां के तट पर हजारों-लाखों लोग उपस्थित होंगे। यह यज्ञ त्रेता युग या द्वापर युग के राजमहल का यज्ञ नहीं है, यह तो इस युग के संन्यासी का विश्व योग यज्ञ है।

1923 में गुरु ने महान् कार्य हेतु सर्वस्य त्याग किया। फलस्वरूप, कार्यवाहक शिष्य का अवतरण भी 1923 में हुआ। कलयुगी भौतिकता से पीड़ित, अस्वस्थता से कराहती मानवता को योग विद्या से सींचकर सुखी व स्वस्थ बनाने वाले 'सन्त-द्वय' की स्वर्ण जयन्ती की बेला में गुरुदेव की पूजा-अर्चना कैसे की जावे?

प्रथा के अनुसार चाहिये–रंगोली, दिया, कपास, रोली, अक्षत, पान, फूल, पूगीफल, नारियल, दूध, दही, कंद, मूल, फल, लड्डू और बताशा। किन्तु आज तो मशीनी युग है। ऊँची मंजिलों पर रहने वाले, गोबर, मिट्टी, कुश, कहाँ से पायेंगे? पेस्ट्री और लेमन ड्रॉप्स लेने वाले लाई-बताशा कहाँ खोजेंगे? हवन और धूप देने अग्नि कहाँ से लायेंगे, क्योंकि हमारा भोजन तो बनता है गैस, कूकर और हीटर में। डब्बे की मसालेदार सुपारियाँ छोड़ पूगीफल कहाँ खोजें, कन्द-मूल तो स्वप्नवत् हैं। देव! हमारा जीवन, जमाना और युग बदल गया, पर मन के अन्दर अर्चना की पुरानी पद्धति वैसी ही है।

अब हमें शीघ्र ही उपासना के वास्तविक महत्त्व को पहचानना होगा। आत्म-मन्दिर के पुजारी महाराज, 'मन' को पकड़ने की साधना से ही मन में देव-दर्शन और पूजा-अर्चना सम्भव हो सकती है।

*स्वामी शिवानन्द स्वर्ग सदन में, स्वामी सत्यानन्द योग उपवन में।*
*स्वामी निरंजनानंद है उलझन में, कैसे गुरुदेव की आरती उतारूँ॥*

*योगविद्या, सितम्बर-अक्टूबर 1973*



# मन को वश में करने का एकमात्र साधन – योग

आज आप लोगों से मिलकर, आप लोगों को योग की जानकारी के लिए उत्सुक देखकर मुझे बहुत खुशी हो रही है। योग विद्या हमारी प्राचीन संस्कृति है, लेकिन ऋषि-मुनियों को छोड़ करके आज तक इस विद्या को कोई भी नहीं समझ पाया है। सब कोई यही समझते हैं कि योग तो साधु-महात्मा लोगों के लिए है, घर से दूर जंगल में रहने वालों के लिए है, गृहस्थों के लिए नहीं है। कुछ लोग कहते हैं, साधु बाबा लोग काला जादू जानते हैं, बाबा जी से दूर ही रहना नहीं तो जादू-टोना कर देंगे, या साधु बाबा लोग पद्मासन लगाकर बैठते हैं और हवा में उड़ जाते हैं। ऐसी अनेक गलत धारणाओं के कारण मनुष्य अभी तक योग को अपने जीवन में नहीं ला सका है।

आज मैं आप लोगों को योग के बारे में दो-चार शब्द कहूँगा। योग की अलग-अलग शाखाएँ होती हैं, जैसे कर्म योग, भक्ति योग, ध्यान योग, लय योग, हठ योग, आदि। उदाहरण के तौर पर हम हठ योग को ही लें। हठ योग में आसन, प्राणायाम और षट्कर्म है, जिसका उल्लेख घेरण्ड संहिता में आया है। षट्कर्म के अलावा हठ योग में बहुत-सी क्रियायें आती हैं, जिनसे मनुष्य सोचते हैं कि मन पर विजय पा सकते हैं। लेकिन मन पर विजय पाना बायें हाथ का खेल नहीं। वर्षों लग जायेंगे, या जिन्दगी ही बीत जाएगी। मन पर विजय पाने के लिए पहले मन का दोस्त बनना पड़ेगा, तब कहीं मन आपका दास बन सकता है। इस विषय में एक सुन्दर कहानी याद आ रही है, जिसे पूज्य गुरुदेव बताते हैं–

एक राजा के पास जंगली घोड़ा था। वह बहुत ही दुष्ट था, सभी नौकर उससे परेशान थे। राजा ने एलान करवाया कि जो इस घोड़े को रास्ते पर लायेगा उसे बहुत-सा इनाम और जागीर दी जायेगी। कितने ही लोग आये और घोड़े के पास जाकर अपना हाथ-पैर तुड़वा लिए। सभी परेशान। एक दिन एक साधारण से आदमी ने आकर कहा कि वह घोड़े को सुधार सकता है। किसी को विश्वास नहीं हुआ। घोड़ा छोड़ा गया, घोड़ा भागा। युवक ने रोकने या पकड़ने की कोशिश नहीं की, और वह भी घोड़े के पीछे भागा। दिन, हफ्ते, महीने और वर्ष बीत गए। सबने सोचा कि वह युवक अब तक आया नहीं, शायद मर गया हो।

12 वर्ष के बाद एक दिन वही युवक घोड़े पर सवार होकर आया। लोगों ने पहचाना, आश्चर्य हुआ। सबने पूछा, 'भाई, तुमने इस दुष्ट घोड़े पर कैसे सफलता पाई?' उसने बताया, 'जब मैं घोड़े के पीछे भागा, तो दूर से देखता रहता था कि यह कहाँ जाता है, क्या करता है? जब यह खाता-पीता-सोता, तो मैं भी कुछ खा-पी लेता और कुछ दूरी पर ही सो जाता। कभी उसके पास नहीं गया, दूर से बराबर ध्यान रखता। कई वर्षों के बाद कभी-कभी यह मेरी तरफ देखता, कभी खड़ा हो जाता। मुझे उसमें कुछ परिवर्तन दिखा तो मैंने उसे घास दिखाई। वह आकर मेरे हाथ से खाने लगा। दोस्ती होने लगी पर मैं दूर ही रहता। घोड़ा धीरे-धीरे मेरे नजदीक आने लगा। मैं सहलाने लगा, छूने लगा, और एक दिन उस पर सवारी भी की, और जब वह पूरी तरह मेरे वश में हो गया, तब यहाँ आया हूँ।'

मन को भी इसी बिगड़े घोड़े की तरह समझिए। इसे वश में करना एक समस्या ही है पर उस समस्या का इलाज भी हमारे पास है। इस मन रूपी घोड़े को काबू में लाने के लिए योगाभ्यास ही प्रथम सीढ़ी है। कितने लोग कितनी ही बातें करते हैं। किसी ने तो कह दिया, मन दु:खों का पिटारा है, जो भगवान से हमें दूर कर देता है। मैं ज्यादा तो नहीं जानता, लेकिन सोचता हूँ कि यह मन हमारे और भगवान के बीच में एक परदा है। हमें क्या करना है? केवल इस परदे को, इस मन को सामने से हटाकर भगवान से मिलना है, और यह योगाभ्यास के द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

आप लोगों को मालूम ही है कि योग का मतलब है मिलना, जिसे अँग्रेजी में यूनियन कहते हैं–शिव-शक्ति का मिलना या अपनी चेतना का परमात्मा से मिलना। हम लोग हठ योग में जो बतलाते हैं वह व्यायाम या कसरत नहीं है, न जोकर का खेल है, क्योंकि अगर हम अभी करने लग जायें तो आप लोग हँसोगे, कि ये बाबा जी जोकर-पना करने लग गए। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि योगाभ्यास है–'अपने मन को वश में करना, मन पर कन्ट्रोल करना, मन पर शासन करना। ये तीनों योगाभ्यास से ही सम्भव हैं।

*जगदलपुर योग सम्मेलन में स्वामी निरंजन का प्रवचन,*
*योगविद्या, मई 1974*



# परिचय

*14 फरवरी 1975 बाल स्वामी निरंजन का 15वां जन्म दिवस है। स्वामी निरंजन स्वामी सत्यव्रतानन्द जी के हृदय सम्राट्, स्वामी सत्यानन्द जी के मुकुट का जगमगाता अमूल्य रत्न है। क्षणभंगुर जीवन की मोह-माया से ऊपर उठकर स्वामी सत्यव्रतानन्द जी ने स्वामी निरंजन को लोकहितार्थ, गुरु चरणों में समर्पित कर दिया।*

*आयुष्मान् निरंजन का कल्याणकारी कार्य ही मेरे जीवन का आधार है। पूज्य स्वामी जी के आदेश से 7 वर्ष की उम्र में जो प्रथम काव्य रचना निरंजन ने की थी वह प्रस्तुत है।*

*– माँ धर्मशक्ति*

जमींदार का बेटा एक,
सुन्दर-सुघड़-सलोना-नेक।

'धर्मेन्द्र' था उसका नाम,
अपूर्व, अलौकिक उसके काम।

नैनीताल में शिक्षा पाई,
गुरुजनों ने प्रतिभा जानी।

करने को कुछ काम महान्,
निकल पड़े वे प्रतिभावान्।

मंजिल पाई शिवानन्द द्वार,
बज उठा दिल का तार-तार।

बन गये 'स्वामी सत्यानन्द',
पाया गुरु-सेवा में परमानन्द।

दिग्विजय हेतु गुरु-आशीष लेकर,
निकल पड़े परिव्राजक बनकर।

‘सत्यानन्द’ के शिष्य ‘सत्यव्रत’
जिनमें उनके व्रत की विशेषता।

देखा शिष्य का आंगन सूना,
बालक्रीड़ा बिना दुःख था दूना।

शिष्य अनोखा, अद्‌भुत त्यागी,
देख गुरु की करुणा जागी।

‘नन्दग्राम’ में कृष्णावतार,
सुख का नहीं था पारावार।

तीनों काल के ज्ञाता गुरु ने,
भविष्य वाणी की मृदु वाणी में।

‘हे मेरा यह मानस पुत्र,
बनेगा योग-विद्या का सूत्र।’

कुछ गीता कुछ रामायण की,
कुछ हुई पढ़ाई स्कूल की।

‘सत्यम्’ परमहंस पद पाने पर,
शिवानन्दाश्रम बन जाने पर।

नन्द-यशोदा छोड़ा मोहन,
व्यर्थ रहे सबके सब साधन।

मुंगेर मेरा द्वारिका धाम,
‘निरंजन स्वामी’ मेरा नाम।

यही हमारा परिचय बन्धु,
‘गुरु’ हमारे ज्ञान के सिन्धु।

जय गुरुदेव! जय हो ‘सत्यम्’!
जय ‘धर्मशक्ति’! जय ‘सत्यव्रतम् !’

*योगविद्या, फरवरी 1975*

# विचित्र संयोग

कहाँ अल्मोड़ा, कहाँ ऋषिकेश,
बोलो तो सही, कहाँ है पवित्र भूमि गांज?
मान सरोवर पथ पर बसे अल्मोड़ा में,
उन्होंने प्रकृति का सुहाग सजा देखा।
नैनीताल कॉन्वेंट में जीवन का,
सौरभ विकसित हुआ।
ऋषिकेश में जीवन के अनुभवों के,
तार सम्भाले और स्वर साधे।
शिवानन्द नगर में उन्होंने आत्मा का,
साक्षात्कार किया ...... और
आज विश्व के चतुर्दिक देशों के,
असंख्य मानवों के आराध्य देव हैं।
कहाँ है अल्मोड़ा, कहाँ ऋषिकेश, और कहाँ मुंगेर।
धन्य है प्रभु की लीला, और विधि का विधान।
देश-विदेश में सब जगह हैं, श्री 'सत्यम्' के आश्रम धाम।

*योगविद्या, मई 1972*



जीवन में हर समय भय, लोभ, मोह, आदि मन के सामने मण्डराते रहते हैं। लोग समझ नहीं पाते कि योग का मनुष्य के दुःख से क्या सम्बन्ध है, संसार रूपी भोगों में फंसना क्या है। गीता और रामायण हमें यही बता रहे हैं, पर हम समझते कहाँ है? हम तो संसार-सागर में डूबते-उतरते रहते हैं, यह सोचकर कि अंत में गीता सुन लेंगे, मुक्ति मिल जायेगी। योग का अर्थ हवा में उड़ने से लगाते हैं। पर अब जमाने के साथ हमें भी बदलना होगा। और इसका बहुत ही सरल मार्ग है 'योग', जो हम आप लोगों को बताते हैं, सिखाते हैं। सीखो-समझो-करो।

*योगविद्या, फरवरी 1975*

# प्रकाश चिन्तन

यह आषाढ़ पूर्णिमा
याने 'गुरु पूर्णिमा,'
यह शिष्यों का दिवस है–
चेतना के पूर्ण विकास का प्रेरक
अन्तस है चिदाकाश–
इसमें पांचों का नाम
ओर तीनों का संचालन
यह प्रकृति का प्रांगण।
जैसे हुआ गुरु का सामीप्य,
वैसे हुआ चन्द्रोदय,
चिदाकाश की प्राचीरों को चीरकर।
और तब प्रतिभा से खिल उठते
चेतना के सभी आयाम,
यह पुरुष का उद्भव, यह 'पूर्णिमा'।
यह अन्धकार,
ये ग्रन्थियाँ,
अविद्या, काम, कर्मों की।
युगों-युगों की वासना पर पलती आई हैं।
हर आयाम में जीवों को छलती आई हैं।
भटक रहे हम सब
न जाने कहाँ-कहाँ?
यह आषाढ़ पूर्णिमा आई तो
पर चन्द्रोदय बिना।
सोया मानव
सोया जीवन
घनघोर निशा में
मरघट बना चिदाकाश।

*योगविद्या, जुलाई 1976*

# मेरे आराध्य

'आकाश का तारा, धरती का फूल' नामक पुस्तिका पाठकों के हाथों में समर्पित करते समय हमने वादा किया था कि यथाशीघ्र इसी प्रकार की अन्य रचना प्रकाशित करेंगे। हर कार्य राम की इच्छा पर समय आने पर ही सम्पन्न होता है। हार्दिक इच्छा होते हुए भी 'मेरे आराध्य' पुस्तक को इसके पूर्व प्रकाश में न ला सके। 2 नवम्बर को दादा जी के संन्यास दिवस के अवसर पर माँ धर्मशक्ति द्वारा रचित यह धर्मग्रन्थ आप लोगों को धर्म मार्ग पर प्रशस्त करने हेतु प्रस्तुत है।

मेरी प्रथम पुस्तक में आप लोगों को पूज्य गुरुदेव का प्रारम्भिक परिचय मिल ही गया है, इस पुस्तक से आप उनके अधिक निकट पहुँच जावेंगे। अत: मैं इसे प्रथम पुस्तक का ही द्वितीय भाग कहना चाहूँगा। अम्मा जी ने इसका नामकरण 'मेरे आराध्य' किया, क्योंकि प्रारम्भ से ही उन्होंने पूज्य स्वामी जी को इसी दृष्टि से देखा है, उन्हीं के प्रकाश में मार्ग खोजा है।

अम्मा जी पूज्य स्वामी जी की सर्वप्रथम शिष्या हैं। उनके मातृतुल्य शक्तिपूर्ण हठ के आगे विवश होकर पूज्य स्वामी जी ने स्वयं को पूज्य गुरुदेव के रूप में परिणत किया। इसे पूर्व संस्कार या विधि का विधान, कुछ भी कहा जा सकता है।

यद्यपि दादा जी ने महामण्डलेश्वर श्री स्वामी शिवानन्द जी से दीक्षा प्राप्त की थी, तथापि वे पूज्य स्वामी जी के निकटतम शिष्य थे। सगे भाई एवं घनिष्ठ मित्रों का सा व्यवहार था उनमें। पूज्य स्वामी जी को इस बात का पूर्व ज्ञान था कि उनके व्रत की विशेषता दादा जी में है और इसलिए योग रथ की डोर पकड़ा दी उनके हाथ में। दादा जी सारथी बन गये। 'शक्ति' तो थी ही। शायद पताका की कमी थी। उसकी भी पूर्ति हो गई। कैसे? यह आपके समझने का विषय है।

दादाजी ने अपने अन्तिम समय तक 'अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल' की डोर की पकड़ ढीली नहीं की। उन्होंने तन-मन-धन से गुरु-चरणों की सेवा की। योग विद्या के उत्थान, प्रचार एवं प्रसार हेतु दिन-रात एक कर दिया। उन्हें भोजन-शयन का भी ध्यान नहीं रहता। धर्मपत्नी एवं पुत्र ने भी समर्पण द्वारा उनके इस हवन में भाग लिया। उनके हृदय पटल पर स्वामी जी का जो चित्र

अंकित था, उसका दिग्दर्शन कराने में यह तुच्छ लेखनी असमर्थ है। पूज्य स्वामी जी के सत्यरूप को ब्रह्मलीन स्वामी सत्यव्रतानन्द जी ने ही पहचाना। अन्य शायद इस प्रयास में असफल ही होंगे। ईश्वर की लीला ही ऐसी होती है कि कभी जीव को वह 'दयालु भगवान' दिखलाई देता है तो कभी 'प्रकृति का निष्ठुर-कठोर नियंत्रक।' दादा जी की आस्था की जड़ मरुभूमि पर स्थापित नहीं थी जो हवा के तनिक से झोंके से हिल जाती। आखिर क्यों?

इसी प्रश्न का उत्तर आपको 'मेरे आराध्य' में प्राप्त होगा, जिसमें रचयिता ने अपने आराध्य के चरित्र को अधिकतम रूप से प्रकाशित करने का सफल प्रयास किया है। यद्यपि 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' के अनुसार यह पुस्तक अथाह जल राशि में चुल्लू भर जल डालने की भाँति ही है तथापि योग संस्कृति के भवन निर्माण में यह नींव का पत्थर सिद्ध होगा।

आज विश्व में कोई भूला-भटका मानव ही होगा जिसने पूज्य परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी का नाम न सुना हो। स्वामी जी ने सबका प्रेम व मन जीत लिया है। वे तो भक्तों-साधकों-जिज्ञासुओं के अचेतन में उतर चुके हैं। पंच तत्त्व की भाँति आज योग समस्त वायुमण्डल में व्याप्त है। वे सबके आराध्य बन चुके हैं। अत: प्रत्येक योग प्रेमी के लिए 'मेरे आराध्य' साधन एवं साध्य सिद्ध होगी, ऐसी आशा है और यही परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है।

*योगविद्या, नवम्बर-दिसम्बर 1976*

## शिष्य को पत्रादेश

4 मई, 1972
मुंगेर

निरंजन,

ॐ! पत्र मिला। प्रसन्नता हुई। तुम्हें क्लास लेना है। संवादों में भाग लेना है। और कुछ काल उपरान्त स्वतन्त्र भ्रमण करना है। अपनी खिड़कियाँ खोलकर चारों ओर से शुद्ध वायु आने दो। किन्तु सांसारिकता का समर्थन नहीं करना। साधु थे, साधु हो, साधु रहना और वीर पुरुष की तरह जीना। दया-माया केवल छाया है।

–सत्यम्

# शक्ति की खोज में

योग और योग के सभी अंग तंत्रशास्त्र की शाखायें हैं। प्राचीन काल से ही तंत्र एक गुप्त विद्या के रूप में प्रचलित है। प्राचीन ऋषियों ने इस तंत्र की कुछ शाखाओं को जनसामान्योपयोगी बनाने के लिए खुले वातावरण में पुनर्मूल्यांकन किया। इनका उद्देश्य तन्त्र को सर्वव्यापक करना था। उसी समय कुण्डलिनी योग का उद्घाटन हुआ। यह योग तो तंत्र का एक भाग है, यह न तो असत्य है और न रहस्यात्मक। मनुष्य का अन्तर्मन सदैव विकास की सीढ़ियों पर चढ़ता रहता है। प्रत्येक मानव में शक्ति का अनन्त खजाना भरा है और इसको प्रकाश में लाना ही कुण्डलिनी योग का प्रयोजन है।

## कुण्डलिनी की परिभाषा

कुण्डलिनी के विषय में लोगों को बहुत-सी भ्रमपूर्ण धारणायें हैं और कुण्डलिनी की परिभाषा भी ठीक से नहीं दी जाती। कुछ लोगों के मतानुसार स्प्रिंग की कुण्डली में जो उर्जा होती है, उसे ही कुण्डलिनी मानते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यह ज्ञान है, दैविक शक्ति है, प्राणशक्ति का उद्गम स्थल या उच्च चेतना की कुंजी रूपी शक्ति है।

अनेक पीढ़ियों तक मनुष्य को अपने शरीर का ज्ञान नहीं था। धीरे-धीरे पता चला कि उसका एक हृदय है, दो फुफ्फुस हैं, इत्यादि। कुण्डलिनी की खोज अब अगला कदम है। कुण्डलिनी दैविक शक्ति है, सृष्टि का तत्त्व रूप है। इस शक्ति को जगाया जा सकता है और इसको जगाने की अनेक विधियाँ हैं। यदि हम आधुनिक मनोविज्ञान में कुण्डलिनी के पर्यायवाची शब्द खोजें तो पाते हैं कि कुण्डलिनी का अचेतन मन से निकट का सम्बन्ध है। विभिन्न देशों के अवलोकन से पता चलता है कि सर्प कुण्डलिनी को दर्शाने का सामान्य तरीका है। इसे सर्प-शक्ति भी कहते हैं।

हिन्दू इसे शक्ति या देवी कहते हैं, अफ्रीका में इसे नऊँम, चीन में ची शक्ति और जापान में की-शक्ति कहते हैं। ईसाई धर्म में भी सन्त तेरेसा कुण्डलिनी शक्ति के अनुभव के विषय में लिख चुकी हैं। सूफी मत और हिन्दू मत में भी इसका अनेकों लोगों ने अनुभव किया है।

## कुण्डलिनी का मार्ग

उत्थान के समय कुण्डलिनी अनेक मार्गों का अनुसरण कर सकती है। प्राचीन योगीजन कहते हैं कि कुण्डलिनी मूलाधार चक्र में जगकर दूसरे चक्रों को भेदती हुई सीधे सहस्त्रार को पहुँचती है। परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी के अनुसार कुण्डलिनी शरीर के किसी भी चक्र से उठ सकती है, मूलाधार से ही जाग्रत हो यह कोई आवश्यक नहीं है। हर चक्र से सहस्त्रार तक सीधा मार्ग होता है। यदि कुण्डलिनी मूलाधार से जागी तो सीधे सहस्त्रार जाएगी। कुण्डलिनी को अनाहत या विशुद्धि में भी जगाया जाय तब भी वह सीधे सहस्त्रार जाएगी। कुण्डलिनी शक्ति की गति हमेशा ऊर्ध्वगामी होती है।

आधुनिक खोजों के अनुसार कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होने पर सर्वप्रथम पैर का अंगूठा, फिर टखना, उसके बाद पिंडली प्रभावित होती है। इस तरह संवेदना सिर की दिशा में नीचे से ऊपर बढ़ने लगती है। इसके उपारान्त चेहरे तक, फिर गले और छाती से होते हुए पेट तक पहुँचती है जहाँ वह विश्राम करती है। अनेक संतो के मतानुसार कुण्डलिनी रीढ़ की हड्डी के नीचे से उठती है और सुषुम्ना से होती हुई सिर तक पहुँच जाती है, उसके बाद नीचे आकर उपयोगी शक्ति के रूप में इकट्ठी हो जाती है।

## चक्र

मनुष्य शरीर के रीढ़ की हड्डी में छः मुख्य चक्रों के अस्तित्व की मान्यता है– मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा। सहस्त्रार सभी चक्रों का नियन्त्रक चक्र है। शरीर में और भी अन्य चक्र हैं, उदाहरणार्थ बिन्दु, ललना, नासिकाग्र, भ्रूमध्य इत्यादि। लेकिन ये सब चक्र छः प्रमुख चक्रों के अधीन काम करते हैं। प्रथम चक्र मूलाधार है जो कि गुदा स्थल पर है। मूलाधार चक्र कुण्डलिनी का निवास स्थान है। इसका तत्त्व पृथ्वी है। दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान है जो मूलाधार से दो अंगुल ऊपर है और इसका तत्त्व जल है। तीसरा चक्र है मणिपुर। यह रीढ़ की हड्डी में नाभी के पीछे स्थित है और इसका तत्त्व अग्नि है। चौथा चक्र अनाहत, हृदय के पीछे रीढ़ की हड्डी में स्थित है। अनाहत का अर्थ है बिना कम्पन से उत्पन्न ध्वनि और इसका तत्त्व आकाश है। छटवाँ चक्र आज्ञा, पीनियल ग्रन्थि पर स्थित है जहाँ पर सब तत्त्वों का मिलन होता है। इसे गुरु-चक्र भी कहा जाता है। अन्त में सहस्त्रार है जहाँ पर कुण्डलिनी का शिव से मिलन होता है।

## कुण्डलिनी का उत्थान

आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार इन सब चक्रों में असीमित शक्ति छिपी हुई है। इन चक्रों से शक्ति निःसृत नहीं हो पा रही है। चक्रों में निहित शक्तियों के सुप्त रहने के कारण इन चक्रों में अशुद्धि विद्यमान है और चक्रों को कुण्डलिनी के गुजरने के पूर्व शुद्ध होना आवश्यक है। अशुद्धि के कारण कुण्डलिनी के चक्रों से गुजरने से पूर्व बहुत अधिक दर्द का अनुभव होता है। उस समय ऐसा लगता है मानो कोई शरीर को दो भागों में विभक्त कर रहा है। उदाहरणार्थ आप सात कमरों के दरवाजे तोड़ना चाहते हैं। इसके लिये आपको शारीरिक बल लगाने की आवश्यकता है। एक बार दरवाजा खुल जाय तो आप बहुत ही प्रसन्न हो जावेंगे, भले ही आप थके हों। उसी तरह बहुत अधिक दर्द होने के बाद जैसे ही कुण्डलिनी चक्रों को पार करती है वैसे ही आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

योग-तरी-तीरे-तीरे में स्वामी सत्यानन्द जी कहते हैं, 'ये आध्यात्मिक केन्द्र या चक्र अनेक रहस्यों को अपने में छिपाये हुए हैं। वे सामान्य अवस्था में निष्क्रिय पड़े हैं। आध्यात्मिक जिज्ञासु इस असीम शक्ति के भंडार का उद्घाटन करना चाहता है। यही शक्ति रीढ़ की हड्डी के नीचे सर्पाकार कुण्डली मारे बैठी है। इस असीम शक्ति-भंडार को एक-एक चक्र से गुजरना होता है। जैसे एक बिजली का मिस्त्री बल्ब को विद्युत धारा वाले वायरों से जोड़कर बल्ब प्रज्वलित कर देता है, उसी तरह आध्यात्मिक साधक जगाई गई कुण्डलिनी शक्ति को चक्रों से जोड़कर ज्ञान का प्रकाश उपलब्ध कर लेता है। तब साधक अपनी शक्तियों का अनुभव करने लग जाता है।'

इसपर अनेक प्रयोग हुए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में डॉक्टर ली सेनेला ने कुण्डलिनी शक्ति पर अनेक प्रयोग किये हैं। कुण्डलिनी का अभिव्यक्तिकरण वस्तुतः निश्चित परिपक्वता के बाद ही सम्भव है और परिपक्वता चेतन स्तर पर उठने वाले विभिन्न विचारों अर्थात् मानसिक विक्षेपों द्वारा नियन्त्रित है। सेनेला ने अपनी किताब 'कुण्डलिनी – साइकोसिस ऑर ट्रान्सैन्डैन्स' में कुण्डलिनी के जागरण की विभिन्न विधियों का उल्लेख किया है। बेन्टॉव के सिद्धान्तानुसार जब लोग ध्यानावस्थित होते हैं तो पेट की महाधमनी पर धक्के लगने से संवेदना शुरू होती है। महाधमनी निश्चित ताल-तरंग के साथ स्पन्दन करती है और थोड़े समय बाद ही खड़ी लहरों का निर्माण करने लगती है।

खड़ी लहरों का अर्थ समझने के लिए एक उदाहरण दिया जा सकता है। यदि आप पानी से आधी भरी बाल्टी में हाथ डालकर पानी को असमान गति से बायीं और दायीं ओर ले जाते हैं तो पानी बाल्टी से बाहर छलक जावेगा। यदि आप अपना हाथ समान गति से हिलायेंगे तो पानी बाल्टी के दोनों किनारों पर समान ऊँचाई तक चड़ेगा और उसके हिलने में तालबद्धता होगी। इन्हीं नियमित तरंगों को खड़ी लहरें कहा जाता है।

पेट में स्थित महाधमनी के स्पन्दन से जो खड़ी लहरें बनती हैं, वे शरीर को प्रभावित करती हैं। ध्यान में इसका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। खड़ी लहरों का दोलन तब तक बड़ता जाता है जब तक कि लहरों का उच्च भाग व्यक्ति की खोपड़ी को स्पर्श न करने लग जाए। इस पूरी प्रक्रिया की पाँच अवस्थायें हैं। हृदय महाधमनी प्रणाली खड़ी लहरों का निर्माण करती है, जो मानव मस्तिष्क को ऊपर-नीचे आंदोलित करती है। इस आंदोलन के फलस्वरूप ध्वनि तरंगों का निर्माण होता है। चूँकि खोपड़ी गोल आकार की है, अत: ध्वनि तरंगें मस्तिष्क के सामने के भाग में केन्द्रित हो जाती हैं। इन ध्वनी तरंगों में दो प्रकार की आवृत्ति वाली तरंगें होती हैं। श्रवण शक्ति के अन्तर्गत आने वाली और श्रवण शक्ति के परे अर्थात् सुपरसॉनिक। ये ध्वनी तरंगें सूक्ष्म विद्युत धारा बनाकर मस्तिष्क के आधे हिस्से में परिपथ बनाकर बहने लगती हैं। इससे दो विद्युत परिपथ बनते हैं, जो आगे चलकर विपरीत ध्रुवों वाले आन्दोलित चुंबकीय क्षेत्र निर्मित करते हैं।

इस प्रकार मस्तिष्क में स्पन्दन की संवेदना पहुँचती है और ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं। मस्तिष्क के बाहरी भाग के ऊपर उत्तेजना के फलस्वरूप विद्युत धारा बहने लगती है। तदन्तर यह चुम्बकीय क्षेत्र का निर्माण करती है। जैसे-जैसे व्यक्ति शिथिलीकरण का अभ्यास करता जाता है, हृदय सपंदन और महाधमनी के स्पंदनों में सामंजस्य स्थापित होने लगता है। गहरे ध्यान में एक ऐसी अवस्था आती है जब ये खड़ी लहरें नियमित हो जाती हैं तथा हृदय-स्पंदन को प्रभावित नहीं करतीं। यहीं से कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

केन्द्रीय नाड़ी संस्थान में यह सारी प्रक्रिया घटित होती है। सारे शरीर में कुण्डलिनी जागरण की संवेदना नाड़ी जालों द्वारा पहुँच जाती है। मस्तिष्क में बहने वाली विद्युत धारा के कारण मांसपेशियाँ और अन्य संवेदनशील क्षेत्र प्रभावित होते हैं। मस्तिष्क के एक विशिष्ट भाग पर प्रभाव पड़ने से कमर की

हड्डियाँ प्रभावित होती हैं। यदि संवेदन तीव्र रहा तो पैर के दोनों अंगूठे, टखने और जाँघ में तीव्र पीड़ा होती है। यद्यपि संवेदना शरीर के इन्हीं अंगों से आती हुई प्रतीत होती है, यह वास्तव में मस्तिष्क से ही आती है। हृदय और महाधमनी खड़ी लहरों को उत्पन्न करते हैं। ये खोपड़ी में जाती हैं और मस्तिष्क के विभिन्न संवेदनशील क्षेत्रों को प्रभोवित करती हैं। यह सम्भव है कि खड़ी लहरों का निर्माण और मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों को मिली उत्तेजना ही कुण्डलिनी जागरण का सूचक है।

स्वामी सत्यानन्दजी कहते हैं, 'प्रत्येक चक्र से हजारों नाड़ियाँ व तन्तु शरीर के अन्य अंगों को जाते हैं और शरीर की विभिन्न चेतनावस्थाओं का नियंत्रण करते हैं। चक्र उस बिजली के खम्भे की तरह हैं जहाँ से वायरों का जाल विभिन्न स्थानों में जाता है। चक्रों में ऊर्जा संप्रेषण, क्रिया-प्रतिक्रिया और ऊर्जा स्थानान्तरण होता रहता है। यदि आप मणिपुर चक्र को ध्यान द्वारा जगाने का प्रयास कर रहे हों तो इससे शरीरगत प्रतिक्रिया, नाड़ी संस्थान में प्रतिक्रिया अथवा अन्त:शारीरिक प्रतिक्रिया संभव है।

कुण्डलिनी के जागरण में हम एक विशिष्ट ग्रन्थि या अंग के माध्यम से चेतना स्तर में परिवर्तन लाने की कोशिश करते हैं। चक्र का जागरण सूक्ष्म रूप से होता है, स्थूल रूप से नहीं। चक्र के स्थूल रूप का विश्लेषण कर सूक्ष्म रूप का विभाजन करना ही जागरण है। चक्र को जगाने से ही कुण्डलिनी का जागरण होता है।

कुण्डलिनी जागरण में मस्तिष्क के कम्पन की दर सामान्य व्यक्ति से दस गुना अधिक हो जाती है। जिसकी कुण्डलिनी जग चुकी है ऐसे एक व्यक्ति का ई.ई.जी. में परिवर्तित रूप देखा गया। यन्त्र की तरंगों के आन्दोलनों की उँचाई सामान्य व्यक्ति से 10-12 गुना अधिक थी। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि मस्तिष्क की क्रियाशीलता बढ़ जाती है। जिसकी कुण्डलिनी जगी हो वे बहुत अधिक क्रियाशील होते हैं। एल.एस.डी. और अन्य नशीली वस्तुओं का सेवन करने वाले भी दिव्यानुभव प्राप्त करते हैं। किन्तु यह कुण्डलिनी जागरण नहीं है। कुण्डलिनी का जागरण मनोकायिक प्रक्रिया है।

कुण्डलिनी जागरण की अनेक विधियों और सिद्धान्तों का वर्णन उपलब्ध है। सबसे अच्छा तरीका यही है कि सिद्ध गुरु के निर्देशन में इसका अभ्यास किया जाय।

*योगविद्या, अक्टूबर 1977*

# संन्यासियों की माला

यह स्वामी शिवानन्द जी का स्वप्न था,
जिसे स्वामी सत्यानन्द जी ने साकार किया।
यह भारत का प्रथम स्वप्न है –
विश्व को जाग्रत मानव देना।

शरीर और संसार के प्रलोभन से रहित,
केवल समर्पण, सेवा, स्वाध्याय, साधना
और अप्रतिहत प्रवाहमान जलमाला के सदृश
जीवन जो जी सकेंगे,
वे ही समाज की आध्यात्मिक पिपासा को शान्त कर सकेंगे।

संन्यास त्याग नहीं,
बलिदान की तैयारी है,
बलिदान मृत्यु नहीं,
सेवा के लिए समर्पित जीवन है।

काषाय धारण करने से जीवन नहीं रंगता,
जब वस्त्र की चिन्ता छूट जाती है,
तब जीवन स्वत: रंग जाता है।
जटा-केश से संन्यासी नहीं होता,
जो अहर्निश तत्पर है,
उसे केश-विन्यास की सुध कहाँ?

संन्यासी का पागलपन होता है –
कर्त्तव्य – गुरु निर्देश के प्रति,
संसार, मानवता और ईश्वर के प्रति।

# सत्य सुमन

## *(स्वामी सत्यव्रतानन्द जी की डायरी से)*

स्वामी सत्यव्रतानन्द जी श्री स्वामी सत्यानन्द जी के सबसे पुराने एवं निकट परिचितों में से थे। स्वामी सत्यानन्द जी ने उनके बारे में कहा था, 'हमारे बीच जितनी आपसी अण्डरस्टैण्डिंग थी, उतना समझने वाला हमें आज तक नहीं मिला।' 31 दिसम्बर, 1971 को सड़क दुर्घटना में उनके आकस्मिक निधन के बाद स्वामी धर्मशक्ति ने उनकी डायरी के अंश योग विद्या पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित करने शुरू किये। 'सत्य सुमन' इन्हीं अंशों का संकलन है।

– *सम्पादक*

# सत्य सुमन

*सत्य की खोज ही मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिये अनेकों संत-महात्माओं ने अपने अनुभव के आधार पर सामान्य जन-समुदाय का मार्गदर्शन अपनी दिव्य वाणी द्वारा किया है। स्वामी सत्यव्रतानन्द जी की व्यक्तिगत डायरी ऐसे ही महकते फूलों की डलियाँ हैं। इन सत्य-सुमनों की सुगंध जन-साधारण तक व्याप्त करने की इच्छा से उनकी डायरी से प्राप्त कुछ अंश धारावाहिक रूप में प्रस्तुत कर रही हूँ। समय आने पर ही वस्तु का मूल्य आँका जाता है, शुद्ध आत्मा से सत्य वाणी स्वतः फूट पड़ती है। उनके शब्द याद आ रहे हैं– 'यह सब तुम्हारे लिये ही लिख रहा हूँ।' सच। कितनी सत्यता थी उपर्युक्त वाक्य में। आज समझ पा रही हूँ।*

*30 दिसम्बर, 1971 को स्वामी सत्यव्रतानन्द जी की डायरी में लिखे गये अनमोल वचनों के अन्तिम पृष्ठ से यह श्रृंखला शुरू कर रही हूँ।*

– माँ धर्मशक्ति

आखिरी श्वास तक हाथ से कोई-न-कोई सेवा कार्य हो रहा है, भावना की पूर्णिमा चमक रही है, हृदयाकाश में जरा भी आसक्ति नहीं है, बुद्धि सतेज है—इस तरह जिसकी मृत्यु होगी, वह परमात्मा में जा मिलेगा। ऐसा परम मंगलमय अंत लाने के लिये रात-दिन सावधान और दक्ष रहकर लड़ते रहना चाहिये। एक क्षण के लिये भी मन पर अशुभ संस्कार न पढ़ने दीजिये, और ऐसा बल मिलता रहे, इसके लिये परमात्मा से सतत् प्रार्थना करते रहना चाहिये। नाम स्मरण, तत्त्व-स्मरण, पुनः-पुनः करते रहना चाहिये।

जिसके मरण के समय आग जल रही है, सूर्य चमक रहा है, शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा बढ़ रहा है, उत्तरायण में निरभ्र व सुन्दर आकाश फैला हुआ है,

वह ब्रह्म में विलीन होता है, और जिसकी मृत्यु के समय धुँवा फैल रहा हो, दक्षिणायण में मलीन व आभ्राच्छादित आकाश फैल रहा हो तो वह फिर से जन्म-मरण के फेर में पड़ेगा।

यदि चाहते हो कि पुष्प मरण हो तो अग्नि, सूर्य, आकाश, इन देवताओं की कृपा रहनी चाहिये। अग्नि कर्म का चिन्ह है, यज्ञ का चिन्ह है। अंत समय में भी यज्ञ की ज्वाला जलती रहती चाहिये। न्याय मूर्ति रानाडे कहते हैं–'सतत् कर्तव्य पालन करते हुए यदि मौत आ जावे तो वह धन्य है।' कुछ न कुछ पढ़ रहे हैं, लिख रहे हैं, कोई काम कर रहे हैं–ऐसी हालत में मैं मरूँ तो भर पाया।

आज मेरी हर एक इन्द्रिय की गति भगवान की ओर है और मेरा मन भगवान का नित्य-निवास स्थान है। मैं सर्वत्र बाहर-भीतर भगवान से ही ओत-प्रोत हूँ।

1. अब मेरे जीवन की प्रत्येक चेष्टा भगवान की सेवा है।
2. मेरे जीवन के माध्यम से मेरे अन्तर्हृदय में स्थित भगवान अपनी मंगलमयी इच्छा पूर्ण कर रहे हैं।
3. इस विश्वास के उदय मात्र से मेरे सम्पूर्ण अभाव, मेरी सारी दुर्बलतायें कौर अपूर्णतायें सर्वथा विलीन हो गई हैं, और मैं जीवन्त चेतना एवं प्रकाश का अनुभव कर रहा हूँ।
4. मेरे भगवान मेरे परम सुहृद हैं।

*योगविद्या, नवम्बर, 1972*



सगुण उपासक के लिये इन्द्रियाँ एक साधन हैं। हमारी इन्द्रियाँ मानों फूल हैं, उन्हें परमात्मा को चढ़ाना है। आँखों से प्रभु का रूप देखो, कानों से प्रभु कथा सुनो, जीभ से प्रभु नाम का उच्चारण करो, पाँव से तीर्थ-यात्रा करो, हाथों से सेवा कार्य करो–इस तरह अपनी समस्त इन्द्रियों को परमात्मा को अर्पण कर दो। फिर इन्द्रियाँ भोग के लिये रह ही नहीं जातीं। फूल तो भगवान पर चढ़ाने के लिये होते हैं, माला बनाकर अपने ही गले में डालने के लिये नहीं होते।

ईश्वर क्षमा करने वाला पावन, पवित्र पालनहार है। वह हर जगह रोजी देने वाला है। वह सब देशों का स्वामी और सर्वश्रेष्ठ है, वह सबसे अधिक सुन्दर, अन्नदाता और रहम करने वाला है।

ईश्वर सब कुछ जानने वाला है, और पतितों का उद्धार करने वाला है। वह अनाथों का पालक और दुश्मनों का संहारक है।

वह धर्मरक्षक और बडप्पन का केन्द्र है। वह असलियत को जानने वाला और सभी धर्मग्रन्थों का स्रोत है।

वह ज्ञान का अन्वेषक है और पूर्ण रूप से चेतन है। वह सच्चाई को पहचानने वाला और हर जगह दिखाई देने वाला है।

वह संसार के सम्पूर्ण ज्ञान का ज्ञाता है, सभी मुश्किलों को हल करने वाला है। वही महान् हस्ती इस संसार के सारे काम को चलाने वाली है, और उसे सारे संसार का ज्ञान है।

वह अलौकिक शक्तियों का शिखर, चित्तरंजन और कृपालु है। वह खुशियाँ देने वाला, अन्नदाता, मुक्तिदाता और रहमदिल है।

वह शरणागत की लाज रखने वाला, क्षमा करने वाला और मुसीबत में बाँह पकड़ने वाला है। वह गलतियों को माफ करने वाला, असहायों को सहारा देने वाला है। वह अच्छाई देने वाला, शाहंशाह और रास्ता दिखाने वाला है। वह रंग-रूप से रहित और बेमिसाल है।

वह संसार से निर्लिप्त, साक्षात्स्वरूप और शक्तिशाली है। गरीब निर्धन को भी स्वर्ग का आनन्द देने वाला, बड़प्पन देने वाला वह कण-कण में विद्यमान है।

इस सृष्टि की रचना क्यों?

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि जब ईश्वर स्वयं में पूर्ण है तो उसने यह सब सृष्टि की रचना क्यों की?

यह प्रश्न हमारे ही विश्वासों को प्रकट करता है।

1. ईश्वर की सत्ता
2. ईश्वर की पूर्णता
3. सृष्टि रचना के कारण
4. उस कारण की जानकारी।

इसमें हर एक पहलु पर सावधानी से विश्लेषण करने की आवश्यकता है, जिससे कि निश्चय पर पहुँचा जा सके।

ईश्वर की समग्रता सारे विश्व में समाई है, जिसका हम अनुभव करें तो हमारे जीवन में ज्योति चमकने लगेगी।

जैसे प्रकाशों का केन्द्र सूर्य है, उसी प्रकार इस जगत् का केन्द्र स्वयं ईश्वर ही है।

*योगविद्या, दिसम्बर, 1972*



मानव जीवन का लक्ष्य आत्मज्ञान प्राप्त करना है। मनुष्य का जन्म इसीलिये होता है, पर मोह और अविद्या के कारण मनुष्य अपने लक्ष्य को भूल कर अलग जा पड़ता है, किन्तु नित्य सत्संग, योगियों, संन्यासियों एवं महात्माओं का सहवास, जप, स्वाध्याय, तीर्थाटन, श्रद्धा आर्द्र भक्ति से मनुष्य की राजसिक प्रकृति बदल जाती है, वह अपने लक्ष्य को भूलता नहीं, तथा कालान्तर में ईश्वरानुभव करने में समर्थ होता है। ईश्वरानुभूति के लिये कोई दूसरी सुगम रीति नहीं है।

मेरे प्रभु! मेरे भावों को, मेरी विचारधारा को बदलकर अपने पाद पद्मों में अनुरक्त होने के लिये प्रेरित करो, इसको अपने में ही लगाओ। मेरे भीतर अपने प्रति अनन्य भक्ति उत्पन्न कर दो। मेरी यही कामना है, यही अभिलाषा है। तुम तो मेरे हृदयगत भावों से परिचित हो।

मुझे शुद्ध बुद्धि, सद्ज्ञान, विवेक तथा भक्ति दो, सदाचारी जीवन बिताने की क्षमता दो, तथा चंचल मन को अपने पाद पद्मों में अनुरक्त कर दो। मेरी विद्या-बुद्धि, धन-वैभव, सम्पत्ति, सब हर लो, मेरी शक्ति व मेरे पुत्र के प्रति भी वैराग्य उत्पन्न कर दो, मुझे अपने प्रकाश युक्त श्री चरणों में लगा दो। मेरे मन में सुख की भावना न उपजने दो, मुझे विद्वान् न बनाओ, बड़ापन आने से भटक कर तुम्हारे चरण-कमलों से दूर जा पड़ूँगा। प्रभो! मैं तुम्हारी करुणा को समझना नहीं, अनुभव करना चाहता हूँ। आध्यात्मिक पथानुसरण करने में मेरी सहायता करो।

जीवन को उच्च बनाने का उद्योग करना चाहिये। हाथों से कर्म करे, मन से भगवान का चिंतन करे, मनुष्य के भाव ही सब कुछ हैं। ईश्वर मन्दिरों में ही नहीं रहते, ईश्वर-साक्षात्कार हर जगह, हर पल और हर परिस्थिति में हो

सकता है। हमारा घर, हमारा कार्यालय ही भगवान का मन्दिर है, यज्ञशाला है, जहाँ हम अपनी निःस्वार्थ सेवा कर सकते हैं। हमें सिर्फ दृष्टि एवं मन की प्रवृत्ति बदलने की आवश्कता है। कर्म ही योग और यज्ञ है।

हमारे जीवन में गुरु होना भी बहुत जरूरी है, आध्यात्मिक पथ पर चलने में केवल गुरु ही सहायता कर सकते हैं।

जन्म और मृत्यु जीवन के दो किनारे हैं। इन किनारों के बीच जो है वह हमारा जीवन है। यदि हम बीच में ही रहना चाहें, तो यह एकांगी जन्म व मरण के साथ मिलकर ही पूर्ण होता है।

हमारी अपनी कोई निजी सत्ता तो है नहीं, जो कुछ है वह परमात्मा ही हैं। अगर परमात्मा की शक्ति को उसमें से निकाल दें तो मनुष्य कहीं का नहीं रह जायेगा। फिर भी हम प्रभु के महत्त्व को न समझ, अहंकार में भूले रहते हैं। इसी से दुःखी रहते हैं। जब हम जन्म, जीवन और मृत्यु को एक मान लेते हैं, तो निश्चिंत हो जाते हैं। मृत्यु ही जीवन का सत्य है, मृत्यु से अलग जीवन की आकांक्षा ही अज्ञान है।

मानव की मौत, मौत नहीं है। मौत से डरना भी ठीक नहीं है। मरने तक जो हो रहा है, वह तो एक रिहर्सल है। वास्तविक जीवन तो मरने के बाद ही शुरू होता है। जो इसे समझकर सचेत रहता है वही पार होता है, बाकी मौत के साथ ही फिर मौत के चपेट में आने के लिये जन्म लेते हैं।

जन्म ही मृत्यु है, मृत्यु ही जन्म है। इन्सान इस सत्य को समझ ले, और असली मौत की तैयारी करे, तो आखिरी दम के टूटने के बाद भी नहीं मरता है।

*योगविद्या, फरवरी, 1973*



मनुष्य के अन्दर जो प्राणी है, वह मनुष्य का व्यक्तित्व है, भगवान की आत्मा है। वह हमेशा तड़फड़ाते रहता है कि आप उसकी बात सुनें, और उसके मुताबिक काम करें। पर हम न तो उसकी ओर देखते हैं न ही उसकी बात सुनते हैं। भोग और विलास के कारण हम उसकी बात सुन नहीं पाते, न सुनना ही चाहते हैं।

हम सुन नहीं पाते, इसलिए महात्मा और सन्त हमें उसकी याद दिलाते हैं। वे हमें पुरुषार्थ करना सिखाते हैं। मनुष्य जन्म लेकर हमने पुरुषार्थ नहीं किया, तो हमने व्यर्थ जन्म लिया। अपने आत्म विकास के लिये हम जो पुरुषार्थ करते हैं वही योग साधना है।

साधना का एक ही लक्ष्य है कि हम मनुष्य बनें, और केवल मनुष्य ही नहीं, दिव्य मनुष्य बनें। यही मनुष्य का कर्म और कर्त्तव्य है कि वह विकास करते हुये दिव्य मनुष्य बन जावे। उस अति मानवता को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का लक्ष्य है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये ही हम योग साधना करते हैं।

हमेशा चिन्ता करना, परेशान रहना तो हमें निम्न योनियों में ले जावेगा। हमें दु:ख, चिन्ता, परेशानी की परवाह नहीं। हम ईश्वर का जप-ध्यान व चिन्तन करते हैं। इससे हमें ईश्वर की प्राप्ति होगी, सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य एवं सामीप्य की प्राप्ति होगी।

हमें अपने व्यवहार, विचार, व्यवहार व कर्म के प्रति बहुत सजग रहना चाहिये। अगर हम जीवन में हार मान लें तो हारे हैं, अगर हमें अपनी विजय पर विश्वास हो तो हम जीते हैं। जिस व्यक्ति को मृत्यु का भय रहता हो वह जीते जी मृतक के समान है और जिसे मृत्यु-शैय्या पर भी मृत्यु का भय नहीं है, वह मर कर भी अमर है।

हमें भीष्म पितामह की तरह दृढ़-प्रतिज्ञ होना चाहिये। हालांकि हमारे देश की समस्यायें बढ़ती जा रही हैं, अनुशासन-हीनता, गरीबी, रोग, पाप, दुराचारिता फैलती जा रही है। कारण यह हो सकता है कि हम इन्हीं बातों की चर्चा करते हैं, सोचते रहते हैं, इसीलिये हम वैसे ही होते जा रहे हैं। हम मशीन नहीं हैं, हमारे अन्दर सूक्ष्म तत्त्व भी है। हमारे अन्दर मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार भी है। उनको जानते हुए, हमारे अन्दर जो सूक्ष्म-कोश हैं, उन्हें जानने व विकसित करने का प्रयत्न करें तो हम सच्चे अर्थ में मानव बन सकते हैं।

योग में इसके लिये एक नहीं, अनेकों उपाय हैं। हमें अपने स्वरूप को प्राप्त करने के लिये जो कुछ करना है उसे योग-साधना कहते हैं।

जो आत्म-साक्षात्कार करना चाहते हैं या मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, या जीवन-मरण से छुटकारा चाहते हैं, या जीवन में सफलता चाहते है, उन्हें योग-साधना करनी चाहिये।

यदि देखा जाय तो प्राप्ति और समाप्ति दो नहीं हैं। जो वस्तु प्राप्त होगी, वह समाप्त भी होगी। संसार का यही नियम है, पहले प्राप्ति फिर समाप्ति।

प्रभु ने हमें सोने के खान और चन्दन के जंगल दे दिये हैं पर हम लकड़ी और पत्थर के लिये चिंतित रहते हैं। दुःख का कारण मोह और पाप है। और पाप का कारण अज्ञान है।

*योगविद्या, मार्च, 1973*



*स्वामी सत्यव्रतानन्द जी की डायरी से संग्रहित 'सत्य सुमन' के साथ ही गुरुदेव परमहंस सत्यानन्द सरस्वती द्वारा लिखे गये पत्र का कुछ अंश भी दे रही हूँ। निम्न पक्तियों में होलिका-उत्सव भक्त-भगवान, गुरु-शिष्य के मध्य सजीव हो उठा है।*

*परमहंस गुरु सत्यानन्द जी की अमर वाणी, स्वामी सत्याव्रतानन्द जी की झोली में संग्रहित मुट्ठी भर रंग गुलाल आत्मस्वरूप पाठकों, आप सबके लिये है।*

*– माँ धर्मशक्ति*

माला गुलाल मिले, स्वीकार किया। हमारी होली अभी आई नहीं, जिस दिन साधना पूरी होगी, उसी दिन उसका पक्का रंग हम पर लगेगा। साधना कैम्प और शिविर हमारी होली का त्योहार है। सूरत की झोली में सुमिरन की अबीर लेकर 'सत्यव्रत-धर्मशक्ति' को श्याम के रंग में रंगेंगे। रंग लगा तो है, पर अभी और बाकी है। भक्ति के रंग में बिल्कुल तर, साधना के रंग में सराबोर, स्मरण के 'भांग' के नशे में मस्त, उनके सुमिरन में धुत। हमारी होली आने वाली है। वही होली जो शरीर पर खेली जाती है, मन पर खेलेंगे। इधर कपड़े गीले होते हैं, उधर पहनने वाला गीला होगा, इधर हम-तुम रंगते हैं, उधर एक ही अपने को रंगेगा। शरीर रंगने वाला होली अब तक खेलते आये हो, अब मन को रंग कर देखो, कैसा आनन्द मिलता है।

*– सत्यम् के आशीष*

पूज्य स्वामीजी कहते हैं—मन्दिर के दरवाजे पर सिर झुकाने से प्रभु के चरण पकड़ में नहीं आयेंगे। प्रभु के चरण तो जहाँ दीन, हीन और दरिद्र रहते हैं, वहाँ स्थित हैं। हम अपना अहंकार लिये बैठे रहते हैं, इसलिये हमें वह गली अटपटी लगती है, पर हमारे प्रभु दीन-दुःखियों के वेश में उनका संगी बन डोलते रहते हैं।

संसार त्याग का मार्ग सच्चा नहीं है। जन पथ से नाता तोड़ना तो जीवन से पलायन है। *'न दैन्यं, न पलायनम्'* दुनिया से भागो मत, सामना करो और आगे बढ़ो। इन्द्रियों का दमन करने की आवश्यकता नहीं, इनके द्वारा ही तो प्रभु का आशीर्वाद, शब्द-रस-गंध बनकर आ रहा है। इस आनन्द को ज्योति में प्रज्वलित करो, और वासना के फूलों को स्नेह के फलों में परिणत कर दो।

दुनिया की इस यात्रा पथ पर चलना तो अनिवार्य है। हाँ, हमें ऐसा करना चाहिये कि पथ आनन्दमय हो उठे। साथ चलने वाले राही सुख-दुःख मिलाते चलें, यही प्रभु-मिलन है। वह प्रभु रहस्यमय वेशों में हमारी सहायता के लिये दौड़ रहा है, उसे देव समझकर दूर मत रहो, मित्र समझ कर गले लगा लो। दीन-हीन बन्धुओं की उपेक्षा मत करो। यदि हम अपनी सम्पदा उनमें वितरित न करेंगे तो प्रभु हमें कैसे अपनायेंगे। लोगों के सुख-दुःख में सम्मिलित नहीं होंगे तो प्रभु के पास कैसे पहुँचेंगे। प्राण देने से डरोगे तो जीवन की गहराई में कैसे पहुँचोगे।

गहरे उतरने का अर्थ है कि कर्म में डूबो, इतने डूबो कि कार्य और लगन सेवा में भेद ही न रह जावे। इसके लिये हृदय में अनुभूति जगानी होगी, वह चेतना जो जन-जन और कण-कण में खेल रही है, वही तुम्हारे अन्तर में जाग रही है। आत्मा के इस अभेद में ही आन्दानुभव है।

ईश्वर की त्रिगुणात्मिका माया से निर्मित यह शरीर ही संसार-प्राप्ति का कारण है। यही मनुष्य के आवागमन का कारण है, आत्मज्ञान जन्म-मृत्यु के इस प्रवाह को नष्ट कर डालता है। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी आत्मा में ही परमात्मा का साक्षात्कार करे, इस दृश्य जगत् तथा स्थूल शरीर में सत्यत्व की भ्रान्त धारणा का शनैः शनैः परित्याग करे। उसे यह भी पूर्णतः अनुभव करना चाहिये कि आत्मा शरीर से भिन्न तथा उससे अतीत है।

वेदों में वर्णित स्वर्ग सुख भी क्षण भंगुर ही है। वहाँ भी विशुद्ध सुख नहीं है। स्वर्ग में भी ईर्ष्या, प्रतिद्वन्द्व, विनाश, क्षय, दोष-दर्शन, विषमता और

इनके परिणामस्वरूप अशान्ति पाये जाते हैं। भोग भी नाशवान् है। कृषि की भांति स्वर्गिक भोग की कामना की पूर्ति में बहुत-सी बाधायें हैं। यह उसकी भांति ही निष्फल है। अत: स्वर्ग भी श्रेय नहीं है।

'मैं कौन हूँ' की जिज्ञासा ही मनुष्य को उसके लक्ष्य तक पहुँचा सकती है। रमण महर्षि ने भी 'मैं कौन हूँ' के प्रश्न पर जोर दिया था। जब मनुष्य 'मैं कौन हूँ' का प्रश्न करता है फिर प्रश्न खड़ा होता है कि क्या मैं देह-मन-बुद्धि-इन्द्रिय हूँ? उस समय एक-एक कर पंचकोषों के आवरण उतरने शुरू हो जाते हैं।

आत्मा अपना निजी स्वरूप है, यह कहीं से लाया या डाला नहीं जाता। यह तो स्वयं-सिद्ध एवं स्वयं-प्रकाश स्वरूप है जिसकी सिद्धि में और किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं होती। केवल अधिकारी बनना पड़ता है।

*योगविद्या, अप्रैल, 1973*



स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—सत्य से महान् कोई धर्म नहीं। सत्य से श्रेष्ठ कोई सद्गुरु नहीं। सत्य के समान कोई अक्षय धन भण्डार नहीं। सत्य भगवान है और भगवान ही सत्य है।

सत्य एक है किन्तु ऋषि उसका वर्णन अनेक रूपों से करते हैं— *'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'* सत्य और अहिंसा युगल मूर्ति हैं। जहाँ सत्य का स्थान है वहाँ अहिंसा का निवास है और जहाँ अहिंसा का सम्मान है वहाँ सत्य का सत्कार है। सत्य और अहिंसा दोनों परब्रह्म के स्वरूप हैं।

धर्म और तपस्या, योग और त्याग, जीवन का परम पवित्र अवलम्बन केवल सत्य ही है। सत्य वस्तुत: ब्रह्म है। सत्य को शीष झुकाकर बार-बार सम्मान करो।

सत्य एक है, ब्रह्म एक है और परम पवित्र सत्य तुम्हारा अस्तित्व है। इस सत्य को समझो, सदाचारी बनो। सत्य आराध्य देव है, सत्य प्रणम्य देव है, सत्य का साक्षात्कार कर निर्मुक्त बनो।

भयंकर से भयंकर संकट के समय भी, जीवन के आपत्ति काल में भी, जो सत्य का पालन कर जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करते हैं, उन

वीरों का जीवन हम सभी के लिये अनुकरणीय है। क्षमा, दया, उदारता, सहनशीलता, धैर्य, समत्व, इन्द्रिय-निग्रह, त्याग, ध्यान, एकाग्रता, अहिंसा और न्याय–ये सभी सत्य के विभिन्न स्वरूप हैं।

सत्य की भाषा है मौन। भगवान की सूक्ष्मातिसूक्ष्म ध्वनि है सत्य। निर्मल हृदय आनन्दप्रद है, उसमें कोई दु:ख नहीं।

सत्य की सत्ता तीनों कालों में रहती है। इस सत्य से ही तो जगत् की उत्पत्ति हुई है, और इस सत्य में ही जगत् विलीन होगा। हमारे जीवन का लक्ष्य भी तो सत्य का साक्षात्कार करना है। सत्य सन्ताप से विमुक्त कर सुख प्रदान करता है। सत्य-व्यवहार में परायण रहना प्रारम्भ में मुश्किल है, किन्तु प्रबल संकल्प से सत्य पथ में आने वाले विघ्नों से घबराये बिना सत्य-साक्षात्कार में ही संलग्न रहने से साधक को निश्चित ही विजय प्राप्त होती है।

प्रकृति के तमाम तत्त्व अपने-अपने कर्त्तव्य का सत्य-निष्ठा से परिपालन करते हैं। फिर मनुष्य प्रकृति के इस सत्य संविधान का उपहास और अनादर कर जीवन पर कैसे विजय पा सकता है? *'सत्यमेव जयते नानृतम्'* इसको कभी भी मत भूलो।

सत्य में अहिंसा समाविष्ट होनी चाहिये। वह सत्य नहीं जिससे किसी का अहित होता है। सत्य बोलो, किन्तु जो हितकर और प्रिय हो। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का ज्वलन्त उदाहरण सदा अपने समक्ष रखो।

किस काम का है वह अति सुन्दर फूल जो जंगल में खिलता है! वह शाम को मुरझा जाता है और उसकी पत्ती-पत्ती को हवा मिट्टी में मिला देती है। धन्य है जीवन उस फूल का जिसे माली तोड़ता है... उसके दिल को चीरकर उसे माला में पिरोता है और वह माला किसी देवता के गले में पड़ती है!

किस काम का वह दीपक जिसमें तेल भी है और बाती भी पर जल नहीं रहा है। धन्य है वह दीपक जो थोड़ा तेल होते हुये भी तिल-तिल जलता है और अँधेरे को चीर कर संसार को प्रकाशित करता है!

धन्य है वह धातु जिसको तपाकर और कूटकर तार बनाये जाते हैं, जो किसी सितार में लगाये जाते हैं और फिर उन तारों पर बार-बार चोट लगा कर मधुर संगीत पैदा किया जाता है।

*योगविद्या, जून, 1973*



योग का अर्थ केवल ईश्वर की प्राप्ति नहीं, बल्कि अभ्यान्तर तथा बाह्य जीवन का ऐसा परिपूर्ण उत्सर्ग और परिवर्तन है कि यह योग मार्ग अन्य मार्गों के अपेक्षा बहुत विशाल और दुर्गम है। ऐसा मनुष्य इस पर पैर न रखे जिसको यह निश्चय न हो कि हमारे अन्तरात्मा की यह पुकार है और अन्त तक चलने की हमारी तैयारी है।

पहले के योगों में उस आत्मा के अनुभव की खोज थी जो आत्मा सदा ही मुक्त है और परमात्मा से अविभक्त है। उस आत्मज्ञान और आत्मानुभूति में अपनी मानव प्रकृति बाधक न हो। इसे ध्यान में रखकर उतने ही अंश में प्रकृति-स्वभाव बदलने का यत्न किया जाता था। कुछ थोड़े से ही लोग, और वे भी प्राय: 'सिद्धि' प्राप्त करने के लिये, शरीर तक को बदलने का यत्न करते थे।

योगियों ने योग बल से मन स्थिर करके देह के भीतर कहाँ पर क्या है, यह सब जानकर, मानसिक अवस्थाओं का पूर्ण रूप से विचार कर यन्त्र, तन्त्र, और मन्त्रों के रहस्य का आविष्कार किया है। उनके मतानुसार हर एक चक्र में, हर एक स्नायविक केन्द्र में एक-एक प्रकार की अलौकिक शक्ति निहित है। उन निद्रिता शक्तियों को प्राणवायु और ध्यान की सहायता से जागृत करके साधक दूरदर्शन, दूरश्रवण, परचित्त विज्ञान, परकाया प्रवेश, आकाशारोहण, योगबल से देहत्याग, आदि अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कर सकता है।

योगी सर्प, मेंढक, आदि जन्तुओं से आसन, मुद्रा, प्राणायाम, आदि योगांगों को सीखकर अपने स्वास्थ्य ओर आयु की वृद्धि करने में समर्थ हुए थे। प्राचीन ऋषियों की योगबल से रोगियों के रोग दूर करने की बात प्रसिद्ध है। आजकल भी देखा जाता है कि योगी पुरुष देह के विभिन्न अंगों में चित्त स्थिर करके और प्राण वायु का संचार करके, कैसे-कैसे अलौकिक कार्य सम्पन्न करते हैं। मन्त्र, औषधि और समाधि जनित सिद्धि देखकर वर्तमान समय के वैज्ञानिक भी विस्मित हो जाते हैं। इन सब विद्याओं को हम लोग प्राचीन योगियों की मारण, उच्चाटन और वशीकरण विद्याओं के अन्तर्गत ही समझते हैं।

संसार में जितना कुछ सार तत्त्व का आविष्कार हुआ है उसका अधिकांश तो योग बल से ही हुआ है। समस्त वैज्ञानिक और दार्शनिक आविष्कार योग के एकाग्रता साधन के ही फल हैं। प्राचीन काल में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का अत्यन्त सुन्दर सामंजस्य करने के कारण जनक जैसे

राजर्षि और अन्य ऋषि-मुनि विशेष रूप से प्रसिद्ध हो गये हैं। श्री शिव को योग साधन के प्रवर्तक, योगेश्वर, और श्री कृष्ण को योगेश्वरेश्वर के रूप में जाना जाता है।

जो लोग संसार में अनासक्त और निर्लिप्त रहकर फलाकांक्षा रहित होकर संसार के सब कर्म सम्पादित कर सकते हैं, वे ही योगी हैं। जो लोग संसार में कर्म करते हुए संसार की चोटों से घायल हो जाते हैं, वे घोर संसारी हैं, और जो संसार को दु:ख, कष्ट या बन्धन का कारण समझ कर संसार से बहुत दूर रहते हैं और दूसरों के कर्मफल के ऊपर निर्भर करते हैं, वे साधारण भिक्षुक या संन्यासी श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

हमारे स्वार्थ और भाव के पतन के कारण सभी बातों में स्वाभाविक ही कुछ-न-कुछ विकृति आ गई है। वर्तमान समय में उचित संशोधन की आवश्यकता है। योगसाधन प्रणाली के अन्दर ही अच्छे से अच्छे बहुत-से तत्त्व निहित हैं। योग की सहायता से जब स्वास्थ्य प्राप्ति, एकाग्रता, शान्ति, आनन्द, उन्नति, भगवद्दर्शन, भगवत्-प्राप्ति, जीव का कल्याण साधन सहज-सुन्दर और स्वाभाविक रूप से होने की सम्भावना है, तब इस योग साधन प्रणाली का संशोधन करने, इसकी उन्नति का तरीका समझाने तथा सर्व साधारण के सामने योग का उच्च आदर्श रखने की विशेष आवश्यकता है। सर्वसाधारण को समझाना होगा कि योग का वास्तविक अर्थ क्या है, उसकी साधन प्रणाली क्या है, किस प्रकार सांसारिक जीवों को सुन्दर स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति तथा आनन्द प्राप्त कराने में योग का उपयोग किया जा सकता है। योग के द्वारा ही कर्मयोगी कर्म के रहस्य को समझ कर भगवत् प्राप्ति के निमित्त जीवों का कल्याण कर सकते हैं।

*योगविद्या, जुलाई, 1973*



'कर्म की निपुणता योग है', इस भाव से 'योग' शब्द किस प्रकार से देश और राज्य के पतन के साथ-साथ नीचे गिर गया है और कितने विकृत रूप में इसका प्रयोग होने लगा है, यह भी विचारणीय है। आज कल इन्द्रजालिक कौशल (Magic) आदि भी योग का अंग समझा जाता है। मारण, उच्चाटन,

वशीकरण, आदि की ओर ही आज कल के योगियों का विशेष ध्यान रहता है। किसी तरह के चमत्कार दिखा देने वाले को ही आजकल योगी मानते हैं, और उनकी भक्ति करके धोखा खाते हैं। ताबीज या और कोई क्रिया द्वारा लोगों के कर्म फल का खण्डन करने की बात कहने वाले भी योगी कहे जाते हैं। वर्तमान में सभी बातों में विकृति आ गई है, और उचित संशोधन की आवश्यकता है। योग-प्रणाली के अन्दर बहुत-से उपयोगी तत्त्व निहित हैं, जिनकी सहायता से हम स्वास्थ्य प्राप्ति, आनन्द प्राप्ति, शान्ति और भगवत्-कृपा प्राप्त कर सकते हैं। आवश्यकता है योग को सर्व साधारण को समझाने की। सबको समझना होगा कि योग क्या है, उसके रूप कितने हैं, और किस तरह संसार के हित साधन में योग का उपयोग किया जा सकता है। कर्मयोगी किस प्रकार इसके रहस्य को समझ कर निष्काम भाव से सबके कल्याण हेतु योग का प्रयोग करते हैं। ज्ञान योगी मन को शुद्ध व शांत करके आत्मभाव में स्थित होकर समाधि योग में तन्मय रहते हैं। भक्तियोगी प्रेम के साधक होते है, उनके भगवान समस्त जड़-चेतन जगत् में हैं। जगत् के सम्पूर्ण जीव प्रभु की मूर्ति हैं, मन्दिर हैं।

सभी जानते हैं, प्रत्येक शक्ति के दो रूप होते हैं—गुप्त और प्रकट। जब शक्ति गुप्त रहती है, तब उसका ज्ञान नहीं होता, वह अनाम रहती है। पर जब वही शक्ति क्रियावान् हो जाती है तो उसका प्रकाश चारों ओर फैल जाता है। सूर्य किरणों द्वारा सौर-शक्ति वायु मण्डल में विकीर्ण होकर पृथ्वी मण्डल में उतरती है, पर हमारी श्रवणेन्द्रिय इस सूक्ष्म शब्द को ग्रहण करने में असमर्थ है। एक श्रवणेन्द्रिय ही क्या, हमारी सभी इन्द्रियों की गति सीमाबद्ध है। अगर मनुष्य साधना करके अपनी सूक्ष्म और चेतन शक्ति को जागृत कर सके, तो उसको अवश्य ही सूक्ष्म और चेतन शब्दों का अनुभव प्राप्त होगा।

स्वामी जी कहते हैं, प्रत्येक साधक को इन दिव्य शक्तियों को जगाने का साधन करना चाहिये। जब किसी साधक को वे शब्द सुनाई देने लगते हैं तो उसके अन्तर में महान् परिवर्तन होने लगता है। यह सृष्टि-नियम है कि प्रत्येक शब्द अपने उद्गम-स्थान का या भण्डार का प्रभाव लिये रहता है। और यह सब योग विद्या का ही चमत्कार है। योग हमारे देश की अमूल्य सम्पत्ति है, और जितने भी शास्त्र हैं उनमें योगाभ्यास का ही महत्त्व है। एकाग्रता, समाधि और योग के एक ही प्रतिपादक हैं। संसार का कोई भी व्यावहारिक या पारमार्थिक कार्य ऐसा नहीं है, जो बिना चित्त की एकाग्रता

के सम्पन्न हो सके। हमारे वैज्ञानिकों या आविष्कारकों ने जो भी महान् कार्य किये व कर रहे हैं, ये सब कार्य उन महानुभावों के एकाग्रता योग का ही दिव्य चमत्कार है। सब धर्मों का और सब कर्मों का साधन योग ही है।

आत्म-साक्षात्कार करना सच्चा धर्म है, यह हमें भगवान में जीवन बिताना और अमृतत्व प्राप्त करना सिखाता है। यह अज्ञान का आवरण हटाता है, और हमें आत्मा की एकता का दिव्य दर्शन करने योग्य बनाता है। धर्म क्रियात्मक है।

*योगविद्या, अगस्त 1973*



एक समय था जब गुरु वास्तव में गुरु थे। गौरवशाली, ब्रह्मज्ञानी तथा समाज के संचालक थे। वे अधिकारहीन सर्वाधिकारी होकर स्वराज्य में विचरण करते, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उद्‌गम माने जाते थे। गुरुकुलों का वातावरण सात्त्विक होता। वे मानवता और प्रेम के केन्द्र होते, जिससे प्रभावित होकर हिंसक जीव-जन्तु भी हिंसात्मक वृत्ति को त्यागकर प्रेम से विचरण करते।

गुरुदेव की सच्ची अहिंसा की प्रतिष्ठा का उल्लेख दर्शनकार पतंजलि महर्षि ने किया है—*अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः।* गुरु के इसी गरिमा के कारण गुरु को इन शब्दों में नमस्कार किया जाता है—

*गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।*
*गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥*
*अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।*
*चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥*

*शिष्यादिच्छेत् पराजयम्*—जीवन में कोई पराजय नहीं चाहता; गुरु ही एक ऐसा व्यक्ति है, जो अपने ही शिष्य से पराजय चाहता है। शिष्य की उन्नति और वृद्धि देखकर गुरु फूला नहीं समाता। अपने शिष्य के व्यक्तित्व में गुरु अपनी ही आत्मा के दर्शन करता है। वह भेदभाव के धरातल से ऊपर उठकर ज्ञानामृत की वर्षा करता है। गुरु की महिमा अनन्त है। गुरु के अनुग्रह













से मानव सहज ही वह गति प्राप्त कर लेता है, जो कोटि जन्म पाने पर भी जीव के लिए दुर्लभ है।

स्वामी जी कहते हैं कि गुरु कुम्भकार के समान है, जो घड़े के नीचे हाथ देकर उसे थपकी मारता है, उसके दोष दूर करता है। गुरु शिष्य के अन्तर्हृदय में प्रविष्ट होकर उसकी आत्मा को सहारा देकर, बाहर से कठोर वचनों से ताड़ना देकर उसे सर्वथा निर्दोष बना देता है। गुरु के कटु और तीक्ष्ण वाग्बाणों से तिरस्कृत होने पर ही मानव का महत्त्व बढ़ता है।

प्राचीन काल में गुरु धन नहीं, सम्मान चाहते थे। आज तो गुरु-शिष्य परम्परा का इतिहास तीव्र गति से बदल रहा है। पता नहीं यह परिवर्तन कहाँ तक चलेगा। समाज का प्रत्येक वर्ग पहले जैसा नहीं है, फिर भी गुरु अपने प्राचीन आदर्शों को समेटे हैं। अभी भी सन्त-महात्माओं की कमी नहीं। इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं स्वामी शिवानन्द जी तथा उनका विशाल आनन्द कुटीर। उन्होंने अपने त्याग और तपस्या से एक विशाल शिष्य समुदाय का निर्माण किया है। उन्होंने अशिक्षितों की कतार नहीं जमा की; शिक्षित विद्वानों, देश व राष्ट्र के कर्णधारों को ही नये युग का स्तम्भ बनाया।

उनके शिष्य देश-विदेश में अनुकरणीय कार्य कर रहे हैं। स्वामी शिवानन्द जी ने भगवान शिव का आदर्श अपनाया। तीनों लोकों की सम्पदा होने पर भी उनका कुछ नहीं था। उन्होंने अपने शिष्यों को वैसी ही गुरु दीक्षा दी। गुरु आदर्श पर चलने वाले परमहंस सत्यानन्द जी, जो एक नये युग की रचना में व्यस्त हैं, अपने गुरु के एक-एक शब्द, एक-एक आदेश व इच्छा को अपने जीवन में उतारने वाले योगी हैं। सद्‌गुरु के अन्त:स्थल से प्रवाहित अमृत का पान करके, उस अमृत कण को पात्र-अपात्र की परवाह न करके, समभाव से सबको दे रहे हैं। जो अधिकारी है, वह सदुपयोग करता है, जो अनाधिकारी है, वह स्वार्थवश दुरुपयोग करता है। गुरु तो अजस्र धारा है, उसके लिए सब समान है। ऐसे सद्‌गुरु प्राप्त कर शिष्य अगर स्वार्थ में अन्धा होगा, भगवान उसका भी भला ही करें, ऐसी गुरु जी की इच्छा है पर मेरा अनुभव है, कर्म फल तो झेलना ही होगा। हम अमृत पान कर क्यों न अमर बनें, क्यों विष की सरिता का निर्माण करें।

*योगविद्या, नवम्बर, 1973*

हमारे भारत की संस्कृति ही कुछ ऐसी है कि यहाँ के निवासी अपने अर्जित ज्ञान के आधार पर कुछ-न-कुछ उपासना नित्य-नियमित रूप से करते ही हैं। उपासना में शिव-शक्ति, विष्णु-लक्ष्मी, राम-कृष्ण, सूर्य-गणेश, आदि इष्ट प्रसिद्ध हैं। इन सब इष्टों के स्थूल रूपों में यद्यपि भिन्नता का बोध होता है, तथापि तत्त्वत: सब अभिन्न हैं।

गृहस्थाश्रम सब आश्रमों से श्रेष्ठ माना गया है। जैसे प्राणी मात्र वायु का आश्रय लेते हैं, वैसे ही अन्य आश्रमों के लोग गृहस्थ आश्रमियों से आश्रय पाते हैं। अन्य आश्रम वालों के पालन-पोषण का भार गृहस्थों के कन्धों पर है। कमजोर कन्धे इस भार को कैसे सम्भाल सकते हैं? गृहस्थ आश्रम को सफलतापूर्वक चलाने के लिये स्वस्थ शरीर और मजबूत मन की आवश्यकता है। स्वामी जी कहते हैं–सांसारिक व्यवहारों को उत्तम रीति से चलाने के लिये सामर्थ्य और विद्या बल प्राप्त करो। आसन-प्राणायाम द्वारा शरीर को स्वस्थ रखो, अजपा-अन्तर्मौन द्वारा मन को मजबूत बनाओ, तभी गृहस्थ आश्रम का बोझ सम्भालते हुये सरलता से सब की मदद कर सकोगे।

स्त्री-पुरुष, शिव शक्ति हैं। दोनों को ईश्वरीय प्राकृतिक नियमानुसार अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् स्त्री-पुरुष को 'स्वधर्म' में रत रहते हुये, सच्चे मित्र की तरह एक दूसरे का रक्षक बन कर रहना चाहिये। इन्द्रियों के क्षणिक सुख व भोग-विलास के वशीभूत होकर एक-दूसरे के भक्षक न बनें। अपनी आत्मा एवं उसके प्रकाश को सदा बढ़ाते रहें। हमेशा शरीर व मन को स्वस्थ रखने का प्रयत्न करते रहें। अपने तन-मन-धन एवं पुरुषार्थ से प्राणी मात्र की नि:स्वार्थ भाव से सेवा करते हुए, अपने गार्हस्थ्य जीवन को संचालित करें।

स्त्री शक्ति है। शक्ति रूप में ही उसे समझें। सन्तान को प्रभु की अमानत समझकर पालन करें। शास्त्रों ने तो माता को पिता से सहस्त्रगुणा श्रेष्ठ कहा है। गृहस्थ पिता के लिये संन्यासी पुत्र वन्दनीय है, परन्तु उस संन्यासी के लिये भी माता पूज्या है, वन्दनीया है।

किसी कवि ने कहा है–जिस मानव ने कठिन तपस्या की है, उसी का पुत्र, पुत्र कहलाने योग्य होगा। सत्य तो यह है कि पिता के कर्मों का फल पुत्र है। 'पुत्र धर्म' एक अलग तत्त्व है और 'पिता धर्म' पवित्र सत्य है। लेकिन आज के युग में यह सब कैसे सम्भव हो सकता है। स्वामी जी कहते हैं कि बालक ही देश का भावी नागरिक है, राष्ट्र का धन है। वह हृदय और

मस्तिष्क के उत्तम गुणों से सम्पन्न होगा तो संसार में कुछ कर सकेगा। पर यह तभी सम्भव है जब उसे माता-पिता, गुरु-आचार्य का सच्चा स्नेह मिलेगा।

स्वामी जी का जीवन ही प्रकाश से भरा हुआ हमारा पथ-प्रदर्शक है। उनके जीवन दर्शन का कुछ प्रकाश प्राप्त कर कितने ही लोग साधक बनने का अहम् कर, जुगनू जैसे चमक कर बुझ गये। उनका प्रकाश तो सब पर सम भाव से पड़ रहा है, वे गृहस्थ जीवन से पलायन नहीं सिखाते, वे गृहस्थों को ही योगी कहते हैं। यह सत्य भी है। साधारण गृहस्थ हर परिस्थिति में योग करता है। जो मानव अपने पत्नी, बच्चों, रिश्तेदारों और पड़ोसियों से प्रेम नहीं कर सकता, वह संन्यासी कैसे बन सकेगा? जो अपनों से प्रेम नहीं कर सका, वह दुनिया से कैसे प्रेम करेगा? जब तक मानव गृहस्थ आश्रम की कसौटी में कसा नहीं जायेगा, वह सफल संन्यासी कैसे बनेगा? वह संसार का दुःख-दर्द कैसे समझेगा? वह संन्यासी बनकर कैसे दीन-दुखियों के कल्याणार्थ द्रवित हो स्नेह-रस बरसा सकेगा? मेरा तो यही अनुभव है और गुरु-भाई साधु-संन्यासियों से यही अपेक्षा भी है।

*योगविद्या, दिसम्बर, 1973*



स्वामी जी कहते हैं– 'आत्म-विश्वास रखो, सारी शक्ति तुममें है। मैं कुछ नहीं हूँ, यह भाव रखना ठीक नहीं होगा। हमेशा विचार करो कि तुम सब कुछ कर सकते हो, या करने में समर्थ हो। यही विजय की कुंजी है। हार के अन्तिम क्षण तक भी निराश न होना, यही वीरता है। आत्म-विश्वास मानव की दिव्य सम्पत्ति है। इसी के बल पर वे काम हुए जिन्होंने इतिहास, समाज और धर्म का रूप ही बदल दिया। राष्ट्र और परिवार का नेतृत्व करने वालों में आत्म-विश्वास की प्रचुरता होनी चाहिए।'

हमारे ऋषि-मुनि दूरदर्शी थे। अविकसित मस्तिष्क के लोगों के विकास के लिए आवश्यक स्वास्थ्यप्रद नियमों का पालन कराने के लिए उन्होंने बहुत से नियम बनाए। उनका उद्देश्य केवल जनता को अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा देना, तथा बुरे मार्ग पर जाने का निषेध करना था। कुछ काल पीछे यही अन्धविश्वास बन गया, और इसी अन्धविश्वास को हटाने के लिए

आज साधु-संन्यासियों को हिमालय से उतरकर नगर-नगर और डगर-डगर घूमना पड़ रहा है। संन्यास का मुख्य धर्म या गुण है 'अजेय मानसिक शक्ति और ज्ञान बल की प्राप्ति करना', जिसके सामने अन्य वृत्तियाँ झुक जाती हैं। संन्यासी को निर्भीक होना चाहिए। निर्भीक व्यक्ति असत्य के सामने नहीं झुकता। संन्यास का अर्थ ही है कि एक छोटे परिवार को अपना सारा जीवन न देकर, एक विशाल परिवार की सेवा में अपनी साधन शक्ति को लगा देना। ऐसा वही कर सकता है, जो अपने अन्दर और बाहर बराबर निर्द्वन्द्व रहता है। इतिहास बतलाता है कि सच्चे संन्यासियों ने बराबर देश, समाज और धर्म की हिफाजत की और उसे नई दिशा प्रदान की है।

भ्रमण संन्यास का आवश्यक अंग है। निरहंकार, अनासक्त, अनिकेत को भ्रमण करना ही पड़ेगा, तभी वह लोगों के सुख-दुःख से अवगत हो सकेगा, समाज की बिखरी हुई शक्ति को खोजकर नव-निर्माण का कार्य कर सकेगा। गेरू मिट्टी से रंगा हुआ वस्त्र ही संन्यासी का परिचय है। बिना पूछे ही अनेक सम्भावित प्रश्नों का उत्तर देता है गेरू वस्त्र– जहाँ हूँ वही मेरा घर है, अपना घर छोड़ दिया है मैंने। मेरा अपना सुख, सर्व सुख-साधन में निहित है। मैंने अपनी शक्ति, सेवा और ज्ञान, संसार के सब प्राणियों को समर्पित किया है। गेरू वस्त्र पहनकर संन्यासी को आध्यात्मिक परम्परा के अनुशासन में रहना पड़ता है। गेरू देने और न देने की जिम्मेदारी गुरु पर है। गुरु शिष्य को योग्य और समर्थ साधन-सम्पन्न बना कर ही गेरू वस्त्र देते हैं। परिव्राजक के लिए गेरू गुरु-प्रदत्त कवच है। आज यहाँ, कल वहाँ– ऐसा जीवन बिताने वाले संन्यासी के लिए गेरू में रंगा हुआ वस्त्र कृमि-नाशक, गर्म और स्वस्थकर होता है। गेरू रंग का प्रभाव शरीर की नस-नाड़ियों और मन पर भी अच्छा पड़ता है। तत्संबंधी मस्तिष्क के केन्द्रों को सजग करता है। यह रंग त्याग का प्रतीक है। गेरू उन्हें पहनना चाहिए जिनमें त्याग, ज्ञान और परोपकार की भावना हो।

संन्यासी को निर्द्वन्द्व और अनासक्त रहना चाहिए, लोगों को उसके पास आने से शान्ति मिलनी चाहिए। वह समाज का आध्यात्मोपचारक है। आज जो विकृतियाँ समाज और धर्म में आ गई हैं, उन्हें खोजकर, पहचान कर छोड़ना होगा, परन्तु सफाई के नाम पर रत्न-भंडार को भी खाली कर देना समझदारी नहीं है। संन्यासी अपनी ज्ञानमयी शक्तियों से समाज को उत्कृष्ट बनाते हैं, इसीलिए उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति भिक्षा के रूप में समाज

करता है। अनेक घरों का भोजन उसे अनेक परिवारों का आत्मीय सुजन बना देता है। उसकी दृष्टि स्पष्ट और विचार सुलझे होते हैं। वह दूरदर्शी होता है जो पूरे समाज का सिंहावलोकन करते हुए ऐसा मार्ग तैयार करता है, जिस पर समाज चलता है। संन्यासी को समाज के अभिभावक के रूप में होना चाहिए। जैसे पहले के संन्यासी गुरुकुल में शिक्षा का कार्य संभालते थे, राजाओं को परामर्श देकर राजनीति में सहयोग देते थे, समाज-विधान बनाकर न्याय को सहयोग देते थे, विभिन्न योगों के साधन से शारीरिक और मानसिक उत्थान में सहयोग देते थे, मठ-मन्दिर-तीर्थयात्रा के माध्यम से सांस्कृतिक एकता का रूप समझाते थे और सुन्दर-सुदृढ़ मन्दिर और मूर्तियों की स्थापना कर ललित कलाओं के विकास का मार्ग सुझाते थे।

मेरा अनुभव यही है कि संन्यासी ही देश की सच्ची सेवा कर सकता है। उसका कोई स्वार्थ नहीं होता। संन्यासी सुदूर भविष्य को भी देखता है और विश्व की अपार जनसंख्या को भी। वह नि:स्वार्थ भ्रमण करता है। किसी एक समाज या परिवार या राज्य का सदस्य न होकर वह उस अव्यक्त और अनादि सत्ता का प्रतिनिधि है, जो एक दुनिया को मिटाकर दूसरी दुनिया को रच सकता है। उस परम सत्ता ने जगत् कल्याण का कार्य और प्रचार संन्यासियों और विरक्तों को सौंपा है। प्राचीन समय से यह प्रयोग विद्या संन्यासियों और साधुओं के पास सुरक्षित रही है, तथा समय-समय पर उन्होंने योग्य अधिकारी को सिखलाया भी, पर लोगों ने उसका नाजायज फायदा भी उठाया। यह सब देखकर हमारी यह बहुमूल्य संपदा जंगलों में, गुफाओं-कन्दराओं में रहने लगी, और हम विज्ञान तथा पाश्चात्य सभ्यता में खो गये। भगवान की असीम अनुकम्पा से आज हमारी योग-गंगा नगर-नगर और डगर-डगर फिर बहने लगी है। स्वामी जी के कथनानुसार, हमें अपनी आवश्यकतानुसार जल ले लेना चाहिए और गंगा जी को बहने देना चाहिये, भले ही हमारा पात्र बड़ा हो या छोटा। प्रभु की यही क्या कम दया है हमारे ऊपर कि हमारे पास जल रखने को पात्र तो है। जब हमें अपनी आत्म शक्ति का पूर्ण ज्ञान हो जाय तो दु:ख की भावना भी नहीं रहेगी।

*योगविद्या, मई, 1974*



स्वामीजी कहते हैं– मंत्र के सहारे चित्त को एकाग्र किया जाता है। किसी मंत्र के उच्चारण करने या उसकी जिज्ञासा में तल्लीन होने अथवा किसी मूर्ति पर ध्यान करने से आत्मा की परोक्ष अनुभूति का अभ्यास होता है।

अपने ही स्वरूप को अपने से अलग कल्पना करके उस तक पहुँचने की चेष्टा ही भक्ति योग की साधना है। अपने को परमात्मा का एक यंत्र मानकर सारा अहं भाव छोड़ देना चाहिये। मन को सदा कर्म योग में लीन रखना चाहिये और हर काम में आनन्द का अनुभव करना चाहिये। आत्म निर्देश या अन्तर्दर्शन के रूप से प्राप्त ज्ञान को दूसरे लोगों में वितरण करना बड़ा पुनीत और आवश्यक कार्य है।

योगाभ्यास कर्म-संस्कारों का नाशक है। अनेकों जन्मों के भले और बुरे कर्मों के फल संस्कार रूप में मन में विद्यमान रहते हैं और समय आने पर फलित होते हैं। समय पाकर ये पुरानी अनुभूतियाँ ही अनेक वासनाओं को जन्म देती हैं। पुराने संस्कारों व वासनाओं को योगाभ्यास के द्वारा नष्ट किया जा सकता है। कर्मों की जड़ अज्ञान और बहिर्मुखता में है। आत्म ज्ञान से प्रेरित मानव अन्तर्मुखी होने के मार्ग में अनेक कर्म संस्कारों को अपनी प्रतिकूल भावनाओं के द्वारा नष्ट कर सकता है। ज्ञानाग्नि बुरे कर्मों को भस्म कर देती है।

बुरे वृत्तियों की खराबियों की कल्पना करने और उनके प्रति उदासीनता का अभ्यास करने से मन संयमित होता है। मनुष्य जिस प्रकार के निर्देश अपने आप को देगा या जैसा प्रतिदिन सोचते रहेगा, उसका स्वभाव वैसा ही बन जावेगा। प्रतिदिन के अभ्यास से बड़ी-से-बड़ी वृत्तियाँ दूर हो जाती हैं, मानव-मन सुन्दर-से-सुन्दर वस्तुओं के प्रति उदासीन हो जाता है। मन पर नियंत्रण न पाने वाला व्यक्ति परेशान व अशांत रहता है। कभी-कभी मन से जूझता भी है, पर अंत में अपने को मन पर छोड़ देता है। तब होता क्या है, कभी भला काम तो कभी बुरा काम। धीरे-धीरे बल, बुद्धि, विवेक–सभी अलग होने लगते हैं, और जब ठोकर पर ठोकर लगती है, तब आँखें खुलती हैं। कुछ लोग भाग्य को दोष देते हुए जीवन बिता देते हैं, कुछ लोग अनुभव के आधार पर संभल जाते हैं, और कुछ लोग सद्‌गुरु को पाकर, साधना करके जीवन को सफल बना लेते हैं।

पूज्य स्वामीजी कहते हैं– 'शरीर के अन्दर जो चिन्मय आत्मा है, उसे देखने का हमेशा प्रयत्न करो। अगर तुम्हारी दृष्टि शरीर के रंग-रूप में अटक

रही है या शरीर को चपरासी, चौकीदार, नाई, धोबी या पोस्टमैन के रूप में देख रहे हो, तो तुममें और चमार में क्या अन्तर हुआ? तुम मेरे सिपाही हो। इन सब बातों से ऊपर उठो, चमड़े की पहचान न करके, आत्मा के दर्शन करो। सभी जीवों में आत्मा का दर्शन करो, सब में अपने प्रभु का ही दर्शन करो। छोटे बच्चे राम-कृष्ण जैसे ऋषि-मुनि हैं। नारी को मातृशक्ति के रूप में देखो, वह दुर्गा है, लक्ष्मी है, सरस्वती है।'

गृहस्थ आश्रम ही संन्यास आश्रम की पहली सीढ़ी है। सच्चा संन्यासी वही गृहस्थ है जो अपने परिवार, समाज व गरीब दु:खियों के प्रति अपना कर्त्तव्य सजगता से निभाता है।

*योगविद्या, दिसम्बर, 1974*



मानव जीवन ही कर्मयोग की पृष्ठभूमि है। जन्म-जन्म का संस्कार, माता-पिता का संस्कार, अपने पराये का संस्कार, यह सब मिलकर मानव मन को दिशा प्रदान करते हैं। इस संस्कार-शिक्षा के अलावा भी एक विशेष संस्कार होता है – गुरु का सत्संग, सद्गुरु की प्राप्ति, गुरु की शिक्षा-दीक्षा व गुरु की कृपा। आज के युग में भगवान मिल जायेंगे पर सद्गुरु का मिलना दुर्लभ है। गुरु मिल गए तो गुरु का संग करना दुर्लभ है। गुरु का सत्संग मिला तो उसका पालन करना दुर्लभ है।

स्वामी सत्यानन्द जी कहते हैं, 'सद्गृहस्थ ही सच्चा योगी है, गृह संचालन ही योग है। इस जीवन को योगमय बनाने के लिए अपने कर्त्तव्यों का पालन ईमानदारी से करना चाहिए। आसन-प्राणायाम, जप-ध्यान, भोजन व काम प्रभु के निमित्त करना चाहिए।'

स्वामी शिवानन्द जी महाराज मानव, पशु, पक्षी, कीट और पतंग– सभी में प्रभु को देखते थे। प्रभु की असीम सत्ता को सदा नमस्कार करते थे। वे अपने शिष्यों को सिखाते नहीं, दिखाते थे। उनका नमस्कार योग बड़ा विशाल था। वे गरीबों को भोजन तथा बीमारों को औषधि ही नहीं देते थे, वरन् उन्हें प्रभु का रूप समझ कर साष्टांग प्रणाम करते थे। अपने शिष्यों में भी स्वामी जी ने स्वाभाविक विनम्रता भरने का अनवरत प्रयास किया है।

वे अपने शिष्यों को प्रणाम करके उन्हें प्रणाम करना सिखाते थे। वे हमेशा ही विनम्रता से सिर झुकाकर कहते 'ॐ नमो नारायणाय।' वे भौतिक शरीर की वंदना नहीं, उस ईश्वर की वंदना करते थे जो इस शरीर में व्याप्त है। वे महात्माओं, संन्यासियों, गृहस्थों, निम्न जाति के लोगों तथा छोटे बच्चों को भी 'ॐ नमो नारायणाय' कहते हुये नमस्कार करते थे, क्योंकि अवस्था तो शरीर की होती है, शरीर में अन्तर्निहित नारायण की नहीं। वे सब में ईश्वरत्व को देखते थे, सभी को आदर से तामिल में 'नींगल' तथा हिन्दी में 'आप' कहते थे। स्वामी शिवानन्द जी अपने उदाहरण के द्वारा ही अपने शिष्यों को शिक्षा देते थे। अपने शिष्यों की हर कठिनाई का सामना स्वयं करते थे। यही कारण है कि उनके शिष्य अपने क्षेत्र में इतने सफल हुए हैं।

स्वामी शिवानन्द जी बाह्य प्रदर्शन को कभी महत्त्व नहीं देते थे। एक बार उनकी शिव पूजा देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। शिव-रात्रि की रात भक्त लोगों ने विश्वनाथ मंदिर में चार प्रहर की पूजा की थी। मंदिर के बरामदे में स्वामी जी पंचाक्षर कीर्तन कर रहे थे। अन्तिम प्रहर की पूजा के पश्चात् भगवान पर पुष्पांजलि चढ़ाई गई। सभी भक्त शिवलिंग पर बेल पत्र चढ़ाने आ जुटे। कुछ ने लिंग पर बेलपत्र फेंके, कुछ ने अर्द्धनिद्रित अवस्था में किसी तरह से बेल पत्र गिरा दिया। भक्तों ने इस तरह पूजाविधि संपादित की मानो उनके लिये शिवलिंग ईश्वर का प्रतिनिधित्व करती प्रस्तर प्रतिमा ही थी। अन्त में हाथों में बेल पत्र लिये हुये स्वामीजी स्वयं पधारे। उनके मुखमंडल पर अपूर्व आभा फैल रही थी। उन्होंने कुछ पत्रों को नन्दी के चरणों में चढ़ाया, मानो भगवत दर्शन की अनुमति ले रहे हों। जब शिवानन्द जी ने हाथों में बेल पत्र लिये हुये शिवलिंग की ओर देखा, तो मुँह से न मंत्र निकले, न ही प्रार्थना। आँखें लिंगम से बातें कर रही थीं, मानो साक्षात् दर्शन कर रही हों। प्रिय मित्र के मिलने पर जो भाव होते हैं वही भाव उनके भी थे। फिर उन्होंने बड़े स्नेह से भगवान को बेल पत्र अर्पित किये कि कहीं भगवान को चोट न लग जावे। क्षण भर के बाद उन्होंने कुछ बेल-पत्रों को उन सब पर फेंका, जो वहाँ पूजा कर रहे थे। शिव ने शिव की पूजा की। शिव ने सब की पूजा की, शिव ने विराट् पूजा की।

*योगविद्या, मार्च-अप्रैल 1975*



ॐ का जप या गुरु मंत्र का जप एकान्त स्वच्छ स्थान पर करना चाहिये। स्थान या देश का बड़ा प्रभाव पड़ता है। पहाड़ों की गुफा या नदियों का संगम उत्तम स्थान है। स्वामी जी कहते हैं कि कितने ही ऐसे स्थल हैं जहाँ सहस्रों वर्षों से तपस्वी, योगी और साधक साधना और योग करते आ रहे हैं। इन स्थानों में ऐसा वायु-मण्डल और वातावरण बन गया है कि वहाँ शान्तचित्त बैठकर, ॐ का जप या ॐ का ध्यान किया जावे तो ऐसे स्थान निःसन्देह आत्मदर्शन और प्रभु दर्शन में सहायक होंगे। ऐसे स्थानों में साधक तन्मय होकर ॐ पर ध्यान लगाता है, ॐ का ही प्राणों द्वारा मन में जप करता है, अजपा-जप प्राणायाम करता है। तब उसके अन्तःकरण में पवित्रता आते-आते वह पर्दा हट जाता है, जिसने अन्दर के प्रकाश को छिपा रखा है।

परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि नगरों, ग्रामों या घरों में प्रभु का भजन या ध्यान नहीं हो सकता। विशेष स्थानों का वर्णन तो केवल उनके लिए है जो प्रभु भजन में ही अपना जीवन बिताना चाहते हैं या एकान्त में साधना करके आगे बढ़ना चाहते हैं। पर सारी दुनिया तो घर छोड़कर इन स्थानों में नहीं जा सकती। इसलिये सभी को अपने घरों में ही आत्म शान्ति, आत्म दर्शन का प्रयत्न करना चाहिए।

अगर सुविधा हो तो एक कमरा जप-ध्यान व भजन-कीर्तन के लिए अलग रखें। स्वामी जी के शब्दों में गृह ही कर्म क्षेत्र है, गृहस्थ ही योगी है। सुबह उठने से रात को सोने तक कर्म योग करने वाला साधक इतना अवश्य करे, कमरा साफ-सुथरा हो, पवित्र ग्रन्थ रखे हों, इष्ट के एक-दो चित्र हों, धूप-अगरबत्ती से शुद्ध रखे, और प्रतिदिन नियत समय पर जब वहाँ प्रवेश करे तो कल्पना करे कि अब मैं प्रभु के पास जा रहा हूँ, बाहर की दुनिया से थोड़ी देर के लिए मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। सिर्फ प्रभु हैं, मैं हूँ, फिर मैं ही प्रभु हूँ–

*श्याम-श्याम रटत 'राधे' श्याम भई।*
*सखियन से पूछन लागी राधे कहाँ गई॥*

या फिर आप अपनापन भूल कर कहें–

*क्षीरसागरमपहृत्य शक्या स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।*
*मानसे मम नितांत तामसे नंदनंदन कथं न लीयसे॥*

'हे नंद नन्दन! यदि माखन चुरा कर डर के मारे भागना चाहते हो तो मेरे अत्यन्त अज्ञान रूपी अन्धकार पूर्ण हृदय में क्यों नहीं छिप जाते? इस अन्धकार में तुम्हें गोपियाँ तो क्या माता यशोदा भी नहीं पा सकेंगी।' कहिये प्रभो, मेरे हृदय में आ बसेंगे तो मेरा मोहान्धकार दूर हो जायेगा।

*योगविद्या, मई 1975*



पूज्य स्वामीजी कहते हैं–प्रगति चरित्र की सफलता का ही परिणाम है। कृत्रिम प्रगति केवल प्रदर्शन और छल है, वास्तविक प्रगति आत्म-विश्वास की सीढ़ी और महाशक्ति का वरदान है। हमारी प्रगति ही हमारे लक्ष्य की पूर्ति है। हम अपनी प्रगति के माध्यम से ही जीवन में कुछ करने की इच्छा रख सकते हैं। मानव की प्रगति का एकमात्र प्रमाण यही है कि वह अपने सिद्धान्त के लिये अपना सब कुछ स्वाहा कर देने को तत्पर रहे।

प्रगति का पथ वास्तविक सुख का मार्ग है। यदि मनुष्य केवल सुखी ही रहना चाहे तो उसकी यह इच्छा पूर्ण हो सकती है, किन्तु हम दूसरे मनुष्यों की अपेक्षा ज्यादा सुखी होना चाहते हैं। अत: इसी में कठिनाई उत्पन्न हो सकती है, क्योंकि हम दूसरों को वास्तविकता से भी अधिक सुखी समझते हैं। ईर्ष्या और द्वेश प्रगति पथ के बाधक हैं; आत्म निर्भरता, आत्म विश्वास, महत्त्वाकांक्षा, आत्म सन्तोष, और समन्वयवादी भावना सहायक हैं। धन का भोग सुख का वास्तविक लक्ष्य नहीं है, सुखी जीवन का रहस्य प्रगति का सहयोगी है। हरेक मानव जीवन में सुखी होना चाहता है, पर केवल भाग्य के सहारे।

'मैं यह कर सकता हूँ'–यह प्रगति पथिक का मूल मंत्र है। किसी भी कार्य को करने में उत्साह पूर्ण आवेग उसका सहायक है। किसी भी कार्य के सम्पादन में शक्ति से अधिक साहस की आवश्यकता होती है। शक्तिहीन मनुष्य के हृदय में साहस का बीज सफलता का मार्ग है और शक्तिपूर्ण मनुष्य के हृदय में भी हतोत्साह असफलता का परिचायक। कुछ लोग किसी काम करने के पहले ही कहते हैं–यह काम मुझसे हर्गिज नहीं होगा–और वास्तव में उनसे वह काम नहीं हो पाता। जिसने अपना साहस पहले ही खो दिया,

वह कुछ भी प्रगति नहीं कर सकता है। वैसे लोग केवल भाग्य और भगवान को दोष देने के लिये जीवित रहते हैं।

बहुत से नौजवान प्रगति के छोटे अवसरों को गवां देते हैं, क्योंकि बड़े अवसर वे देख ही नहीं पाते। पूज्य स्वामीजी के राजनाँदगाँव आते ही हजारों को बिजली का धक्का लग जाता है, पर उनके जाते ही वे ठंढे पड़ जाते हैं। वे अवसर को पकड़ते नहीं और सफलता से चूक जाते हैं।

यह संसार एक बहुत बड़ा विश्वविद्यालय है। पालने से लेकर मृत्युपर्यन्त अलग-अलग क्लास बने हैं। जो उनमें सफल हो जाता है, वह शुकदेव की तरह और जो असफल हो जाता है वह बूढ़ा होकर भी बच्चा रहता है। जिन्हें प्रगति पथ पर बढ़ना होता है, उनके लिए हर चीज एक सबक है।

जबरदस्त उद्देश्य जिम्मेदारी की शक्ति पैदा करता है। मजबूत उद्देश्य ही प्रगति का द्योतक है। महान् लोग जरूरत के कठोर विद्यालय में बनाये जाते हैं। जिन प्रबल और तगड़े लोगों ने आज तक सभ्यता को ऊपर उठाया वे प्रगति-पथ के पारदर्शक थे। उन्हें किसी ने आगे नहीं ढकेला या ऊपर नहीं चढ़ाया। उन्होंने अपनी उन्नति के मार्ग का एक-एक इंच संघर्ष करके पार किया। कठिनाइयों पर महान् विजय प्राप्त करके वे महामानव बन गए हैं।

*योगविद्या, जून 1975*



आध्यात्मिक विकास के लिये एक आध्यात्मिक सद्गुरु की कितनी बड़ी आवश्यकता है, यह प्राचीन ग्रंथों में स्पष्ट है। प्राचीनकाल में ऐसे सद्गुरु का कितना ऊँचा स्थान होता था, यह हिन्दू धर्म शास्त्रों में बताया गया है। आध्यात्मिक गुरु के आगे बड़े-बड़े चक्रवर्ती महाराजाओं को नतमस्तक होना पड़ता था। सद्गुरु होते भी थे महान् तपोनिष्ठ, अलौकिक त्यागी एवं समदर्शी। इनके परम पुनीत आश्रमों की भी महिमा होती थी। कालिदास जी ने अपने 'रघुवंश' महाकाव्य में वशिष्ठ जी के आश्रम का सुन्दर विवरण दिया है। ऐसे ही आश्रम में जिज्ञासु जाते थे, आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षा के लिये, और ऐसे ही आश्रम में सद्गुरु पात्र-अपात्र की समुचित परीक्षा

कर, उन्हें तत्सम्बन्धी दीक्षा का अधिकारी मानते थे तथा पर्याप्त काल तक अपनी देख-रेख में रखकर, उन्हें अध्यात्म-विद्या में प्रविष्ट करते थे। यद्यपि सर्वप्रथम गुरु मनोवैज्ञानिक ढंग से शिष्य की मानसिक अभिरुचि के आधार पर पाठ्य-विषय का निर्धारण करते थे, आध्यात्मिक शिक्षा अथवा यों कहिये कि चरित्र निर्माण ही सर्वोपरि विषय रखा जाता था। और शिष्य के संस्कारों को जाग्रत किया जाता था। ये गुरु दक्षिणा के लोभ में कान फूंककर शिष्य मंडली तैयार नहीं करते थे।

गुरु के ऊपर देश की आध्यात्मिक उन्नति का कितना बड़ा उत्तरदायित्व था एवं ऐसे वीतराग पारंगत सद्‌गुरु को समाज किस दृष्टि से देखता था, यह हमारे धार्मिक ग्रंथों से पता चलता है। आध्यात्मिक गुरु की अपार शक्ति के सामने सबको नतमस्तक हो जाना पड़ता था। संसार की कोई शक्ति या महाशक्ति इन्हें विचलित नहीं कर पाती थी। इन्हें देवता माना जाता था। उपनिषद का वचन है– *'आचार्य देवो भव।'* एक स्थान पर गुरु के लिये कहा गया है– *'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु: गुरुदेवो महेश्वर:। गुरु: साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नम:।'* अर्थात् गुरु का स्थान स्वयं परब्रह्म के समान है।

भारतीय शिक्षा-दीक्षा का नितान्त उच्चादर्श था। ईश प्राप्ति ही उसका मुख्योद्‌देश्य था, डिग्री हासिल करना अथवा अर्थोपार्जन करना नहीं, यद्यपि श्री भर्तृहरि ने इसे 'यश:करी-अर्थकरी' बताया है। ब्रह्म प्राप्ति के आगे यह आदर्श फीका पड़ जाता है। ज्ञात होता है कि भारतीय सभ्यता-संस्कृति के उत्कर्ष-काल में सद्‌गुरु को जो ऊँचा स्थान प्राप्त था, वह सर्वविदित था। आर्य ग्रंथों में उसकी गौरव गरिमा का उल्लेख पाया जाता है।

जिस देश में सर्वप्रथम विद्यार्थी को गुरु के पाद-पद्ममों में 'अक्षर ज्ञान' के लिये दाखिल किया जाता था, उस देश की आध्यात्मिक महत्ता के बारे में क्या कहा जाय। अक्षर तो श्लेषात्मक शब्द है, जिसका दूसरा अर्थ है, नाश न होनेवाला, अर्थात् ब्रह्म। अर्थ स्पष्ट है कि ब्रह्म-ज्ञान के हेतु शिष्य गुरु के पास भेजा जाता था। ऐसे ही सद्‌गुरु के विषय में एक स्थान पर यूँ कहा गया है–

*अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।*
*तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नम:॥*

समय की बलिहारी है कि आजकल इस सारगर्भित श्लोक का अर्थ ही बदल गया है।

कहने का मतलब है कि एक सद्‌गुरु की अपार महत्ता थी और उनके ऊपर शिष्य के ऐहिक तथा पारलौकिक अभ्युत्थान का भार था। श्री वशिष्ठ जी तथा सन्दीपन महाराज ऐसे ही गुरु थे। एक ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामजी को तैयार किया, तो दूसरे ने योगिराज भगवान श्री कृष्ण जी को तैयार किया। ऐसे सद्‌गुरु की कोई निर्धारित संख्या न थी। श्री दत्तात्रेय भगवान के चौबीस गुरु थे। गुरु की आज्ञा पालन में शिष्य अपने प्राणों की बाजी लगा देता था। अरुणि की कथा सब को ज्ञात ही है। महाराज दिलीप ने गुरु वशिष्ठ के गौ सेवा के आज्ञापालनार्थ सिंह को गाय के बदले में अपना शरीर अर्पण करते हुए कहा था, *'यश: शरीरे भवने दयालु:।'* छत्रपति शिवाजी ने अपने गुरु को राजमहल के सामने भिखारी रूप में पाकर अपना राज्य दान कर दिया था। शताब्दियों से भारत में गुरु महिमा बनी है। राजनैतिक पतन तो हुआ पर इसके अनुपात में उतना नैतिक पतन न हो सका। यह सब महिमा थी गुरुगत विद्या की। यहाँ तक कि यवन-काल में भी भारत में जो धार्मिक जागृति हुई वह तत्कालीन सद्‌गुरुओं की ही कृपा थी। कविकुल चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में लिखा है –

*बन्दौ गुरु पद कंज, कृपासिन्धु नर रूप हरि।*

सद्‌गुरु के उपदेश के आधार पर अमर कवि ने 'रामचरितमानस' जैसे अनमोल ग्रंथ की रचना की। गोस्वामी जी के शब्दों में –

*मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।*

गुरु का अपमान भगवान को भी असह्य होता था। रामचरितमानस में शिव-पूजा-रत उपासक ने मंदिर में आये हुए गुरु को प्रणाम नहीं किया तो भगवान शंकर को सहन नहीं हो सका, श्राप दे दिया। पर गुरु तो शिष्य पर अपार स्नेह रखते हैं, सो कोमल चित्त वाले गुरु ने शिष्य के घोर अपराध के लिये त्रिनेत्रीय महेश्वर को स्तुति द्वारा प्रसन्न कर लिया। कबीर जी ने तो गुरु को गोविन्द से भी बढ़कर बताया है।

*गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागों पांय।*
*बलिहारि गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥*
*सब धरती कागद करूं, लेखनि सब बनराय।*
*सात समुन्द की मसि करूं, गुरु गुण लिखा न जाय॥*
*कबिरा ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।*
*हरि रूठे गुरु ठौर हैं, गुरु रूठे नहीं हरि ठौर॥*
*पंडित पढ़ि गुण पचि मुए, गुरु बिन मिलै न ज्ञान।*
*ज्ञान बिना नहीं मुक्ति है, संत शब्द परमान॥*

यह स्पष्ट है कि गुरु बिना वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, और ज्ञान बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।

*'ऋते ज्ञानान्त मुक्तिः।'* जीवन की वास्तविक सफलता हेतु चाहे स्त्री हो या पुरुष, सब के लिये सद्‌गुरु की आवश्यकता है। यद्यपि ऐसे सद्‌गुरु का आज कल अभाव है, क्योंकि गुरुवाद के प्रचार का भी खूब जोर है। अनेक लोग ब्रह्माडम्बर से सद्‌गुरु बनना चाहते हैं। इस घोर कलिकाल में आध्यात्मिक विभूतियाँ कम ही मिलेंगी। पर चेष्टा बराबर बनी रहे तो सद्‌गुरु की प्राप्ति होगी ही।

*योगविद्या, जुलाई 1975*



स्वामी जी कहते हैं– पृथ्वी पर सैकड़ों विघ्न और दुःख हैं। जब ये विघ्न हैं और प्रत्येक कार्य में रहेंगे तब तो भय रहित होकर, इन विघ्नों की परवाह न करते हुये कर्त्तव्य-पालन में दृढ़ रहना चाहिये। जिस समय उस ब्रह्म की विचित्र लीला पर विचार करने लगते हैं, उस समय ईश्वरीय सृष्टि का अणु से अणु कोई भी पदार्थ हमें अद्‌भुत रहस्य से शून्य प्रतीत नहीं होता। जितना जिसने अन्वेषण किया उतना ही उसे अमूल्य रत्न प्राप्त हुआ।

*जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ।*
*हों बौरी ढूंढ़न गयी, रही किनारे बैठ॥*

अपने जीवन की उत्ताल तरंगों में आत्म विस्मृत होकर भले ही हम अबोध बन जायें, परन्तु वास्तविक तत्त्व तो यह है कि जो कुछ भी हमारे लिए अमूल्य है, वह एक बड़ा रहस्य है जिसको जानने के लिए हमें भगीरथ-परिश्रमी होने की आवश्यकता है।

हम छोटी वस्तुओं को देखकर प्राय: उन्हें तुच्छ समझ कर उनका त्याग कर देते हैं, पर वही तुच्छ पदार्थ हमारा जीवन संचार करते हैं, कर्त्तव्यशील के लिए गुरु तथा उपदेशक का काम करते हैं। जैसे राष्ट्र ध्वज फहराते देखकर समृद्धि-शाली देश की कल्पना करके मानव-मन अनायास उस ओर चला जाता है, उसी प्रकार प्रकृति के दृश्य भी हमें उपदेश देते हैं, परन्तु बिना परिश्रम और ज्ञान के हमें ईश्वर के परम प्रसाद से वंचित ही रहना पड़ता है।

यदि हम चाहें कि विश्व-वाटिका की सुरभि-प्रसून माला से अपने को अलंकृत करें तो दु:खों से भयभीत न होकर उन्हें भी गले में डालें। सफलता उसे ही मिलेगी जो अपने को दीपक की भाँति मिटाकर संसार को दिव्य प्रकाश से भरने की क्षमता रखता हो। फिर तो संसार की कोई शक्ति उसे विचलित तथा उसके अडिग ध्येय को पददलित नहीं कर सकती–'न हि कश्चित् सचेता आत्मनो दु:खाय प्रवर्तते प्रत्युत सर्वे सुखार्थिन एव।'

आज संसार सुख की खोज में भटक रहा है, किन्तु मृग मरीचिका की भांति उससे सुख दूर, और बहुत दूर होता जाता है। सभी चाहते हैं कि जीवन सुखी हो परन्तु बिना परिश्रम के सुख किस प्रकार साध्य हो सकता है। सुख पाने के लिए तो पहले कड़ुवे फलों का आस्वादन करना ही पड़ता है। 'न हि सुखं दु:खै: विना लभ्यते'–सुख बिना दु:ख के नहीं मिलता, भगवान सूर्य के ग्रीष्म ॠतु में खूब तपने के बाद ही तो वर्षा ॠतु सुखद भविष्य का सन्देश लेकर आती है।

अपनी आकांक्षाओं के सिद्धि-मार्ग में आने वाले विघ्नों को धैर्य और दृढ़ता के साथ सहन करके ही अक्षय शान्ति मिल सकेगी। जहाँ फूल है वहाँ काँटा भी होगा। सोना आग में गलकर ही चमकता है।

देवताओं ने अथक परिश्रम से समुद्र मंथन करने के पश्चात् ही सुधा पान किया था। ॠषि-महर्षियों ने उग्र तपश्चर्या के बाद ही शाश्वत-मोक्ष-सुख प्राप्त किया था। महात्मा बुद्ध ने महान कष्ट, उग्र तप और सर्वस्व बलिदान के बाद ही अमरतत्व प्राप्त किया था।

हमारे ऋषि-मुनियों ने तप-साधना में अपने शरीर को गला दिया, लेकिन आज भी उनकी आत्मा अमर है, नाम अमर है, कीर्ति अमर है, और यही है वह सच्चा सुख। आज मानव धन लुटाता है, अपकर्म करता है, सुख की चाह द्रौपदी की चीर जैसे बढ़ती जाती है, इच्छा की पूर्ति करते-करते चन्द्र लोक तक पहुँचते हैं, पर चाह पूर्ण होना तो दूर, ले डूबती है।

इच्छा-तृष्णा, आशा-अभिलाषा तो अनन्त है, कई जन्मों में भी पूरा होना सम्भव नहीं है। हम कितना भी विवेक-बुद्धि से काम लें पर जब तक संत समागम न हो, सद्गुरु न मिले, आत्मा तृप्त नहीं होगी। सच्चा गुरु मिलते ही आत्म दीप जगमगाने लगती है। फिर–

*चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बेपरवाह।*
*जिसको कछु न चाहिए वही शाहंशाह॥*

*योगविद्या, अगस्त-सितम्बर 1975*



वर्तमान समय में बहुत लोग योग के प्राचीन चमत्कारों को सुनकर योग का ज्ञान और साधना करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु योग्य गुरु व योग्य उपदेश न मिलने पर गलत राह चले जाते हैं। कुछ लोग परेशानी में पड़ने के बाद, योग को कठिन व असम्भव समझने लगते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यौगिक क्रिया करने के पहले उसे समझना जरूरी है, और समझ तभी सकेंगे जब समझाने वाले योग्य गुरु मिलेंगे।

पूज्य स्वामीजी कहते हैं कि 'योग' का मतलब जोड़ना होता है। अपने आपको परमात्मा से मिलाना ही 'योग' है। जो आदमी किसी को दुःख नहीं देता, सबके अन्दर एक ही आत्मा को देखता है, अपने को सबके समान समझता है, एवं चींटी से लेकर राजा तक सबके अन्दर ईश्वर का वास समझता हुआ प्राणी मात्र से हार्दिक प्रेम-भाव रखता है, उसके दुःख-क्लेश दूर होते हें ओर जीवन योगमय हो जाता है।

योग दर्शन में महर्षि पातंजलि जी ने योग की इस तरह व्याख्या की है– *'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'* अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही 'योग' है।

उन्होंने आठ प्रकार के साधनों पर ध्यान दिलाया हैं जो इस प्रकार हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। कुछ लोग प्राणायाम के द्वारा हठयोग की साधना करते हैं, क्योंकि इसका सम्बन्ध शरीर को स्वस्थ और सुखी रहने से है। उसी अवस्था में अध्यात्म चिन्तन हो सकता है। 'हठयोग' ही राजयोग की नींव है। जो लोग हठयोग के बिना ही राजयोग की सिद्धि चाहते हैं, उनको योग सिद्धि न होकर 'रोग-सिद्धि' होती है।

*'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'*– जो मनुष्य रोगग्रस्त है, वह क्या योग करेगा? उसका जीवन हमेशा आनन्द एवं ईश्वर भक्ति से वंचित रहेगा। योग-क्रिया प्रारम्भ करने के पहले अपने शरीर के नसों-नाड़ियों को दृढ़ करना होगा। अपने मस्तिष्क को बलिष्ठ बनाकर सारे शरीर पर नियन्त्रण करना होगा। जब हमारे अन्दर पूरी शक्ति होगी, तभी हम गृहस्थ या संन्यास आश्रम का सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकेंगे। श्री रामचरितमानस में शरीर के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णन है–

*छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा॥*

अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन पाँच तत्त्वों से यह मानव शरीर प्रकृति द्वारा निर्मित है। शरीर रचना के सम्बन्ध में एक उर्दू के शायर ने इस प्रकार वर्णन किया है–

*जिस्मे इन्सां चीज क्या है जिससे शैदा है जहां।*
*एक मिट्टी की इमारत और मिट्टी का मकां।*
*खून का गारा है उसमें और ईंटें हड्डियाँ।*
*चंद सांसों पे खड़ा है यह ख्याली आसमां।*
*मौत की पुरजोर आंधी जब उससे टकरायेगी।*
*देखते ही देखते तामीर यह गिर जायेगी।*
*खाक का पुतला बना और खाक की तस्वीर है।*
*खाक में मिल जायेगा और खाक दामन गीर है॥*

संसार की समस्त चीजें नाशवान् हैं, हमारा यह शरीर भी नाशवान् है।

*योगविद्या, अक्टूबर-नवम्बर 1975*



पूज्य स्वामी जी कहते हैं–जीवन भावनाओं में उड़ने का नाम नहीं है; जीवन लोकप्रियता प्राप्त करने का नाम भी नहीं है। जीवन सिद्धान्तों एवं भावों के संग्रह और साधनाओं एवं विधियों के समझौते का नाम है। दुनिया सुख का रास्ता खोजने में विकल है, वह सुख के लिए विकल है, वह शान्ति के लिए छटपटा रही है, पर यह बात भूल गई है कि शान्त होकर ही वह प्राप्त कर सकती है।

भारतीय संस्कृति आत्म-सुधार के सिद्धान्त पर व्यक्ति को लेकर बनी है। इसलिए यदि भारत फिर दुनिया को अपनी आत्मा का दिव्य संदेश देना चाहे तो अपने बच्चों को दिव्य शिक्षा देनी होगी, और यह तभी संभव है जब हम अपनी शक्ति के रूप में गृहिणी को सहयोग दें कि वह आत्म-विसर्जन की प्रतिभा बन, अपने हृदय के अमृत से भविष्य में भावी संतति को योग्य बना सके। हमारे देश में स्नेह मूर्ति, त्यागी और तपस्विनी माताओं की संख्या कम होती जा रही है। जीवन की सुविधाओं पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। आज हम सागर की छाती चीरकर पृथ्वी को नाप रहे हैं। पहाड़ लांघ कर आकाश को छू रहे हैं, चंद्रलोक में अट्टालिका बनाने की कल्पना कर रहे हैं, पर अपने बच्चों की तरफ ध्यान देने के लिए हमारे पास समय नहीं है।

स्वामी शिवानन्द महाराज कहते हैं–इस प्रगतिशील संसार में प्रत्येक पुरुष अपनी उन्नति में संलग्न है। कोई साहित्य की ओर झुका है तो कोई समाज सेवा की ओर। एक धार्मिक क्रांति चाहता है तो दूसरा राजनैतिक। स्वतंत्रता की लहर सभी के हृदय में उमड़ रही है। परन्तु कितने ऐसे हैं जिन्होंने थोड़ी देर रुक कर यह सोचा हो कि उन्नतिशील राष्ट्र के निर्माण में नारी का कितना हाथ है, और भविष्य में बच्चों पर देश व राष्ट्र के प्रति कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। बालक माता-पिता का ही संस्कार लेकर संसार सागर में आगे बढ़ता है। जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे आए तो अपना संस्कार लेकर ही, पर माता की शिक्षा और पिता के सहयोग से ही कदम बढ़ाते हैं, वह सहयोग चाहे आशीर्वाद के रूप में हो या विरोध के रूप में। जिस युग में स्त्रियाँ वेदों का अध्ययन करती तथा यज्ञों में भाग लेती थीं, बच्चे भी ज्ञानी और कर्त्तव्य परायण होते थे। परन्तु आज नास्तिकता, अधर्म और अन्याय की झनकार क्यों सब ओर सुनाई दे रही है? क्योंकि वर्तमान पुरुष समाज ने स्त्री जाति की शक्ति का उपहास कर उसे शक्तिहीन बना दिया है,

मानव को मानवता से नीचे गिरा दिया है। मानव अपने को भूल गया, भटक गया विज्ञान की चका-चौंध में।

ऐसे ही समय में सन्त-महात्माओं का इस पृथ्वी पर आना होता है। स्वामी जी कहते हैं– महात्मा जन्म से ही संत या महात्मा नहीं बन जाते। वे माता की गोदी में खेलते हैं, धूल में लोटते हैं, और धीरे-धीरे, पूर्व कर्मफल, माता-पिता के संस्कार व शिक्षा, यह सब मिलकर उसे एक नई दिशा प्रदान करते हैं। सांसारिकता के विषम माया जाल में जकड़ी हुई मानवता को, जो मानव धर्म को भूल कर एक संकीर्ण पारिवारिक जीवन की परिधि में ही अपनी जीवन शक्ति को क्षीण करने लगती है, संतों ने समय-समय पर सत्य का संदेश सुनाकर संसार की माया-मरीचिका से मुक्त करने का प्रयास किया है। बच्चे ही राष्ट्र के कर्णधार हैं, योग ही भविष्य की संस्कृति है।

*योगविद्या, फरवरी 1976*



पूज्य स्वामी जी बांधा बाजार में चातुर्मास कर रहे थे। स्वामी जी की विशेष साधना चल रही थी। हम लोग अवकाश के समय उनके पास गए थे। कुछ चर्चा चल रही थी 'कर्म योग' पर। उन्होंने कहा– मनुष्य को अपना जीवन एक प्रयोगशाला मानना चाहिए। इसमें उसे अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं। इन अनुभवों का कुछ मौलिक सिद्धान्तों तक पहुँचने में उपयोग करना चाहिए। जो मनुष्य-जीवन के अनुभवों को तत्त्व दर्शन के लिए उपयोग में नहीं लाता, वह बाल बुद्धि है। संसार के अनुभव हमें हमेशा शिक्षा देते हैं। अगर हमें जीवन में सफल होना है तो अनुभवों की ओर ध्यान न देकर शिक्षा को ही समझना चाहिए। अगर हम वृद्धावस्था के पूर्व ही ज्ञानोन्मुख हो गए तो जीवन धन्य हो गया, नहीं तो फिर चौरासी के चक्कर में उलझ जाएँगे।

कल्याण पत्रिका में एक उदाहरण पढ़ने को मिला, जो हमारी आत्मा को जीवन की सही दिशा दिखाती है। आप लोग भी सुनें–

परमात्मा ने जीवात्मा से कहा– परदेश में जाकर तुम्हें स्वयं कमाई करनी होगी। राह खर्च के लिए यहाँ से कुछ नहीं मिलेगा। स्वालम्बन से ही तुम्हें सब कुछ करना होगा। इतना कष्ट तुम्हें इसलिए दिया जाता है कि तुम अपनी

कमाई से सुख का महल बना सको। यही तुम्हारी परीक्षा है, समय-समय पर मेरा स्मरण करते रहना।

जीवात्मा ने कहा–प्रभु, आप मुझ पर विश्वास रखें, आपका स्मरण रखते हुए, आपके आदेश का पालन करूँगा। मेरा ध्येय सत्यं-शिवं-सुन्दरम् ही होगा। परमात्मा से आशीर्वाद लेकर जीवात्मा चल पड़ा। कुछ दूर जाने पर उसे नींद सताने लगी। वह एक जगह सो गया, और लगातार नौ माह तक सोता ही रहा। और तब वह एक ऐसी जगह पर पहुँचा, जो उसके लिए एकदम नई थी। उसी के समान कई प्राणी उसे घेर कर बैठे हुये थे। उसने देखा कि उसमें बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है–हाथ, पैर, आँख-जीभ आदि शरीर के सभी अंग छोटे, कोमल व सुकुमार हो गए हैं, देह पर वस्त्र भी नहीं है।

बड़ी भूख लगी थी, उसने कुछ खाने के लिए माँगना चाहा। गले से आवाज तो निकली पर शब्द नहीं निकले। इस दुःख के समय भगवान को तो याद नहीं किया पर अपनी बेबसी पर चीख-चीख कर रोने लगा। उसी के समान एक प्राणी ने उसे दूध पिलाया। जब उसने अपनी जीभ पर तरल पदार्थ का अनुभव किया तो सुख से पान करने लगा। आनन्द के अवसर पर उसने प्रभु को धन्यवाद देना तो दूर रहा, स्मरण तक नहीं किया।

जीवात्मा सुकुमार व दुर्बल न रहा। धीरे-धीरे उसके हाथ-पैर पुष्ट होते गए, उसने अपने में बल का अनुभव किया और गर्व से फूल उठा कि अब वह बलवान् है। मूर्ख ने यह न समझा कि यह बल अपनी मेहनत से नहीं पाया है। यह तो उसी गुप्त दयालु का दान है, जिसे वह भूल चुका है।

जीवात्मा जगत्-रूपी 'परदेश' में, कर्म रूपी मजूरी करने लगा। उसने देखा कि इस परदेश में दो पथ हैं। एक पथ सीधा, और दूसरा काँटों से भरा। उसे एक प्राणी ने बताया कि सीधा-सा पथ दुःख मय है। सड़क तो चिकनी है पर अन्त में गहरी खाई है, और वह जो कटीला पथ है, वह सत्य-पथ कहलाता है, उसके अन्त में सुख और शांति है, जीवात्मा ने देखा कि सभी तो उस सीधे-से पथ पर ही हँसी खुशी चले जा रहे हैं। उसे कंटीले पथ पर जाने में कठिनाई और मूर्खता सी लगी। और वह सीधे पथ पर चल पड़ा। बहुत-से संगी-साथी भी मिल गए, उन साथियों में उसे सुन्दरी भी मिली, प्रसन्नता से फूल कर उसने भोग विलास में अपने को डुबा दिया, कंचन-कामनी के भंवर में उड़ते-गिरते खाई में लुढक गया।

जब उसे होश आया तो वह तेजोमय प्रभु के सामने खड़ा था, लगा इन्हें कभी देखा है, और पहचानने का प्रयत्न करने लगा। परमात्मा ने हंसकर कहा– आ गए पथिक परदेश से? क्या साथ लाए हो, धर्म की मंजूषा या पाप की गठरी? और जीवात्मा को याद आया प्रभु को दिया वचन, अपने सब कर्म और सर पर पड़ी पाप की गठरी, वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

इसीलिए तो कहा गया है –

*राही सोच समझ कर आना।*
*इस पथ में आराम नही है।।*
*और कुछ भी विश्राम नहीं है।*
*जीवन भार उठाकर पंथी बहुत दूर है जाना।।*

कितना सार तत्त्व है इन शब्दों में! हमारा जीवन इसी तरह काँटों में उलझता बीत जाता है। जिसे हम मधु समझते हैं वह मीठा जहर है, और हम जानते-समझते हुए भी उसे पान कर लेते हैं। दयालु प्रभु हर क्षण हमें संभालते हैं।

*योगविद्या, मार्च-अप्रैल 1976*



*तू मुझे देखा करे और मैं तेरी तस्वीर को।*

मूर्तियों एवं छवियों में भगवद्-विभूतियाँ रहती हैं, और उनसे हमारी कामनाएँ भी पूर्ण होती हैं।

मानव-विज्ञान मनुष्य के इन्द्रिय जनित ज्ञान पर निर्भर है। ऐसा भी कह सकते हैं, संसार के पदार्थ कुछ नहीं हैं, मनुष्य को एक अज्ञात शक्ति द्वारा जैसा उसकी इंद्रियाँ ज्ञान दिखाती हैं, वैसा ही वह जगत् को मानता है। मनुष्य में जो चेतना है, वही अपने संकल्प के अनुरूप होकर सामने आती है। इसी से संत लोग कहते हैं कि जैसा तुम विचार करोगे, वैसा ही तुम बन जाओगे। अपने को खुदा मानोगे तो खुदा बन जाओगे। स्वामी जी कहते हैं– जो आदमी अपने को उत्तम मानता है,वह कार्य भी उत्तम करता

है, और कार्यों के संस्कार से एवं प्रभाव से उत्तम होता जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि मूर्ति अथवा चित्र में जब हम भगवान की भावना करते हैं तब वह भगवान ही हो जाती है।

ईश्वर का ऐश्वर्य यह तकाजा करता है कि उसे सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होना चाहिए तभी वह सत्, चित् और आनन्दमय हो सकेगा। और तभी मूर्ति और चित्र में भी वह स्वत: विद्यमान होगा ही। उसकी व्यापकता कण-कण में है। वह तो आकाशवत् परिपूर्ण है। तब मूर्ति अथवा चित्र उससे शून्य कैसे हो सकती है?

ईश्वरीय शक्ति या विभूति जगत् के समस्त द्रव्यों एवं पदार्थों में निहित है। जिस तरह काष्ठ में छिपी अग्नि, वह अग्नि मन्थन से प्रकट हो जाती है, इसी तरह मूर्ति या चित्र में पूजन द्वारा ईश्वरीय विभूति जाग्रत, एकत्रित एवं संगठित होकर प्रकट हो सकती है। मूर्ति या चित्र ईश्वरीय विभूति के विग्रह रूप धारण कर व्यक्ति-विशेष के आकार में प्रकट होने का चिन्ह ही तो है। मूर्ति या चित्र में भगवत्-विभूति विद्यमान है, पर जब तक पूजा एवं आराधना के द्वारा उनमें भगवत्-आवेश नहीं कराया जाता तब तक उनमें भगवत्सत्ता सामान्य रूप से रहती है। जब मूर्तियों में या चित्र में भगवत्-आवेश हो गया, फिर तो वे सब कुछ कर सकती हैं। पर वे ऐसा क्यों नहीं करतीं?

मूर्ति या चित्र में प्राण-प्रतिष्ठा से भगवद्-अंश तो आ जाता है, लेकिन इच्छित फल देने वाली शक्ति का आविर्भाव तो हमारे उचित परिश्रम से ही होगा। दूध में घृत रहता है पर वह मन्थन से ही निकलता है। वैसे ही आराधना या पूजा-पाठ से भगवद्-विभूति, जो सामान्य रीति से सर्वथा विद्यमान है, वृद्धि को प्राप्त होकर विशेष रूप धारण कर लेती है। स्वामी जी कहते हैं, जब तक पूजा-आराधना के द्वारा मूर्तियों में भगवद्-आवेश नहीं कराया जाता तब तक उनमें भगवत्सत्ता सामान्य रूप से रहती है। जब मूर्तियों में भगवत-आवेश हो गया तो वे मनुष्य की कामना अवश्य पूर्ण कर सकती हैं। फिर वे ऐसा क्यों नहीं करतीं? इसलिए कि उनके भगवत्स्वरूप होने के विषय में हमारी धारणा परिपक्व नहीं होती। जब हमारा संकल्प ही इच्छित रूप धारण करता है, तो उस संकल्प में जब तक कच्चाई रहेगी, तब तक उसके अनुरूप क्रिया होने में भी त्रुटि ही रहेगी। जब तक हमारा संघर्षण अधूरा रहेगा, ईश्वरीय विभूति का फल कैसे होगा। श्रद्धा-विश्वास सहित आराधना नहीं होगी तो भगवद्-आवेश कैसे होगा? मूर्ति में भगवद्-अंश तो है लेकिन

इच्छित फल देने वाली शक्ति का आविर्भाव तो आत्मविश्वास से ही होगा। स्वामी जी कहते हैं फल की कामना ही न की जाए तो अति उत्तम है। निष्काम भाव से किया गया ध्यान अति उत्तम है–

*सारी दुनिया देख रही है, प्रभु तेरी तस्वीर को।*
*किसने देखा है तुझे, देखा है सिर्फ तस्वीर को॥*
*तेरे मिलने की न कुछ, तदबीर हमसे बन पड़ी।*
*हार कर हमने लिया, करमें तेरी तस्वीर को॥*
*तेरी सूरत का बना बुत हमने हैं प्रार्थना किया।*
*ध्यान और अनुराग होते, प्राप्त तेरी तस्वीर से॥*
*चाह इतनी सी मुझे है, अब तो ऐ मेरे गुरुदेव।*
*तू मुझे देखा करे और मैं तेरी तस्वीर को॥*

*योगविद्या, मई 1976*



पूज्य स्वामी जी कहते हैं–संसार में रहना गुनाह नहीं, गुनाह है संसार को अपने में रखने में। जैसे हम नाव में बैठकर नदी पार करते हैं, पर नाव से रंचमात्र भी आसक्ति नहीं रखते, वैसे ही संसार में रहकर तमाम कर्मों का निर्वाह करो पर आसक्ति न रखो। जैसे सड़क पर चलकर तीर्थ-यात्रा करते हैं पर सड़क का मोह हमें नहीं रहता, वैसे ही संसार में रहते हुए हमें संसार का मोह नहीं रखना चाहिए। जिस तरह यात्री सराय में रहकर अन्य यात्रियों से मिलता-जुलता है, वैसे ही हमें भी अपने हम-राहियों से दोस्ती निभानी है।

भगवान बुद्ध के उच्च विचार एवं दिव्य भावनाओं को अगर हम समझकर प्रेम रखें, क्रोध के बदले क्षमा, अपकार के बदले उपकार करें तो सर्वत्र शान्ति बिछ जावे।

तन हल्का और मन हल्का तो ध्यान छलका। मानव की असली निद्रा को पहचानना है, असली जागृति को भी पहचानना जरूरी है। जब भय, भ्रम, मोह और मद भाग जाएँ तब समझो कि जीवन जागा है। न ठोकरें लगें, न गल्तियाँ हों, आत्मा वश में आ जाए, मस्ती आ जाए तब समझो जागे हैं।

आग के पास रहने से भी पेट्रोल भमके नहीं, पानी पड़ने पर भी कागज गले नहीं, तूफान में पेड़ टूटे नहीं, तब समझो जीव सचेत है।

यह जागृति ही सहज समाधि है। इसमें अज्ञान नहीं, तमोगुण नहीं, आलस्य नहीं, न ही प्रमाद हो। यह अवस्था विवेक, वैराग्य, षट-सम्पत् और मुमुक्षत्व की साधनाओं द्वारा प्राप्त की जाती है। और यह जान लो कि जीव सोया है, और सुख-दुःख के सपने में झूल रहा है, अमृत और विष दोनों पी रहा है, मर रहा है और जी रहा है। उसे बचाने का एक ही उपाय है। वह है सहज ज्ञान। अज्ञान हटने पर ब्रह्म रह जाता है, जीव नहीं।

जगत्गुरु शंकराचार्य जी ने दर्शन शास्त्र में लिखा है कि जो निस्तब्ध आनन्द है, उस आनन्द को मैं आप को कैसे समझाऊँ। वे भी हार गए। आनन्द का कोई विवरण नहीं दे सकता, यह अनुभव करने की चीज है। संत ज्ञानेश्वर ने भी अपनी गीता की परिभाषा में एक जगह लिखा है कि आनन्द अपरम्पार है, अवर्णनीय है।

सूफियों ने ईश्वर को प्रिय माना, अपना माना, दोस्त माना। वे कहते हैं भगवान की तस्वीर तो दिल के आइने में है, हमें बाहर जाने की जरूरत नहीं। बस थोड़ा गरदन झुकायी अर्थात अन्दर को मुड़े कि उन्हें देख लिया। योग की क्रियाएं हमें अन्दर जाने का रास्ता बताती हैं।

*योगविद्या, जून 1976*



*गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।*
*गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥*

हमारे भारत में गुरु का स्थान बहुत ऊँचा है। गुरु की कृपा के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त गुरु का अस्तित्व हमारे जीवन में रहता है। भले ही हम अज्ञानवश उसे न पहचानें। हर काम करने में गुरु की आवश्यकता पड़ती है। पर युग के साथ ही हमारी धारणा भी बदल गई है। इसमें चाहे जो भी कमजोरी हो, पर हम चाहते हैं कि हमें महान् गुरु मिले, ताकि हम भी महान् बन जावें, कभी यह नहीं सोचा कि हममें क्या कमी है, हम योग्य शिष्य बन सकेंगे? वेद, पुराण, गीता, रामायण, सभी ग्रन्थों में

गुरु की महिमा का गान है। गुरु महिमा अवर्णनीय है, गुरु की गरिमा महान् है, पर साथ ही शिष्य की शक्ति भी महान् हो तभी कुछ हो सकेगा। सद्गुरु की कृपा बिना साधना का रहस्य तथा जीवन को सच्चा जीवन बनाने का भी रहस्य समझ में नहीं आ सकता। अनुभवी सद्गुरु साधना पथ का रहस्य समझा कर शिष्य को लक्ष्य तक पहुंचा सकते हैं।

आज के भौतिक युग में योग की चमत्कारी महिमा देख-सुनकर लोगों ने इस पथ पर अग्रसर होना शुरू किया है। इस मौके का लाभ उठाने हेतु अवतारों, जगदगुरुओं, विश्वोपदेशकों, सत्गुरुओं, ज्ञानियों और योगियों का मेला लग रहा है। सब कुछ गुरु-चरणों में अर्पण करने मात्र से ही ईश्वर-प्राप्ति का विश्वास दिलाने वाले गुरुओं की कमी नहीं है। इस मामले में मैं भाग्यशाली हूँ। मुझे महामण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द महाराज से मन्त्र दीक्षा मिली, और गुरुदेव के आशीर्वाद से उन्हीं की प्रतिमूर्ति स्वामी सत्यानन्दजी महाराज, धर्म-गुरु, ज्ञान-गुरु और संन्यास गुरु के रूप में मिले। उनके चरणों में मैंने जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

स्वामी शिवानन्द जी को गुरु रूप में प्राप्त कर मुझे जो अनुभूति हुई वह अवर्णनीय है, और स्वामी सत्यानन्द जी के रूप में जो मैंने प्राप्त किया है वह दुनिया के सामने है। आज लोग भले न माने पर मैं जानता हूँ कि वह समय भी आवेगा, जब लोग मेरे गुरुदेव को पहचानेंगे। मुझे उस दिन की प्रतीक्षा है, भले ही उस स्वर्ण दिवस के आने में अभी 30-35 वर्ष भी लग सकते है, पर मेरे लिए तो वही दिन सच्ची 'गुरु पूर्णिमा' होगी। वैसे तो 'सदा दिवाली संत की, बारह मास बसन्त' होता ही है, पर एक दिन ऐसा भी आने वाला है, जिसकी हमें प्रतीक्षा है।

*चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा।*
*गुरोस्तु मौनं व्याख्या शिष्याः संछिन्नसंशयाः॥*

वट वृक्ष के समीप गुरु जो बैठे हैं, वे तो युवा हैं, नित्य युवा हैं, और उनके समीप बैठे शिष्य ऋषि-महर्षि वृद्ध हैं। गुरुदेव अपने मौन से ही प्रवचन कर रहे हैं, और इस प्रवचन से शिष्यों के सभी सन्देह मिट चुके हैं।

*वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्।*
*यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥*

नित्यबोधमय गुरु भगवान शिव का आश्रय लेकर द्वितीया का क्षीण, वक्र चन्द्र भी वन्दनीय हो गया है।

जैसे मूर्ति धातु या पाषाण नहीं होती, वैसे ही गुरु व्यक्ति नहीं होता। मूर्ति में हम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् परमात्मा की आराधना करते हैं, और उस माध्यम में हम उस दयामय का सान्निध्य पाते हैं। गुरु भी व्यक्ति नहीं है। अगर उसमें व्यक्तित्व बचा है तो वह गुरु ही नहीं है। सर्वधी, साक्षिभूत, परम गुरु का श्री विग्रह हैं वे तो ...

*एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षिभूतं।*
*भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥*

*योगविद्या, जुलाई 1976*



मुंगेर में 18 जुलाई 1970 को गुरु पूर्णिमा मनाने के बाद सबकी इच्छा थी कि पूज्य गुरुदेव का 'जन्म दिवस' भी मनाया जावे। हमेशा पूज्य स्वामी जी इसका विरोध करते थे, इसलिए सबने मुझे उन्हें समझाकर किसी भी तरह हो, अनुमति लेने का महान् कार्य सौंप दिया। चाहता तो मैं भी था, पर याद आए धर्मशक्ति को भेजे उनके पत्र के वे शब्द, 'नादान बच्ची! तुम्हारी व हमारी उम्र तुम्हारे ही हिसाब से है क्या? न जाने तुम्हारी कितनी उम्र हो चुकी होगी, कई जन्म हुए होंगे, शरीर कई बार अरुणोदय में उदय और संध्या में अस्त हो चुका होगा, इसलिए बसन्त और पतझड़ का प्रश्न ही नहीं उठता। आत्मा अजर-अमर है, अविनाशी है। जन्मदिवस का प्रश्न ही कैसा?'

योग साधना में उन्होंने सुशीला को लिखा है – मेरा जन्म कब हुआ है, किसी को पता नहीं है, और तुम्हारा तो जन्म ही नहीं हुआ है। तुम तो अभी गर्भ में हो। संसार में मुठ्ठी भर लोग ही हैं जिन्होंने अभी जन्म लिया है।' वे इतने ऊँचे धरातल पर इस बात को सोचते हैं, और मुझे उनसे अनुमति लेनी है।

भगवान को भी भक्तों के लिए सब कुछ करना पड़ता है। हमें भी अनुमति मिल ही गई और हम सब विशेष आयोजन में जुट गए। भजन-कीर्तन, फूल-

माला, पूजा-प्रसाद, प्रवचन चलता रहा– पर मैं इन सबसे अलग स्वामी जी की ही बातें सोचता रहा। कहीं पढ़ा था ईसा-मसीह उपदेश दे रहे थे, तो किसी ने पूछा, 'स्वर्ग का राज्य किसको प्राप्त होता है?' तुरन्त उन्होंने भीड़ में से एक छोटे बच्चे को उठाकर कहा, 'जो बच्चे के जैसे सरल होता है, निर्दोष होता है।' हमारे स्वामी जी का जीवन भी तो एक छोटे शिशु की भांति सरल है। आज वे देश-विदेश जाते हैं, हवाई जहाज में घूमते हैं, और सभी से उनका व्यक्तिगत परिचय है, लेकिन एक ऐसा भी समय था, जब परिव्राजक के रूप में घूमते थे, और कभी-कभी भोजन, निवास और वस्त्र की समस्या भी कठिन हो जाती थी, लेकिन उन्हें देखकर लगता था कि ये सम्राटों के भी सम्राट् हैं। एक शाहंशाह हैं।

हमने स्वामी जी के जीवन में जबरदस्त संकल्प-शक्ति देखी है। वे चाहें तो पर्वत को चूर कर सकते हैं, और सागर को पी सकते हैं। इसी महान् संकल्प-शक्ति के बल पर उन्होंने लाखों व्यक्तियों का विश्व-व्यापी योग आन्दोलन खड़ा कर दिया है। जब 1956 में स्वामी जी अपने गुरु स्वामी शिवानन्द जी महाराज से आशीर्वाद प्राप्त कर गुरु-आश्रम से निकले थे तो एक अकेले व्यक्ति थे। आध्यात्मिक जिज्ञासु और पीड़ित जन उनको कहीं भी बुलाते, तुरन्त पहुँच जाते। धीरे-धीरे उनके महान् उद्‌देश्य पूर्ण जीवन को समझने वाले लोग बढ़ते गए, योग आन्दोलन फैलता गया। धर्म और जाति की मोटी दिवारों को लाँघ कर योग विश्व के कोने-कोने में फैल रहा है। योग घर-घर में पहुँचे और युगों-युगों तक चलता रहे। यही तो स्वामी जी का स्वप्न व संकल्प है।

पूज्य स्वामी जी गुरु तो हैं ही, वात्सल्यमय पिता भी हैं। सिद्ध योगी हैं, सच्चे संत हैं। उनके पास कठोर अनुशासन की छड़ी भी है। फिर भी हर कोई सोचता है कि स्वामी जी सब से तो स्नेह-प्यार करते ही हैं, लेकिन मेरे से विशेष प्यार है उनका। गुरु-शिष्य परम्परा को नये ढंग से पुनर्स्थापित कर रहे हैं। स्वामी जी कहते हैं कि संन्यासी का जीवन व्यक्तिगत जीवन नहीं होता, सार्वजनिक जीवन होता है। बड़ी-बड़ी संस्थाएँ और साधन होते हुए भी निजी रूप से दो कपड़ों के अलावा स्वामी जी के पास कुछ भी नहीं है। वे हम लोगों से भी ऐसी ही अपेक्षा रखते हैं।

पूज्य स्वामी ने समाज में एक नई परम्परा का निर्माण किया है। समाज में, धर्म में, संस्कृति में जो कोढ़ है, उसके प्रति वे सतर्क प्रहरी बन गए हैं,

और जब भी कोई नया काम होता है या होगा, तो जो अपने को समाज के ठेकेदार या कर्णधार समझते हैं, और अपनी गुरुडम बढ़ाना चाहते हैं, उनका विरोध करते हैं। हमारे देश में आदि काल से ही ऐसा हो रहा है। कई सन्त-महात्मा, ऋषि-महर्षि आए, सबका विरोध हुआ। और अभी भी हो रहा है। पर स्वामी जी को अपनी शक्तियों को इस विरोध से जूझने में लगाने का समय ही नहीं है। उन्हें तो सृजनात्मक कार्य के लिए भी समय का अभाव पड़ रहा है। स्वामी जी कहते हैं, 'मैं तो ट्रक की भांति हूँ, आगे बढ़ता हूँ तो सामने कितनी भी मजबूत दिवार होगी, उसको तोड़ दूँगा। जब कोई मुझे छोड़ देता है, तो मैं यह नहीं सोचता कि उसने मुझे क्यों छोड़ा? मैं सोचता हँ – who is the next, नया आदमी इसकी जगह पर कौन आवेगा? पूज्य स्वामी जी के साथ काम करना गौरव की बात है, वे हमको अपने योग आन्दोलन में कार्य करने का अवसर देते हैं, यह तो हम पर उनका अनुग्रह ही है। आप उन्हें छोड़ दीजिए, वे परवाह नहीं करते।

पूज्य स्वामी जी का जीवन एक वृक्ष है, चारों ओर जिसकी शाखाएँ फैली हों, हरे-भरे जिसके पत्ते हों, सुन्दर-मनोहर जिसमें फल-फूल हों, जिस पर पक्षी बैठकर गीत गाते हों, नीड़ बनाकर निश्चिन्त सोते हों और जिसकी छाया में हर कोई विश्रांति पा सकता हो।

जैसा कि जन्मोत्सवों में होता है, हमने भी मनाया। शतायु होने के लिए हम पूज्य गुरुदेव के लिए क्या कामना कर सकते हैं, हम तो उनसे केवल आशीष ही माँग सकते हैं। जहाँ पर भी योग होता है और जहाँ पर योग होगा, वहाँ पर वे सदैव उपस्थित रहेंगे। वे कहते भी हैं कि जो मेरा कार्य करता है, उसके योग क्षेम की मैं रक्षा करता हूँ। और इसका अनुभव मैंने अपने जीवन में हमेशा किया है। आगे भी यही कामना है, जन्म-जन्म में इन्हीं चरणों की छत्र-छाया मुझ पर बनी रहे।

*योगविद्या, अगस्त 1976*



*वेद उदधि बिन गुरु लखे, लागे लवण समान।*
*बादर गुरुमुख द्वारा बहे, अमृत ते अधिकान॥*

मनुष्य महान् से भी महान् बन सकता है, यदि उसकी आसक्ति क्षणभंगुर वस्तुओं के साथ न हो और यदि वह उस महिमा की प्राप्ति के लिए अपने को तैयार कर ले जहाँ सूर्य तमिस्र में निमग्न हो जाता है, चन्द्रमा रुधिर में निमग्न हो जाता है तथा बादल उसकी उपस्थिति के आनन्द में रुदन-वर्षा करते हैं।

ईश्वर ने अपने ज्ञान और करुणा से अनुप्रेरित हो, प्रेम एवं सत्य के संदेश वाहक, श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती को भेजा। उन्होंने दिव्य जीवन के कार्य की पूर्ति के लिए ही जन्म धारण किया तथा उसके लिए ही अपना उत्सर्ग किया। मुझे उनको देखने-समझने व चरणों के निकट बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

वे संसार के समक्ष उन उपदेशों की घोषणा करते हैं जिनसे अविद्याग्रस्त मनुष्य उन्हें सुनकर लाभ उठावें–'दान, प्रेम, सेवा, शौच, मनन, ध्यान, साक्षात्कार।' वे सब के समक्ष अपना उदाहरण रखते थे, तथा सबका नेतृत्व करते हुए उन्हें पूर्णता के पथ का प्रदर्शन करते थे, जिससे वे 'उस' परम महिमा की प्राप्ति में समर्थ हो सकें।

स्वामी शिवानन्द जी समस्त संसार के मित्र तथा गुरु थे। उनके उपदेश हैं–सद्गुणों का उपार्जन करो, दुर्गुणों को दूर करो, अहंकार को विनष्ट करो। सभी भूतों में अंतर्यामी को देखो। अपने लिए प्रदीप बनो तथा संसार के लिए ज्योति। स्वयं प्रबुद्ध बनो और समस्त संसार को उद्बुद्ध करो। इस भौतिकवादी, तमसाच्छन्न संसार में अध्यात्म तथा ईश्वरत्व की ज्योति को प्रदीप्त बनाए रखो।

स्वामी शिवानन्द जी ने तपस्या के सामान्य रूपों का अभ्यास किया–जैसे गंगा जी के बर्फीले जल में खड़े रहकर जप करना, जमीन पर बिना बिस्तर के सोना, बहुत दिनों तक उपवास करना, हिमालय से मानसरोवर तक की पैदल यात्रा करना।

स्वामी जी भगवद् गीता में वर्णित तपस्या-त्रय के सजीव उदाहरण हैं। देव-द्विज-गुरु-प्राज्ञ पूजनम्–इसका तो वे अक्षरश: पालन करते थे। इसके साथ-साथ गीता में वर्णित शारीरिक-तपस्या–शौच, आर्जव, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा, तो उनके लिए स्वभाविक ही है। जिन लोगों ने शिवानन्द जी से भेंट की है, वे जानते हैं कि उनके शब्द अमृत एवं मधु से भरपूर हैं। उनके अधरों से कठोर शब्द निकल ही नहीं सकते। जो शब्द सत्यम्, प्रियम् तथा हितम् के त्रिलय जांच में खरा नहीं उतरता, उस शब्द को वे बोलते ही नहीं

हैं। वे उस शब्द को भी नहीं बोलते, जो सत्य तो है परन्तु उसके कहने से आघात पहुँचने की आशंका है। उसे ईश्वर के उपर छोड़ देंगे। स्वामी जी का अपनी वाणी पर पूर्णतः नियंत्रण है, और यही उनकी वाणी का तपस् है। मन-प्रसाद, सौम्यत्वम्, मौनम्, आत्मविनिग्रह और भाव संशुद्धि स्वामी जी में अपनी परिपूर्णता में पाए जाते हैं। सदा सौम्य, शान्त तथा मुदित रहकर वे अपने चतुर्दिक लोगों में शान्ति एवं आनन्द को विकीर्ण करते रहते हैं। उनका प्रत्येक शब्द नपा-तुला तथा श्रोता की आत्मा को प्रबुद्ध करने योग्य रहता है। उनके व्यक्तित्व का प्रत्येक कण उनकी आज्ञा के अनुसार ही चलता है।

अपमान सहो, नुकसान सहो – यही सबसे बड़ी साधना है। स्वामी जी अपनी कोटि के सम्भवतः एक ही संत हैं जो इसका अक्षरशः पालन करते हैं। जब आप इसका अभ्यास प्रारम्भ करेंगे तब पता चलेगा कि इसमें कितनी कठिनाई है। अपमान सहन करने से मनुष्य के भीतर की ज्वाला क्रोध के रूप में अभिव्यक्त न होकर उसके अन्दर के सारे पापों को जला डालती है। विरोधी शिष्य की कठोर बातों को सुनकर भी वे हँस देते थे, तथा उसे आशीर्वाद देते थे।

स्वामी शिवानन्द जी रचनात्मक तथा सक्रिय प्रार्थना के हिमायती थे – वह प्रार्थना जो हृदय के अन्तरतम से निःसृत होकर मनुष्य के कण-कण में उसी प्रकार परिव्याप्त होती है, जिस प्रकार रुधिर हृदय से संचरित होकर समस्त शरीर में परिव्याप्त होता है, तथा उसका पोषण करता है। सत्संग के समय ऐसा कहते हम सुनते थे 'अमुक व्यक्ति आज चल बसा, दिवंगतात्मा की शान्ति के लिए हम सब प्रार्थना करें। अमुक व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, अतः हम सब उनके स्वास्थ्य की पुनर्प्राप्ति तथा दीर्घायु के लिए प्रार्थना करें।' इसके पश्चात वे स्वयं कीर्तन करते थे और उपस्थित जन उनका अनुगमन करते थे। अंत में 2 मिनट मौन होकर ध्यान करते थे। यथार्थतः ऐसी प्रार्थनाओं ने अनेक आश्चर्य संघटित किए हैं।

स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि हम निष्काम भाव से सब के लिए प्रार्थना करें। उदाहरणार्थ, जन्म-दिवस के दिन किसी के आश्रम दर्शनार्थ आने पर उनके स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए प्रार्थना करते समय स्वामी जी गाते थे – 'भगवान सम्पन्न करें श्री .... जी तथा उनके परिवार को, और समस्त संसार को स्वास्थ्य, दीर्घायु, शान्ति, आनन्द और अमरत्व से।' फिर

वे तीन जय ध्वनि करवाते थे 'श्री .... जी तथा उनका परिवार चिरंजीवी हो'। चौथी ध्वनि में कहते थे, 'समस्त मानव जाति चिरंजीवी हो।'

स्वामी शिवानन्द जी की प्रार्थना मनुष्यों तक ही सीमित नहीं थी। किसी घायल बन्दर या कुत्ते के लिए भी स्वामी जी उसी प्रकार मृत्युंजय मंत्र का जप करते थे जिस प्रकार किसी भी रुग्ण व्यक्ति के प्रति किया जाता है। रास्ते में पड़ी हुई मृतक छिपकली की जीवात्मा के लिए भी वे महामंत्र कीर्तन कर डालते थे। स्वामी जी के लिए सारे प्राणी एक समान थे, और उनकी प्रार्थना सार्वभौमिक थी।

प्रार्थना ही जीवन तथा साधना में सफलता की कुंजी है। ईश्वर की सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता एवं सर्वशक्तिमत्ता की स्वीकृति तथा जीवात्मा की ससीमता व दुर्बलता का मान ही प्रार्थना है। अत: प्रार्थना ईश्वरार्पण तथा भक्ति साधना का आवश्यक अंग है। स्वामी जी के सत्संग भवन में देवी-देवताओं के चित्र हैं। वे अपने दैनिक कार्यक्रमों में उनकी सत्ता का अनुभव करते हैं। ज्योंही वे कार्यालय में प्रवेश करते हैं, त्योंही उनकी दृष्टि उन चित्रों की ओर जाती है। मानो कह रहे हों – मैं यहाँ हूँ, आप की ही इच्छा के पूर्त्यर्थ आपका सहयोगी, आपका निमित्त स्वरूप।

कार्यक्रम शुरू करने से पहले स्वामी जी कुछ क्षण के लिए मूक प्रार्थना अर्पित करते हैं। एक काम समाप्त करने के बाद दूसरा काम शुरू करने के पहले, स्वामी जी अपनी कुर्सी पर पीछे टिककर एक आँख को बंद करते हुए दूसरी से प्रभु के किसी चित्र की ओर दृष्टि-निक्षेप कर लेते हैं। वह क्षणिक काल ही उनके लिए अमरत्व, अनन्तता, परमशान्ति तथा परमानन्द है। इस प्रकार परमात्मा का योग सतत् बना रहता है। स्वामी शिवानन्द जी के लिए इन आलम्बनों की आवश्यकता ही नहीं थी। वे तो सदा ब्राह्मी चेतना में संस्थित रहते थे। परन्तु वे ऐसा करते थे हम लोगों के लिए उदाहरण के स्थापनार्थ।

गंगा के किनारे निर्जन कुटी में बैठकर इस महर्षि ने समस्त संसार में सुख का संचार किया है। देश-विदेश में सहस्त्रों लोगों ने उनके संदेशों को पढ़ा है, उनकी पुस्तकों का अध्ययन किया है। उनकी पुस्तकों का कई भाषा में अनुवाद हो चुका है। उनके संदेश का प्रभाव आज पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों के रूप में समस्त संसार में फैल गया है। 300 पुस्तकों के वे विख्यात लेखक हैं। 1953 में स्वामी शिवानन्द जी ने ऋषिकेश में विश्वधर्म सम्मेलन

बुलाया, जिसमें विश्व के सारे देशों से प्रतिनिधि आये थे। अनेक धर्मों के नेताओं ने स्वामी जी के नेतृत्व में सारे धर्मों की एकता की घोषणा की। यह ऐतिहासिक घटना थी।

मैं गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी के पास विश्व-धर्म-सम्मेलन के समय अनायास ही पहुँचा था। उनका साहित्य पढ़ कर ज्ञात हुआ कि मानव अगर गुरुदर्शन को उत्सुक होता है, तो समय पर योग्य गुरु को पा ही लेता है। उनसे पत्र द्वारा आशीर्वाद प्राप्त किया। ध्रुव का ज्ञान हो चुका है, तिमिर का भान हो चुका है। और निशा का अवसान भी हो चुका है। क्योंकि उनके आशीर्वाद का प्रतीक, पथ प्रदर्शक ध्रुव हमें 'स्वामी सत्यम्' के रूप में प्राप्त हो चुका है, जिनके चरणों के आलोक में हमने सब कुछ पाया है।

8 सितम्बर आकर हमें झकझोर देती है, हम 'मौन' नमन के सिवा उन्हें क्या दे सकते हैं। कबीर जी के शब्दों में–

*गांठी दाम न बांधई, नहि नारि सो नेह।*
*कह कबीर ता साधु की, हम चरणन की खेह॥*
*सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।*
*लोचन अनंत उधडिया, अनंत दिखावण हार॥*

*योगविद्या, सितम्बर 1976*

---

कुछ लोग यह समझे बैठे हैं कि योग संन्यासियों के लिए ही सम्भव है, गृहस्थों के लिए यह सम्भव नहीं है। लेकिन यह उनकी भ्रान्ति है।

पूज्य गुरदेव किसी भक्त की शंका का समाधान करते हुए कह रहे थे, 'योगाभ्यास तो अभिशप्त जनों के लिए, जीवन संग्राम में जूझते हुए लोगों के लिए एक नैसर्गिक वरदान है।' अत: योगाभ्यास करने वाले एवं उससे अनुराग रखने वाले लोगों को इस मूल मन्त्र को हमेशा सामने रखना चाहिए कि वे संसार के हैं और संसार उनका है। संसार से उन्हें अनुराग होगा, तभी योग की सफलता है। अगर लोग संसार से ऊबने लगे, घृणा करके उससे भागने लगें, एकान्त और सूनेपन को ही योगाभ्यास का साधन स्थल मानने

लगें तो क्या होगा? संसार का नाश हो जायेगा। संसार को दार्शनिक लोग स्वप्न मानते हैं, माया मानते हैं। लेकिन दार्शनिकों के योग से हमारा योग भिन्न है। संसार ही हमारी कर्मभूमि है। गीता के कर्मयोग की शिक्षा अर्जुन को योगीराज श्री कृष्ण ने समर भूमि में दी, इसी से स्पष्ट हो जाता है कि योग का सच्चा अर्थ जीवन संग्राम से लड़ने और जीतने का है। भोग के बीच ही योग की साधना सच्ची साधना है। हमें अपने सांसारिक कार्यों को त्यागना नहीं, उनको संघर्ष करके पूरा करना ही है।

लेकिन उनको पूर्ण करते वक्त भी हमें नैतिक मर्यादाओं को छोड़ना नहीं है। जिस तरह नदियाँ चारों ओर से समुद्र को भरती रहती हैं, फिर भी समुद्र मर्यादा नहीं छोड़ता, उसी तरह सांसारिक वासनाओं के बावजूद भी मर्यादा को जो बनाये रखे, वही योग 'योग' है। जो योग भोग का संताप होने पर मनुष्य के मन को शांति नहीं देता, वह योग नहीं है। कर्म ही निष्ठा है, उसी पर मोक्ष आधारित है और कर्म करने में जो शारीरिक या मानसिक बाधायें हैं, उन बाधाओं को दूर करते हुए हमें कर्म करने में सक्षम बनाना ही योग का संकल्प है। अत: योगाभ्यास के लिए शादी, विवाह, परिवार या गृहस्थी कोई बाधा नहीं है, वरन् अगर ध्यान दिया जाय तो गृहस्थों के लिए योगाभ्यास साधुओं से अधिक आवश्यक है।

गृहस्थ आश्रम तो संन्यास से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं राजयोग, ये चारों ही गृहवासियों के लिए लाभकारक हैं। भक्त भजन करते हैं, और भजन भी संगीतोपचार है।

आए दिन हममें अनेक ऐसी अवांछनीय चीजें आ गईं, जिससे हमारा घोर अपमान हो रहा है। हम ऋषि-मुनियों की बातें करते हैं, और अन्ध-विश्वासी की तरह उनके बताए हुए उपदेशों को अपने बच्चों पर लाद देते हैं। इसको हम 'दमन' कह सकते हैं, जिसका नतीजा यह होता है कि हमारी स्वाभाविक वृत्तियाँ पनप ही नहीं सकतीं, हम उन थोपे हुए विचारों को भी पकड़कर नहीं चल सकते। परिणाम स्वरूप हमारे होनहारों का व्यक्तित्व कुण्ठित हो जाता है। अन्धविश्वासों से हमें बचना है और अपनी इच्छा शक्ति को अत्यधिक विकसित एवं दृढ़ करना है।

योग को हम तीन अर्थों में चाहते हैं– सामाजिक प्रगति, व्यक्तिगत सुख और स्वस्थ जीवन-दर्शन। गृहस्थाश्रम में ही इस संकल्प की पूर्ति मिल सकती है। स्वामी शिवानन्द जी इसी कारण गृहस्थाश्रम को ही योगाश्रम कहते थे।

जो संसार की व्यथाओं से भागता रहा उसे योग की, सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। बेचारे गृहस्थों को कितने बड़े संघर्षों से गुजरना होता है। योग से उन्हें बहुत बड़ा सम्बल मिलेगा। अत: प्रत्येक गृहस्थ को इस ईश्वरीय वरदान से लाभान्वित होना चाहिए।

गुरुदेव के इन शब्दों को जीवन में उतारा जावे तो हमारी आने वाली पीढ़ी सबल आत्म-विश्वास से कुछ कर सकेगी। विज्ञान के इस युग में स्वास्थ्य का महत्त्व कुछ रहा ही नहीं। पहले गुरुकुल में गुरुजी अपने शिष्यों को कहते थे–

*हे वत्स! पुष्टिकर भोग न तू यदि खायेगा।*
*मेरे शिक्षण की कठोरता को कैसे सह पायेगा॥*
*अनुगामी यदि बना कहीं तू खान-पान में भी मेरा।*
*सूख जायेगा लहू, बचेगा हड्डी भर ढांचा तेरा॥*

और आज के गुरु बड़े प्रेम से कहते हैं–

*कवच कहा ये धारिहैं लचकीले मृदुगात।*
*सुमन-हार के भार से तीन-तीन बल खात॥*

गुरुदेव कहते हैं–पहले के गुरु कठोरता से शिष्य को मिलारेप्पा जैसे महान् बनाते थे, और आज के गुरु ईनाम पाकर शिष्य को बेकाम बना देते हैं। इसलिए योग को अपनाना सबके लिए निहायत जरूरी है।

*योगविद्या, अक्टूबर 1976*



लगता है यह युग योग और योगियों को पहचानने लगा है। इस भौतिकवादी युग में धर्म का दुर्ग ढहने लगा है, श्रद्धा और विश्वास का आसन डगमगाने लगा है, लगता है विज्ञान का मार्ग हमने गलत तरीके से अपनाया है, जिससे सभ्यता और संस्कृति की इमारत ध्वस्त हो सकती है। मानवता के सामने जीवन-मरण का प्रश्न आ गया है। ऐसे समय में कौन त्राण कर सकता है, कौन सहारा देने के लिए हाथ बढ़ा सकता है? वेदान्त, उपनिषद, भागवत,

गीता-रामायण के उपदेश रोचक लगते हैं, शान्ति देते हैं पर इतना ही पर्याप्त नहीं है। जगत् के मूल में सत्य है या असत्, मनुष्य का पुरुषार्थ मोक्ष है या निर्वाण, भगवान है या नहीं है, इन प्रश्नों का उत्तर हमें हमारे धार्मिक ग्रन्थों में नहीं मिल सकता, क्योंकि हम उन्हें सुनते तो हैं पर समझने के लिए न हमारे पास समय है न हमारा मन सक्रिय है।

जब हमारा मन कुण्ठित है, तब इन प्रश्नों का उत्तर हमारे दर्शन की पोथियाँ अपने बल पर तो दे नहीं सकतीं। हमारे धर्म ग्रन्थों को भी आश्रय की आवश्यकता है। ये ग्रन्थ उद्धारक से परिवार पालक बन गए हैं। इस कठोर सत्य का सहारा वीतराग योगी ही हो सकता है। जो योगी कठोर साधना से, तप से, विश्व के रहस्य का, स्वरूप का दर्शन करके हिमालय की गुफा में अपनी आत्म-सिद्धि के लोभ का त्याग करके, भटकते मानव के कोलाहल के बीच खड़े होकर रास्ता बताने की क्षमता रखता हो, ऐसा योगी धर्म का, सत् का, परमात्मा का, देवलोक का व परलोक का साक्षी है। इस योगी का ज्ञान सुनी-सुनाई बातों या पुस्तकों पर निर्भर नहीं होगा। आज योगी के ऊपर ही जगत् की गति को बदलने का, मनुष्यों को पुनः धर्म की ओर ले जाने का दायित्व है।

स्वामी जी कहते हैं– 'यह संसार चमन है, जिसमें किस्म-किस्म के फूल, पत्ते, पौधे, पेड़, बेल, आदि खिले हैं– सबकी अपनी बहार और अपनी खूबी है। कोई चोर है तो कोई दाता। कोई ब्रह्मचारी है तो कोई व्यभिचारी। कोई खूनी है तो कोई अहिंसक। यहाँ हर किस्म के नमूने भरे पड़े हैं। यह अलबेली सरकार का अजायबघर है, म्युज़ियम है। तुम सिर्फ नजरें घुमाते जाओ। नफरत के साथ नहीं बच्चे, हैरत के साथ देखो– हम सब फूलों को और बनाने वाले का शुक्रिया अदा करो कि हे परमात्मा, जब तू ही इन सबको पसन्द करके बनाता है, तो हमें भी इतना बड़ा दिल दे कि हम सबको गले लगा सकें।'

जब दुनिया के लोग शाश्वत सत्य के प्रति अन्धे हो रहे हैं, भौतिकवाद के अज्ञानान्धकार में अजपा मार्ग टटोल रहे हैं, ऐसे अज्ञानान्धकार में ज्योति-स्वरूप हैं योगी परमहंस सत्यानन्द महाराज, जो हिमालय से आकर इस संसार सागर के भयानक लहरों पर अडिग खड़े हैं। सिद्धियाँ उनके चरणों पर लोट रही हैं, पर उन्हें उसकी ओर देखने की फुरसत नहीं है। प्रयत्न है दुनिया में कोई दु:खी न रहे, रोगी न रहे, कोई प्रभु के नाम पर अतृप्त न रहे,

योग से दूर न रहे। स्वामी जी दर-दर और घर-घर योग की गंगा बहा देना चाहते हैं, योग पर अधिकार के साथ समझाकर वे सबको एक दिव्य युग की ओर ले जाने को तत्पर हैं। मेरी आँखें देख रही हैं आज से 10 और 20 वर्ष बाद आने वाले युग को, जिसके बारे में अमेरिका के ज्योतिषी 'एन्डरसन' ने जो भविष्यवाणी की है, हमें उस दिन की प्रतीक्षा है, जब इस संसार का स्वरूप ही बदल जाएगा, और फिर हजारों वर्षों तक लोग सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत करेंगे।

*योगविद्या, नवम्बर 1976*



# श्रद्धा सुमन

स्वामी धर्मशक्ति जी श्री स्वामीजी की प्रथम शिष्या हैं। उनके मातृतुल्य शक्तिपूर्ण हठ के आगे विवश होकर श्री स्वामीजी को गुरु रूप में परिणत होना पड़ा। श्री स्वामीजी ने उन्हें एक बार लिखा था, 'मेरे मिशन के लिए ही अपने को जीवित रखना। तुम्हारा संसार में किसी के प्रति कर्त्तव्य शेष नहीं रहा, सिवाय मेरे प्रति।' एक अवधूत की तरह जीवन के सभी आँधी-तूफानों को झेल, कर्त्तव्य-पथ पर निरंतर आगे बढ़ते हुए स्वामी धर्मशक्ति ने एक ऐसा ज्वलन्त आदर्श प्रस्तुत किया है, जो हमें सदा प्रेरणा और मार्गदर्शन देता रहेगा। 'श्रद्धा सुमन' योगविद्या में प्रकाशित उनके प्रेरणात्मक लेखों का संग्रह है।

*– सम्पादक*

# श्रद्धा सुमन

कुछ करनी, कुछ करम-गति, कुछ पूर्व जन्म के पुण्यों का संयोग होता है, तभी जीवात्मा परमात्मा बन जाता है।

मानव शरीर अभिमान करने की वस्तु नहीं। वह तो लक्ष्य प्राप्ति का एक साधन है। यदि हम इस नश्वर शरीर के माध्यम से अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं तो भौतिक शरीर 'शव' से 'शिव' बन जाता है।

समय परिवर्तनशील है, वह किसी के रोके नहीं रुकता। दिन पर दिन, महीने पर महीने और वर्ष पर वर्ष बीतते चले जाते हैं। कैलेण्डर की तारीखें बदलती जाती हैं, और पुरानी बातों को मानस पटल पर दुहराती चली जाती हैं। आज 31 दिसम्बर सन् 1971 नहीं, 31 दिसम्बर सन् 1972 है। वर्ष बीत गया पर लगता है घटना कल की ही है। सन् 1971 की अन्तिम तिथि को स्वामी सत्यव्रतानन्द जी ने अपने भौतिक शरीर का त्याग किया। वे ब्रह्मलीन होकर सन् 1972 की प्रथम किरण के साथ ही ईश्वर का दिव्य संदेश लेकर जन-जन के मन में छा गये।

ब्रह्मलीन स्वामी सत्यव्रतानन्द सरस्वती ने अपने जीवन में ऐसा महान् कार्य किया जो एक सामान्य मानव के लिये कठिन ही नहीं अपितु असम्भव-सा जान पड़ता है। वे अवश्य ही शापभ्रष्ट देवता, ऋषि रहे हैं। एक महान् कार्य की पूर्ति हेतु ही मानव देह धारण कर इस भूमि पर उनका अवतरण हुआ था। उनके द्वारा सहज ही जो कार्य हो गया उसे आज की स्वार्थी दुनिया शायद न समझ सकेगी।

परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती से सर्वप्रथम स्वामी सत्यव्रतानन्द जी का सम्बन्ध गुरु-भाई के रूप में हुआ। कार्यक्षेत्र में प्रवेश करते ही पूज्य स्वामीजी को गुरु के रूप में उन्होंने पूजा। गुरु-शिष्य, भगवान-भक्त ने

एक आत्मा दो शरीर होकर कार्य किया। शिष्य ने गुरु के दर्शन एवं गुरु-नामस्मरण से अधिक कुछ जानने की अभिलाषा नहीं की।

14 फरवरी सन् 1960 को पूज्य स्वामी जी से मुझे माता कौशल्या बनने का आशीष प्राप्त हुआ। स्वामी सत्यव्रत जी को शांति का वरदान मिला, शांत चित्त से वे कार्य करते रहे। कमल के पत्ते की भांति संसार में रहकर भी वे उससे निर्लिप्त रहे। 'निरंजन' जैसे पुत्र को पाकर भी शांत बने रहे, उसे गुरु-चरणों में समर्पित करने पर भी उनकी शांति भंग नहीं हुई। निरंजन की विदेश यात्रा ने भी उनका मन अशांत नहीं किया। 30 दिसम्बर 1971 को उनके दिव्य चेहरे पर एक अलौकिक शांति व्याप्त थी, जिस दिन वे स्वामी आत्मानन्द जी से 'बाल स्वामी निरंजन' के विषय में कुछ विशेष जानकारी प्राप्त कर लौटे थे। दूसरे दिन ही वे 'राम' (निरंजन) के लिये 'दशरथ' बन गये।

स्वामी सत्यव्रतानन्द जी के सम्पर्क में जो अनुभव मुझे प्राप्त हुआ उसके आधार पर मैं आत्म-विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि उनका जन्म महान् कार्य के लिये हुआ था एवं महान् कार्य के लिये ही उन्होंने शरीर त्याग किया है। आज भी इतने विशाल-विकसित कार्य का संचालन उनकी अदृश्य शक्ति ही कर रही है। समय-समय पर उन महान् योगी के आदेश एवं संकेत मुझे प्राप्त होते रहते हैं। उनके द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलकर ही मुझे सफलता प्राप्त होती है। उलझे हुये कठिन कार्य सुलझ कर सहज बन जाते हैं। मेरे साथ एक महान् शक्ति कार्य करती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि सारे कार्य सुचारु रूप से ज्यों-के-त्यों चल रहे हैं। इसी 'दिव्य ज्योति' से आलोक प्राप्त कर मैं उनके अपूर्ण कार्य को पूर्ण कर सकूँगी। पूज्य गुरुदेव के 'मिशन' की सेवा मेरे जीवन का उद्देश्य है जिसे मैं अन्त तक करती रहूँगी। देवता तुल्य स्वामी सत्यव्रतानन्द जी के प्रति मेरी यही श्रद्धांजलि अर्पित है।

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये ईश्वर मुझे शक्ति दे एवं पूज्य गुरुदेव के मंगल आशीष प्राप्त हों, यही कामना करती हूँ।

*योगविद्या, जनवरी 1973*



दिनांक 29 से 31 दिसम्बर 1973 की अवधि में राजनाँदगाँव योग विद्यालय में आयोजित त्रिदिवसीय छत्तीसगढ़ योग सम्मेलन सानन्द सम्पन्न हुआ।

समापन दिवस अर्थात् 31 दिसम्बर को प्रात: 8 बजे ब्रह्मलीन स्वामी सत्यव्रतानन्द जी सरस्वती की पावन स्मृति में उनकी प्रिय गुरु वन्दना 'मिलता है सच्चा सुख केवल गुरुदेव तुम्हारे चरणों में' के स्वर गूँज उठे। एक दुर्लभ आध्यात्मिक तरंग समस्त वातावरण में व्याप्त हो गई। मुझे आभास हुआ कि सचमुच ही 'राजनांदगांव योग विद्यालय बन गया सभी का देवालय।'

लगा एक अदृश्य दिव्य आत्मा ने अपने गुरु-गोविंद की पाद पूजा की है। तभी तो पूज्य स्वामी जी ने भी कहा वह आत्मा अभी इस समय भी हमारे समीप है। परन्तु हमारी भौतिक आँखें उसका प्रत्यक्ष दर्शन न पाकर अश्रुपूरित हो उठीं। इसी समय कहीं सें आती ध्वनि कानों में गूँज उठी–

*जिसे शस्त्र काटे न अग्नि जलावे,*
*बुझावे न पानी न मृत्यु मिटावे,*
*वही आत्मा सच्चिदानन्द मैं हूँ।*

आज से दो वर्ष पूर्व ये सच्चिदानन्द ब्रह्म बन गये। पर लगता है बात कल ही की है।

जब भी मन विचलित हो जाता है, एक स्वर्गीय ज्योति मेरा मार्ग प्रदर्शन किया करती है। उनके अंतिम शब्दों के स्मरण से ऐसा प्रतीत होता है मानो अपने गुरु के किसी महान् कार्य की पूर्ति हेतु वे कहीं बाहर गये हुए हैं–

'तुम अपना कार्य करो, मैं एक विशेष कार्य के निमित्त जा रहा हूँ। मुझे बहुत काम है। जल्दी आऊँगा। शुभ कार्य में देरी क्यों? आकर पूज्य स्वामी जी को शुभ समाचार दूँगा।'

इस प्रकार अंतिम समय में भी उन्होंने मुझे अपने कर्त्तव्यों के प्रति सचेत किया। स्वयं स्वामी सत्यानन्द जी के साथी और सारथी बने। राजनाँदगाँव योग विद्यालय रूपी रथ को जन मानस के सम्मुख खड़ा कर गुरुपूर्णिमा के दिन गुरु-शिष्य का शंखनाद किया और उसकी संरक्षा हेतु 'चौकीदारी' का पट्टा जन्म-जन्मान्तर के लिये प्राप्त कर लिया।

अप्रत्याशित को सहना ही मानवता है। आज 'निरंजन' के रूप में उनकी प्रतिमूर्ति सम्मुख है। उसे देख याद आया कि किस प्रकार निरंजन के प्रति उनका मन आकांक्षाओं से भरा रहता था। निरंजन का पत्र पाकर या स्वामी जी

के माध्यम से उसका कोई संदेश प्राप्त कर उनकी आँखों में एक विशेष चमक छा जाती। वे हमेशा मुझसे कहा करते– 'निरंजन से मोह नहीं करना। तुम्हें तो आशीर्वाद मिला है कौशल्या माता बनने का। राजरानी-राजमाता कौशल्या चाहतीं तो राम को वन जाने से रोक सकती थीं, कैकेयी का तिरस्कार कर सकती थीं। जब भरत के साथ राम से मिलने गईं तब भी राम को वापस ला सकती थीं, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया क्योंकि वे मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की माँ थीं। तुम भी निरंजन की माँ हो और पूज्य स्वामी जी की पुत्री। पूज्य स्वामी जी ने विश्वास के साथ अमूल्य रत्न तुम्हें सौंपा है। इस जिम्मेदारी का पालन अपना सर्वस्व देकर भी करना होगा।'

अपने परम पूज्य गुरुदेव एवं समाधिस्थ स्वामी सत्यव्रतानन्द जी की चरण वन्दना करते हुये परमपिता परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि मैं अपने कर्तव्य पथ पर सतत अग्रसर रहूँ। हरि ॐ तत्सत्।

*योगविद्या, जनवरी 1974*



'सबने खोया, शायद मैंने भी खोया, पर तुमने उन्हें अपने में पाया है।' पूज्य गुरुदेव के ये शब्द मेरे अन्तःकरण में अंकित हो गये हैं। सांसारिक आँधी-तूफान में जब डगमगाने लगती हूँ तो गुरुदेव के यही शब्द प्रेरणा देते हैं।

समय उड़ा जा रहा है। प्रकृति का नियम यथाविधि चलते ही रहता है। जिस प्रकार सूर्य-चन्द्र, दिन-रात नियम से बंधे हैं, ठीक उसी प्रकार प्राणी मात्र का भी उदय एवं अस्त होता है। समय किसी के रोके नहीं रुकता। वर्ष का अविस्मरणीय अंतिम दिन, 31 दिसम्बर 1974 आ गया। सन् 1971 का यह दिन रोंगटे खड़े कर देने वाला वह दिन था जिसने मुझे अथाह जल के भँवर में डुबो दिया। स्वामी सत्यव्रतानन्द जी के महाप्रयाण से पुरजन-परिजन, देश-विदेश के बन्धुजन कातर हो उठे। मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी हो उठी। 'कर्मयोगी की सहधर्मिणी हो, मोह-माया से ऊपर उठो'–प्रभु का आदेश मिला। इसी दिव्य आदेश का पालन करते हुए अवधूत बनकर उनके शेष कार्यों को पूर्ण करने में तत्पर हूँ। प्रभु ने ऐसा मीठा जहर पिलाया कि मरकर भी जी रही हूँ।

स्वामी सत्यव्रतानन्द जी निष्काम कर्म करते थे। यही उनकी पूजा थी। वे सच्चे अर्थों में कर्मयोगी थे। जीवन का हर पल शुभचिंतन में लगाते। निरर्थक बातों एवं कार्यों में उन्हें तनिक भी रुचि नहीं थी। जो ऐसा करते उन्हें भी फटकार देते या उस स्थान से चले जाते। नेत्रों से अशुभ दृश्य का दर्शन, कर्णों से अप्रिय शब्द-श्रवण या वाणी का असंयम उनमें कभी देखा-सुना नहीं गया। जीवन के प्रभात से अस्त तक उनका हर कार्य 'बहुजन हिताय-बहुजन सुखाय' ही रहा।

पूज्य गुरुदेव के आशीष से स्वामी सत्यव्रतानन्द जी का अलौकिक व्यक्तित्व ही 'बालस्वामी निरंजन' के रूप में जन-कल्याण हेतु अवतरित हुआ। उन्हें भविष्य का संकेत था। कहा करते– 'निरंजन के कार्यों को मैं आत्मा की आँखों से देखता हूँ और सदैव देखता रहूँगा, केवल तुम उन्हें भौतिक नेत्रों से भी देख सकने में समर्थ रहोगी।' ये शब्द मुझे झकझोर देते। पर मैं उनके गूढ़ अर्थ को समझ न सकी थी। वे आज भी निरंजन को दिव्य दृष्टि से देख रहे हैं। पर मुझे 'संजय' बनना पड़ा।

स्वामी सत्यव्रतानन्द जी के अनमोल वचन एवं अमूल्य विचार, उनकी डायरी से चुनकर 'सत्य सुमन' के अंतर्गत उनकी प्राणप्रिय पत्रिका 'योग विद्या' के माध्यम से जन-जन की आत्मा तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है। पूज्य गुरुदेव के मिशन की सेवा ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। यही है मेरी श्रद्धांजलि उस देवतुल्य ब्रह्मलीन स्वामी सत्यव्रतानन्द जी के चरण-कमलों में। ईश्वर मुझे सेवा हेतु भविष्य के कार्यों के लिये बल दे। यही विनम्र प्रार्थना है।

*योगविद्या, जनवरी 1975*



23 जुलाई को गुरु पूर्णिमा है, जिसे मानव ही क्या देवता भी मनाते हैं। व्यास पूजा के नाम से यह सतयुग से चली आ रही है। सन् 1923 को एक सन्त का स्वर्ण युग लाने के निमित्त अवतरण हुआ। श्री स्वामीजी ने अपनी एक शिष्या से कहा था कि मेरा जन्म कब हुआ, किसी को पता नहीं, और तुम तो अभी गर्भ में ही हो। संसार में केवल मुठ्ठी भर लोग हैं जिन्होंने अभी जन्म लिया है।

गुरुदेव के चरणों के समीप रहकर जो समझा वह यही कि जब हम उनका जन्म-दिवस मनाते हैं उसका यही मतलब है कि जो मार्ग उन्होंने बतलाया है, जो दिशा उन्होंने निर्दिष्ट की है, जो उनका स्वप्न है, और जिस संकल्प को लेकर उनका क्षण-प्रतिक्षण और श्वास-प्रश्वास समर्पित है, उसमें हम लोग अपना कितना योगदान दे सकते हैं। अपने जीवन में कठोर साधना और अनवरत श्रम से जो महान् गुण उन्होंने उपार्जित किये हैं, उनके संदर्भ में हम अपने जीवन का कितना मूल्यांकन कर सकते हैं।

धर्म और जाति की मोटी दिवारों को लांघकर योग विश्व के कोन-कोने में जो फैल रहा है उसका रहस्य पूज्य गुरुदेव की संकल्प शक्ति ही है। वे पर्वत को चूर-चूर करने तथा सागर को पी जाने की क्षमता रखते हैं। इसी संकल्प शक्ति के बल पर आज उन्होंने देश-विदेश में लाखों व्यक्तियों का विश्वव्यापी आन्दोलन खड़ा कर दिया है। वे ऐसे वट-वृक्ष हैं जिनकी शाखाएँ चारों दिशाओं में फैली हैं, जिनकी छाया में गृहस्थ पक्षियों की तरह नीड़ बनाकर अलमस्त रहते हैं और साधक-संन्यासी विश्रांति पाते हैं।

ऐसे विशाल वट-वृक्ष के शतायु होने की कामना करना अपने लिये आशीर्वाद माँगना ही तो है।

*योगविद्या, जुलाई 1975*



राजनाँदगाँव के इतिहास में एक स्वर्ण कड़ी और जुड़ गई जब 7 से 9 नवम्बर, 1975 तक योग सम्मेलन सम्पादित हुआ। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेव ने कहा, 'सर्वप्रथम मैं परिव्राजक के रूप में राजनाँदगाँव आया। उस समय यहाँ के एक साधारण व्यक्ति से मेरा परिचय था।'

याद आए ये शब्द, 'मेरा नाम सत्यम् है, तुम्हारा नाम है सत्यव्रत। तुममें मेरे व्रत की विशेषता है।' संत के अंत:करण के इन शब्दों ने एक साधारण व्यक्ति को सफलता के उच्च शिखर पर पहुँचा दिया। संत ने सत्यम् का व्रत लिया था, उसे निभाया भी, क्योंकि उनके साथ धर्म को निभाने के लिए 'सत्यव्रत' रूप में शक्ति भी थी। शक्ति को जगाकर व्रत की रक्षा करने की याद दिलाने वाले, चिर आनन्द में लीन, सत्यम् के कृपापात्र, महासंत

सत्यव्रत राजनंदग्राम के एक साधारण व्यक्ति ही तो थे– 'पाई जो सुवास निर्मल है, यह संतों की संगति का फल है।'

*गुरु चरणों की छाया में, जहां न मरना है, न जीना है।*
*न आना है न जाना, यह सब इस दुनिया का बहाना है॥*

बहाना ही तो है दुनिया का। वर्ष-महिना-दिन-तारीख, चक्र-सा घूम रहा है। सूरज और चाँद भी चक्र चला रहे हैं। इसी चक्र में आ गया 31 दिसम्बर 1975। लगता है 31 दिसम्बर 1975 न होकर 1971 है। सन् 1971 का अन्तिम दिन जो मेरे जीवन के लिए भयानक अभिशाप बनकर आया और विधि ने विपत्ति के अथाह समुद्र में डुबा दिया। भाग्य विधाता मेरी भाग्य रेखा लिखते ठिठक गए पर गुरुदेव ने लिख दिया, अप्रत्याशित को सहना ही मानव जीवन है। पूज्य गुरुदेव के इन शब्दों ने डूबते को सहारा दिया।

*मरण है अवकाश जीवन कर्म, क्यों न समझूं मैं पिता का मर्म।*
*व्याप्त है मुझमें पिता के प्राण, शोक से माता तुम पावो त्राण॥*

निरंजन के इन शब्दों ने जीवन को सहारा दिया,

*वे हैं अशोच्य अनुकरण योग्य, अभिमान योग्य अनुसरण योग्य।*

और ये शब्द जीवन की गाड़ी को चलाने लगे। पूज्य गुरुदेव के शब्द– 'आशापूर्ण सबल भावनाओं को लेकर सब काम तुम्हें हाथ में उठाना है। सत्यव्रत जी जो काम चालू करके गए हैं उसे और बढ़ाना है, आगे बढ़ना है तुम्हें। मैं यही चाहता हूँ।' यह गुरुदेव का आदेश है। ब्रह्मलीन सत्यव्रत जी के विशाल व विकसित कार्य का संचालन वे स्वयं कर रहे हैं, मैं तो निमित्त मात्र हूँ। पूज्य गुरुदेव ने कहा– 'कर्मयोगी की शक्ति हो, मोह-माया से ऊपर उठो।' प्रभु के दिव्य आदेश का पालन अवधूत बन कर रही हूँ। उनकी निज आत्मा निरंजन उनकी इच्छा व आदर्शों का ही विस्तार कर रहा है। कर्त्तव्य पालन में माता कौशल्या सब सहन कर लेगी, प्रभु राम की माँ जो है। कर्मयोगी स्वामी सत्यव्रतानन्द जी की सहधर्मिणी है और है संत सत्यानन्द महाराज की कर्मयोगिनी शिष्या।

अभिन्न आत्मा स्वामी सत्यव्रतानन्द जी की इच्छानुसार ही जीवन का कार्य तथा उनके अनमोल व अमूल्य विचार, उनके प्राण-प्रिय पत्रिका 'योग विद्या'

के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाने का प्रयत्न करती हूँ। सेवा धर्म ही मेरे जीवन का लक्ष्य है, यही है देव तुल्य ब्रह्मलीन स्वामी सत्यव्रतानन्द जी के चरणों में मेरी श्रद्धाँजलि। पूज्य गुरुदेव की चरण वंदना करते हुए परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि सतत् कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होती रहूँ।

*योगविद्या, जनवरी 1976*



देव, तुम्हारे अधूरे कार्य को पूर्ण करने का प्रयास ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। जीवन का चक्र चल रहा है, समय बीत रहा है, लगता है कल की ही बात है, पर 5 वर्ष का लम्बा समय बीत गया है, कैसे समय बीता व कैसे काम होते रहा, समझ से परे है – मेरे पास सोचने-समझने का समय भी तो नहीं है।

जब अथाह समुद्र में डूब रही थी, गुरुदेव ने सहारा देकर कहा, 'सत्यव्रत जो काम चालू कर गये हैं उसे बढ़ाना है, अवधूत बनकर उनके काम को पूरा करना है।' मैंने उनके आदेश का पालन किया, क्योंकि मुझे हर क्षण, हर पल तुम्हारा सहारा मिला। मेरे माध्यम से सब कुछ तुम्हीं करते रहे, श्रेय मुझे मिला। लोगों की यह धारणा निर्मूल हो गई कि प्रेस का काम नहीं चल सकेगा।

16 वर्ष पूर्व पूज्य गुरुदेव ने 2 नन्हें पौधे 'योग विद्या' व 'योगा' नाम देकर तुम्हें सौंपे थे। उसे अपने खून से सींच कर बड़ा किया, वह आज वटवृक्ष-सा देश-विदेश में फैल गया है। इन्हीं आशाओं के प्रतीक पौधों को तुम्हारी इच्छानुसार गुरुदेव को कई बार सौंपना चाहा, और अब उन्होंने उसे अपने संरक्षण में ले लिया है। जनवरी 77 से 'तेरा तुझको सौंपता क्या लागे है मोर।' एक काम पूरा हुआ, कुछ और अधूरे काम हैं उन्हें भी जल्द-से-जल्द पूरा कर सकूँ, यही कामना और प्रार्थना है, अपने गुरु और गोविन्द के चरणों में –

*मेरी भाव तूलिका स्वामिन, तेरी जीवन रेखा।*
*शून्य पटी पर अज्ञ चितेरा, लिखता मन का लेखा॥*
*गीत बने मेरी उच्छवासें, गीत बने हिय के स्पन्दन।*
*देव तुम्हारे ही गौरव के, गीत बने सब हास्य रुदन॥*

*योगविद्या, दिसम्बर 1976*

# मेरा स्वप्न पूरा हुआ

मुझे बहुधा स्वप्न में एक प्रियदर्शी संत के दर्शन होते थे, कुछ संकेत भी मिलते थे, पर समझ नहीं पाती थी कुछ भी। सोचती थी, बचपन से ही संत-महात्माओं का जीवन चरित्र पढ़ती हूँ और उन पर श्रद्धा रखती हूँ, विशेषकर संत ज्ञानेश्वर और जगतगुरु शंकराचार्य की जीवनी विशेष प्रिय लगने के कारण ही इस तरह के स्वप्न आते रहते हैं।

2 अप्रैल 1953 की शाम को ऋषिकेश पहुँचने पर गंगा किनारे स्वामी शिवानन्दजी के पास खड़े एक तरुण तेजस्वी संन्यासी को देखते ही ऐसा लगा जैसे मेरे स्वप्नलोक का शंकराचार्य यही है। थोड़ी देर बाद पता चला कि इनका नाम स्वामी सत्यानन्द सरस्वती है। 'योग-वेदान्त' के सम्पादक स्वामी सत्यानन्द जी थे, उनसे पत्र व्यवहार भी प्रारम्भ हुआ। अप्रैल 1956 में स्वामी जी परिव्राजक होकर देहली में प्रवास कर रहे थे, हमने उन्हें राजनाँदगाँव पधारने का आग्रह किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। 23 मई को देहली में बुद्ध जयन्ती के अवसर पर उनका प्रोग्राम रखा गया था, इसलिये उन्होंने जून में आना स्वीकार किया।

6 जून की सुबह सूर्य की प्रथम किरण के साथ ही उनका शुभ आगमन हुआ। सत्यव्रत जी मुझे इधर-उधर सूचना देने का काम बता कर स्टेशन चले गये। मेरा मन भी छटपटाने लगा और मैं सब काम छोड़कर स्टेशन चल पड़ी। स्वामीजी बाहर आ ही रहे थे कि मुझे देखकर उन्होंने कहा – माताजी आप ...। इसके आगे मुझे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा। मन, प्राण, आंखें कहने लगीं, यही है आदिगुरु शंकराचार्य जो कह रहे हैं, 'माँ अपने वायदे के अनुसार में आ गया ...।' मेरे जीवन की एक बड़ी भारी कमी पूरी हो गई। मैं माँ हूँ, मेरा शंकराचार्य, मेरा ज्ञानेश्वर मेरे घर आ गया। मेरे जीवन की दिशा ही बदल गई। हमने उनसे बहुत कुछ सीखा, समझा और पाया, पर अभिलाषा बढ़ती ही गई। कितनी यात्रायें कीं, साथ रहे, शिविर लगाये, कैम्प किये पर लगता, स्वप्न अभी स्वप्न ही है।

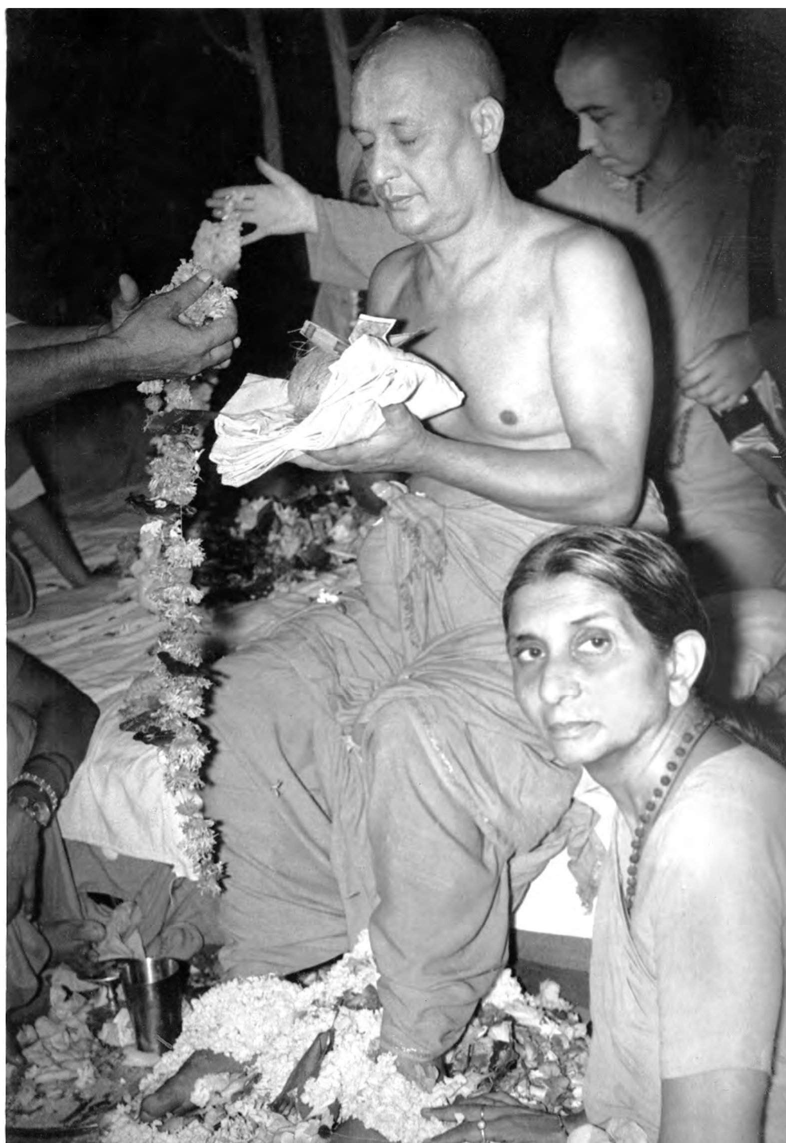
मुंगेर का आश्रम, अखण्ड ज्योति, देश-विदेश में आश्रम बने, ज्योति जले, योग शिविर, योग सम्मेलन, तथा योग आन्दोलन की जबरदस्त लहर फैलने लगी। देश-विदेश के साधकों का अम्बार, 9 माह, 3 माह का

सत्र, फिर प्रारम्भ हुआ 3 वर्ष का संन्यास सत्र, जिसमें देश-विदेश के 108 साधकों ने अपने को एक महान् यज्ञ के निमित्त होम दिया। इस यज्ञ के होता, बालक, युवा, वृद्ध, नर-नारी सभी हैं, पर वे अब बालक-बालिकायें, या युवक-युवतियाँ न होकर केवल मानव शरीर में पवित्र आत्मायें हैं। दुनिया वालों ने साधु-संन्यासियों के बारे में अभी तक जो भी देखा-सुना था उससे भिन्न नजारा देख कर आश्चर्यचकित हो, आगे देखने और उनके पीछे चलने का संकल्प लेने लगी।

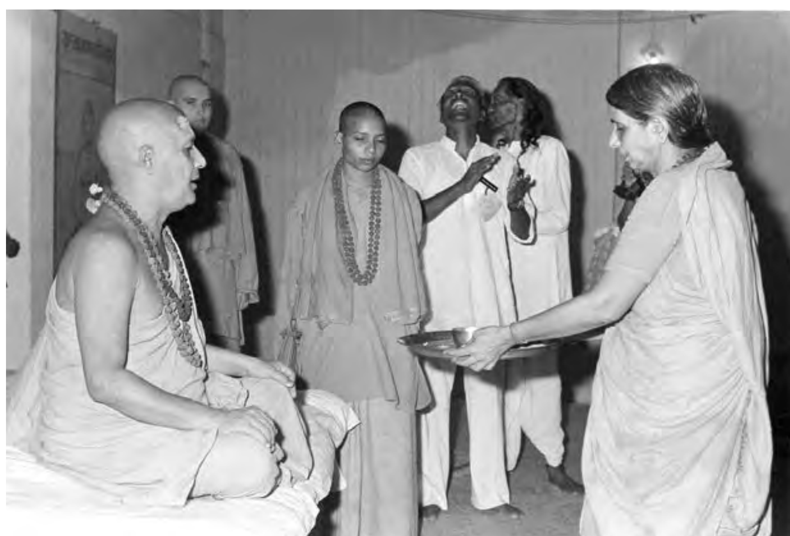
कौन जानता था 1956 में वामन अवतार जैसा वह साधु, जिसने अपने मोहक रूप और प्रिय वाणी से सबको मोह लिया था, जो बच्चों के साथ खेलकर उनका कन्हैया बन गया; बड़ों के मध्य, गीता-भागवत, वेद-पुराण की बातें सुनाकर, आसन-प्राणायाम सिखाकर, वेद-उपनिषद की गूढ़ से गूढ़ बातें भी सरल तरीके से समझाने वाला, हमारे साथ रहने वाला, हमारा पूज्य व प्रिय संन्यासी एक दिन देश-विदेश में योग क्रांति मचा देगा। पर वे तो लौह संकल्प लेकर संन्यासी बने थे और गुरु स्वामी शिवानन्द जी से 'दिग्विजयी' होने का जो आशीर्वाद प्राप्त किया है, वह वट वृक्ष सा फैल रहा है।

स्वामीजी योग संस्कृति के पुनरुत्थान के लिये कटिबद्ध हैं। यौगिक नियमों को आधार बनाकर वे संस्कृति और स्वास्थ्य की नींव तैयार करते हैं। प्राचीन विद्याओं को पुन: प्रकाश में लाने में कितना बड़ा योगदान है। योग के खोये हुये गौरव को फिर से नये युग में, उसके मूल्य की रक्षा करते हुये पुनर्स्थापित कर रहे हैं। योग को विज्ञान के साथ तौलकर संसार को दिखा दिया कि योग सतयुगीय नहीं, कलियुगीय है, और हमारे आधुनिक समाज के लिये अत्यन्त उपयोगी विद्या है। विज्ञान व एटम के युग में भी योग उतना ही उपयोगी है, जितना प्राचीन ऋषियों के युग में था। स्वामीजी ने लोगों को चैलेंज दिया है कि योग पर अथौरिटी के साथ बोलने के पहले आओ, कुछ अभ्यास करो।

स्वामीजी अपने पास आने वाले सभी दु:खी, आर्त, युवक, वृद्ध, बीमार और कमजोर लोगों को वही रास्ता बतलाते हैं जो उनके लिये सर्वोत्तम मार्ग होता है। मनुष्य कितना दु:खी है और उसे सच्चे ज्ञान की कितनी जरूरत है, यह वे तुरन्त ही पहचान लेते हैं। उनमें संन्यासी की मस्ती, योग का तेज और योग की धुन है। यह उनकी बातें नहीं, योग आन्दोलन की हवा है, जो मुंगेर से शुरू होकर देश-विदेश में फैलते हुये राजनाँदगाँव में बहुमुखी गंगा की धारा-सी बहने लगी है।













मेरा स्वप्न साकार हुआ। योग आन्दोलन के प्रणेता परमहंस स्वामी सत्यानन्दजी का 23 अप्रैल को मध्याह्न बेला में सूर्य की प्रचण्ड किरणों के साथ राजनाँदगाँव में प्रवेश हुआ। लोगों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। मैंने भी उनका स्वागत उन्हीं के द्वार पर किया। पूज्य गुरुदेव का प्रवास यहाँ चार महीने तक होगा। जून में उन्हें योग सम्मेलन में आयरलैण्ड जाना होगा, जुलाई में वापस राजनाँदगाँव पधारेंगे तथा गुरु पूर्णिमा के पावन पर्व पर वे राजनाँदगाँव योग विद्यालय का विधिवत् उद्घाटन करके पवित्र अखण्ड ज्योति प्रज्वलित करेंगे। अपने शिष्यों को चातुर्मास की शिक्षा व साधना भी यहीं करायेंगे। 2500 वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध ने अपने हजारों शिष्यों को वैशाली में जो शिक्षा दी थी, वही सौभाग्य राजनाँदगाँव को प्राप्त हो रहा है। इतिहास के पन्ने हमारे सामने पलट कर आ गये हैं। हमारे दरवाजे पर गंगा लहरा रही है, हमारी योग्यता और आवश्यकता के अनुसार जल हमें ले ही लेना चाहिये। मेरा स्वप्न पूरा हुआ।

*सौ सौ अंधियारी रातों में, तेरा ध्यान कहीं सुन्दर है।*
*मन्दिर मस्जिद गिरजा में, मन के भगवान कहीं सुन्दर हैं।*

*योगविद्या, मई 1971*



दिन-रात, धरा-दिशा, वायु, सभी गतिशील हैं। क्रीडा से कोई नहीं थकता। यह गति अनादि है। देह विलीन हो जाते हैं, देह के सृजन-विनाश की गति भी अनन्त है। यह स्वप्न का संसार है। तन्द्रा-सुषुप्ति और पुनः तन्द्रा-सुषुप्ति, कहीं जागृति का नाम नहीं, जीवन स्वप्न के तत्त्वों से बना है। यही संसार का मायाजाल है।

गुरु जागृति का संदेश लेकर आता है। वह जागृति जो ज्ञान है। गुरु जागृति का प्रकाश बिखेरते आता है। गुरु आह्वान देता है – मैं स्वप्न से परे हूँ, मैं विश्व से परे हूँ, मैं तुम हूँ, तुम मैं हो। मैं तुम्हें अज्ञान के पार अनन्त प्रकाश की ओर ले जाऊँगा, क्योंकि जीवन छोटा है और वासनाएँ द्रौपदी के चीर की तरह लम्बी।

*योगविद्या, जून 1972*

# गुरु-तत्त्व-दर्शन

जीवन का कोई भी कार्य बिना मार्गदर्शक या गुरु के सुचारु रूप से नहीं हो सकता। बालपन में माँ ही गुरु का कार्य करती है। बालक जैसे-जैसे बड़ा होता है, उसे दूसरों के मार्गदर्शन में चलना पड़ता है। छोटे-से-छोटे कारीगर से लेकर बड़े-से-बड़े इन्जीनियरों के भी गुरु होते हैं जिनके मार्गदर्शन में वे उस सीमा तक पहुँचते हैं।

प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक के सभी शास्त्रों ने गुरु की महिमा और गुरु-शरणागति को स्वीकारा है। गुरु तत्त्व का विषय बड़ा गहन है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम और कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने भी 'गुरु' के गुण गाये हैं। सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा, पालनहार भगवान विष्णु और संहारक शंकर भगवान भी गुरु के ध्यान में आनन्द मग्न रहते हैं। संत कबीरदास गुरु को ईश्वर से अधिक महान् मानते हैं और उनकी चरण-वंदना को प्राथमिकता देते हुये कहते हैं–

*गुरु-गोविन्द दोनों खड़े, काके लागू पाय।*
*बलिहारी गुरु आपनो, जिन गोविन्द दियो बताय॥*

तीनों लोकों में गुरु ही गति है। वही शिव और शक्ति है, वही देवी और देवता है। जीवनमुक्त होने पर भी गुरु ही सद्गति है। उसके वचन वेद तुल्य हैं। उसका स्थान कैलाश है। उसका प्रत्येक कार्य पवित्र और पुण्यमय होता है। गुरु-गृह चिंतामणि है जिसकी प्रदक्षिणा सप्तदीपा पृथ्वी की प्रदक्षिणा तुल्य है। प्रात:काल श्रद्धायुक्त गुरु को प्रणाम करने वाला व्यक्ति या गुरु के निवास-दिशा की ओर मुख करके प्रणाम करने वाला व्यक्ति इहलोक और परलोक में सिद्ध होता है।

पुराणों में पड़ा, देखा एवं सुना गया है कि साधकों को उनकी प्रकृति के अनुसार ही गुरु-प्राप्ति होती है। उन्हीं से वे दीक्षित होते हैं। दीक्षा के कई रूप हैं, जैसे स्थूल दीक्षा, सूक्ष्म गुरु दीक्षा एवं कारण और महाकारण की दीक्षा। उच्च श्रेणी की दीक्षा साक्षात् निरंजन ही परमहंस गुरु के रूप में आकर देते हैं। ऐसा गुरु वह ज्योति है जो हमारे अज्ञानरूपी तम का नाश करती है। उस प्रकाश में मानव-जीवन का प्रत्येक क्षण दिव्य बन जाता है।

अनेक व्यक्तियों को उनकी पुण्य तपस्या से यदा-कदा स्वप्न में शिवलिंग या शिवमंदिर के दर्शन होते हैं। स्पष्ट है कि स्वप्न-द्रष्टा आध्यात्मिक पथ के राही हैं एवं उन्हें गुरु की आवश्यकता है। उन्हें सद्गुरु की खोज करनी चाहिये। ईश-कृपा हो तो गुरु-आगमन की सूचना-प्रेरणा दिव्य अनुभूतियों द्वारा मिलती है। साधक की योग्यतानुसार गुरु-प्राप्ति होती है। गुरुदेव स्वयं उस पर कृपा दृष्टि रखते हैं। सिद्ध और अदृश्य ऋषिगण अदृश्य भाव से जिज्ञासुओं की सहायता उनकी योग्यता के अनुसार करते हैं। समय आने पर प्रत्यक्ष दर्शन देकर योग-दीक्षा देते हैं। योग्य साधकों का चुनाव कर भावी कल्याण कार्य के लिये तैयार भी करते हैं।

भारतवर्ष की विशेष आध्यात्मिक परम्परा है। अन्य देश भी आज गुरुतत्त्व का महत्त्व स्वीकारने लगे हैं। साधना हेतु गुरु परम्परा एवं गुरु कुलों का विशेष महत्त्व है। गुरु बिना ज्ञान नहीं होता।

'गुरु' शब्दोच्चारण करते समय हमारे सामने 'गौर वर्ण तेजस्वी तपोपूत मंत्र-तंत्र सिद्ध परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती' की दिव्य मूर्ति उभर आती है। वे दिव्य एवं सरल भी हैं। आज के संघर्षमय जीवन में व्यथित मानव को जैसे पथ प्रदर्शक गुरु की आवश्यकता है, हमारे स्वामी जी वैसे ही हैं। वे यथार्थ में गुरु होने के योग्य हैं। वे स्वामी के समान रक्षा कर सकते हैं। मनुष्य के दोषों को शुद्ध कर गुणों को उभारने का सामर्थ्य उनमें है।

परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी जगद्गुरु शंकराचार्य की भांति महान ज्ञानी और त्यागी हैं, वे जीवन-साधना के साकार प्रतीक हैं। वे अद्वैतवाद के अभिनव भास्कर हैं। वे सदैव सत्कार्य में संलग्न रहते हैं। उन्हें हमेशा अपने गुरु स्वामी शिवानन्द जी के ज्ञान-यज्ञ की सुधि रहती है। अपना एवं शिष्यों का कार्य स्वयं करते हैं, यही शिक्षा शिष्यों को भी देते हैं। हमेशा मानव-कल्याण की बात सोचते हैं और उस पर शोध भी करते हैं। समय-समय पर देवशक्तियाँ इनका मार्ग दर्शन एवं सहायता करती हैं। जीवन बालकों का सा सरल है तभी लोगों ने इन्हें *'मैजिक चाइल्ड'* की उपाधि दी है। जीवन में आराम का नाम नहीं। सम्मेलन-शिविर में प्रात: 4 बजे से 12 बजे रात तक लोगों के दु:ख-दर्द सुनते एवं उनकी उलझनों को सुलझाते हैं। हजारों व्यक्ति उन्हें गुरु मानकर नतमस्तक होते हैं। आस्तिक हो या नास्तिक, गुरुतत्त्व के समक्ष सिर झुकाने में ही सद्गति है।

*योगविद्या, अगस्त 1972*

# योग आंदोलन के बढ़ते कदम

'योग विद्या' के इस अंक के साथ ही हम, परमहंस स्वामी सत्यानंद सरस्वती द्वारा संस्थापित एवं संचालित अंतर्राष्ट्रीय योग आंदोलन के ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। कर्म ही सच्चा 'योग' है। फल की चिन्ता किये बिना कर्म करो, एक न एक दिन अंधकार दूर होगा ही। इसी विश्वास से बढ़ते जा रहे हैं। दस वर्षों की अवधि बहुत लम्बी नहीं होती। इस छोटी-सी अवधि में ही हमारे मिशन ने मानव विकास को एक नई एवं व्यावहारिक दिशा दी है।

विश्व इतिहास इस सत्य को अवश्य स्वीकारेगा कि परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ही प्रथम संत एवं सिद्ध योगी पुरुष हैं, जिन्होंने 'योग' को उसकी रहस्यमयता के आवरण से मुक्त कर सही वैज्ञानिक पृष्ठभूमि में पुनर्स्थापित किया। वर्तमान युग में मानव कल्याण के लिये उन्होंने 'योग' की आवश्यकता महसूस की तथा उसे मानव-समाज के लिये सहज एवं सरल बनाने का प्रण किया।

इसी उद्देश्य और प्रयोजन से पूज्य स्वामी जी अपने शिष्यों एवं सहयोगियों के साथ तन-मन-धन से संलग्न हैं। इस लोक-कल्याण-कार्य में उनके गुरुदेव, महामण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द सरस्वती का मंगल आशीष उनके साथ है।

योग विज्ञान भारत का अति प्राचीन ज्ञानकोष है। अन्य विज्ञानों की भांति इस विज्ञान में भी नित-नवीन गवेषणा और खोज जारी है। पूज्य स्वामी जी की चमत्कारिक आध्यात्मिक शक्ति ने इस विद्या को जनसाधारण की वस्तु बना दिया है। योग विद्या का क्षेत्र अब सिर्फ गृह-त्याग किये हुये साधु-संन्यासियों तक ही सीमित नहीं रह गया है। पिछले दस वर्षों में ही इस विद्या के प्रति लोगों में विश्वास एवं श्रद्धा उत्पन्न हो गई है तथा उसकी उपादेयता का सच्चा मूल्यांकन लोगों ने किया है।

'योग ही भविष्य की संस्कृति है'– इस घोषणा के साथ ही दस वर्ष पूर्व श्री स्वामी जी ने अपने मिशन का बीजारोपण किया था। जिस द्रुत गति से इस आंदोलन ने देश-विदेश में अपने कदम बढ़ाये हैं उसका अवलोकन करने पर पूर्ण विश्वास होता है कि हमारा मिशन प्रगति-मार्ग पर बढ़ते हुये

अपने लक्ष्य के समीप पहुँच रहा है। श्री स्वामी जी तथा उनके शिष्य-गण अल्प साधनों से ही सारे विश्व में लोकप्रियता प्राप्त करते जा रहे हैं। भविष्य की सम्भावनायें असीम, अपरिमित एवं अवर्णनीय हैं।

योग-आन्दोलन की प्रगति का लेखा-जोखा 'योगा' एवं 'योग विद्या' के पृष्ठों पर प्रति माह अंकित किया जाता है, अतः उनकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं। त्रिवर्षीय संन्यास प्रशिक्षण, नौ मासिक प्रशिक्षण, त्रैमासिक प्रशिक्षण, पन्द्रह दिवसीय नवीन प्रयोग सत्र, आदि के परिणाम स्वरूप देश-विदेश में अनेकों यौगिक केन्द्रों की स्थापना की गई तथा संस्थायें खोली गईं। योग-प्रतिभा-युक्त संन्यासी गण इन संस्थाओं में योग प्रचार का कार्य कर रहे हैं।

पूज्य स्वामी जी का मिशन ईश्वरीय पथ है। इसका चरम अन्त है– 'मानव समाज का दिव्यीकरण।' अन्त तक यही उनकी साधना रहेगी। समस्त विश्व को वे 'एक परिवार' में बदल देना चाहते हैं। अपने मिशन के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है–

'हम एक ही परिवार के सदस्य हैं। हम अपने क्षेत्रों का विकास करना चाहते हैं। स्नेह एवं विशाल दृष्टिकोण लिये हुये एक शुभ दिवस पर हम एक बड़े परिवार का निर्माण करेंगे। यह परिवार सद्कार्यों और आदर्शों पर आधारित होगा। जिस प्रकार प्राचीन काल में अनेक स्त्री-पुरुष साथ में रहते थे, सम्मिलित रूप से त्याग करते थे, अपने आप की आहुति दे देते थे, ठीक उसी भांति हम सबको मिलकर सद्कार्य करना है तथा मानवता के सुख एवं शांति की ज्योति सदैव प्रज्ज्वलित रखने के लिये अपना व्यक्तिगत आध्यात्मिक योगदान देना है।'

पूज्य स्वामी जी के उपर्युक्त कथन के प्रति सदैव जागृत रहकर क्रियाशील रहना ही अंतर्राष्ट्रीय यौगिक मित्र मण्डल के प्रत्येक सदस्य का प्रथम कर्त्तव्य है। आइये इस कर्त्तव्य के पालन हेतु दृढ़ निश्चयी बनें। पूज्य गुरुदेव के मंगल आशीष हम सबको प्राप्त हों।

*योगविद्या, जनवरी 1973*



# गुरु ज्ञान गंगा

*अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।*
*तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥*

श्री गुरु 'अखण्ड मण्डलाकार' हैं, सम्पूर्ण चराचर जगत् में व्याप्त हैं, 'तत्पद' (ब्रह्मपद) के दिखाने वाले हैं। गुरु गीता में यह स्पष्ट ही कहा है कि गुरु होने के योग्य वही है, जो अपने शिष्य को अन्धकार से निकालकर प्रकाश में ले जाये। महात्मा कबीर कहते हैं–

*गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाय।*
*बलिहारी गुरुदेव की जिन गोविन्द दियो लखाय॥*

महात्मा कबीर आगे कहते हैं–

*कान फूंका गुरु हद का, बेहद का गुरु और।*
*बेहद का गुरु जब मिले, तब लागे हरि का ठौर॥*

गीता के चौथे अध्याय के चौंतीसवें श्लोक में ज्ञानी और तत्त्वदर्शी गुरु के पास जाने का उपदेश है। ऐसे गुरु अत्यन्त दुर्लभ हैं पर काम तो उन्हीं से बनेगा। सच्चे गुरु का मिलना बड़ा कठिन है, और इसीलिये योग साधना भी कठिन है। ऐसे गुरु बहुत कम मिलते हैं जिनमें योग की शक्ति होती है, और अपने शिष्यों को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने की क्षमता होती है।

गुरु के रूप में पथ प्रदर्शन का नया मार्ग बताने के लिए भगवान नारायण आये गुरु वेदव्यास के रूप में। और तब से ही गुरु एवं गुरु पूर्णिमा दिवस का श्री गणेश हुआ। फिर तो हमारे भारत देश में एक-से-एक सन्त, महात्मा और अवतारी पुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनके महान् कार्यों और पथ प्रदर्शन से इतिहास भरा हुआ है। हमारे पुराणों, गीता, भागवत, रामायण तथा सन्तों की जीवनी से हमारा मार्ग दर्शन होता रहता है। जैसे-जैसे समय बीतते गया वैसे-वैसे सन्त-महापुरुष पथ प्रदर्शन करते गये। आदि गुरु शंकराचार्य आये, परमहंस रामकृष्णदेव आये, स्वामी विवेकानन्द जी आये, महर्षि रमण आये, अरविन्द आये, स्वामी दयानन्द आये। 'तू कहता कागद की

लेखी मैं कहती आँखों की देखी' – मैंने भी जिन्हें देखा है उन्हीं की बातें बताऊँगी। उनके बाद इस देवपूज्या धरती पर समकालीन शक्तियों के साथ महामण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द जी और परमहंस सत्यानन्द जी आते हैं। स्वामी शिवानन्द जी का विश्वास शिष्यत्व परम्परा को कायम करने में नहीं, समस्त मानव जाति को समानता का स्तर प्रदान करने में था। उन्होंने कहा, 'गुरु कैसा और शिष्य कैसा, हम और तुम ईश्वर की सन्तान हैं, हम सब भाई-भाई हैं।' इसीलिये गरीब-अमीर, विद्वान्-अनपढ़, दुराचारी-सुविचारी, सभी को एक साथ मिलकर चलने की प्रेरणा दी। मलाया को कर्मक्षेत्र के रूप में अपनाने वाले प्रख्यात सर्जन स्वयं की शक्ति को मूर्त रूप देने भारत आये। ऑपरेशन टेबुल पर शरीर को क्षत-विक्षत कर देखा और सोचा यह तो कार्य शरीर है, कारण शरीर कहाँ है। जीव को जान लेने के बाद उनकी दृष्टि जगत् की ओर लगी।

स्वामी शिवानन्द जी ने जिन्दगी के सभी क्षेत्रों को नई दृष्टि से देखा और उन्होंने अपने शिष्यों को कर्मक्षेत्र में उतरने की सलाह दी। वे कहते थे – जिसने संसार त्यागा, वह संन्यासी कैसा? जिसने अपने को ही देखा, वह द्रष्टा कैसा और जिसने दिखावे के लिये ही कौपीन धारण किया, वह साधु कैसा। अत: उनके संस्पर्श से योग ही नहीं, संन्यास, दृष्टि और जीवन की परिभाषा ही बदल गई। आवश्यकता थी केवल जन-जन तक पहुँचाने की।

अब योग दूत के रूप में स्वामी सत्यानन्द जी आते हैं। ये अच्छे शिष्य ही नहीं, गुरु स्वामी शिवानन्द जी के परम्परा में परिवर्तन करने वाले योद्धा भी हैं। स्वामी शिवानन्द जी के सामने ही कई परम्पराओं को तोड़कर यह सिद्ध कर दिया कि मान्यताओं को युग और परिस्थितियों के अनुरूप बदलना होगा। नम्रता को दिखावे की नहीं, अनुभूति की संज्ञा दी और गुरु के निर्वाण के पश्चात् कुछ कर्मों को स्वीकारा तथा कुछ कर्मों का त्याग किया, गुरु-शिष्य परम्परा के अनुसार।

इस तरह स्वामी सत्यानन्द जी क्रान्तिकारी संन्यासी के रूप में आये। स्वामी जी बाल्यकाल से ही जिज्ञासु थे। कॉन्वेट के उद्दण्ड विद्यार्थी से चलकर परमहंस तक, जीवन का हर चरण सफलता और उपलब्धियों का कर्मक्षेत्र बना। उनके सामने कई अधूरे कार्य थे जिन्हें पूरा करना था।

परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। भारतीय संस्कृति को लेकर चलें और विश्व को छोड़ दें तो यह भी ठीक नहीं।

विज्ञान उन्नति कर रहा है, इसलिये उन्नति के साथ भी चलना चाहिये। लोग आज योग को गलत समझ रहे हैं। अत: उन्हें योग के विभिन्न अंग-उपांगों को ठीक से समझाया जाये ताकि उनकी वास्तविक मान्यता स्थिर हो सके।

पाश्चात्य संस्कृति को हम आँख बन्द कर अपना रहे हैं। जो त्याज्य है उसका विष हमारे खून में मिलता जा रहा है।

व्यक्ति आज न शरीर से स्वस्थ है, न मन से। विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ तथा तनाव उसे घेरे हुये हैं। जहाँ संघर्षों की अग्नि में पड़कर कुन्दन जैसा दमकना चाहिये, वहाँ वह आत्महत्या कर लेता है। क्यों?

मनोविज्ञान के विद्यार्थी होने के नाते स्वामी जी सूत्र रूप में संस्कार को लेकर चलते हैं, और वे योग का विस्तार कर रहे हैं, जो रूढ़िवादी अर्थ के रूप में एक जगह समाहित हो गया था। वे प्रवृत्ति-मार्गीय योगी चाहते हैं। वे कहते हैं जो संघर्षों में न घबराये वही योगी है। जो परिस्थिति का दास नहीं सो योगी, जो संसार में रहकर संसारी न बने सो योगी, जो गृहस्थी में रहकर संन्यासी रहे वह योगी। इस तरह संन्यासियों की नई परिभाषा दी है।

स्वामी जी कहते हैं कि कर्म त्यागने की आवश्यकता नहीं। हर व्यक्ति हर परिस्थिति में उन्नति कर सकता है। हम अपने कर्म को ईश्वर नहीं मानते, इसी से हमें हर कार्य में ईश्वर की छाया नहीं दिखती। स्वामी जी कहते हैं कि जिसे हम शक्ति कहते हैं वह प्रतिभा है, और प्रत्येक मनुष्य में है। प्रतिभा का चक्र जब जागता है तो व्यक्ति में कई गुण प्रकट होते हैं।

स्वामी जी कहते हैं विभूतियों को खोजो, नये इतिहास का पता लगाओ, धर्म ग्रन्थों और दर्शनों को देखो, अच्छे साहित्य पढ़ो। गीता में जीवन तत्त्व को देखो और संसार में जल में कमल सा रहो। वे कहते हैं कि इतना ध्यान रहे कि संसार में भोग तुम्हें भोगना है, ऐसा न हो कि भोग ही तुम्हें भोगने लगें।

स्वामी जी की राय में सच्चा मानव बनने के लिये छोटी उम्र से ही संस्कार डाले जाने चाहिये। अत: वे युवकों को कहते हैं कि योग में तभी आ जाओ जब जीवन आरम्भ हो रहा है। जब जिन्दगी की आधी शताब्दी बीत चुकी हो, ज्ञान का स्रोत सूख रहा हो, प्रतिभा का केन्द्र आवरण में ढक गया हो, तब आने से क्या लाभ? इसीलिये स्वामी जी ने योग आन्दोलन चलाया है।

स्वामी जी अयोग्य शिष्यों की कतार नहीं चाहते। वे ऐसे सिपाहियों का दल चाहते हैं जिनके पाँव कठिनाइयों में भी चट्टान के समान दृढ़ रह सकें, जिनके हृदय में कर्त्तव्यों और उमंगों की ज्वाला उठती हो, जिनके हाथों में

इतनी शक्ति हो कि यदि वे दीवार पर मुक्का मारें तो दीवार भले न टूटे, प्लास्टर तो झड़े ही। स्वामी जी ऐसे भक्त चाहते हैं जिनके दिल में कर्त्तव्य व प्रेम की मशाल और भुजाओं में शौर्य का रक्त बहता हो।

स्वामी जी के अनुसार हर व्यक्ति एक अच्छा साधक बनने के लिए स्वतन्त्र है। आप चाहे किसी भी मत को माने, पर अपने चरित्र निर्माण के लिये आप स्वयं उत्तरायी हैं। महर्षि अरविन्द के शब्दों में, 'हमें ऐसा बनना है कि अतिमानस शक्तियाँ स्वयं उतरने के लिये बाध्य हो जायें।'

युग बदलता है, मानव बदलते हैं, गुरु और शिष्य भी बदलेंगे ही। पहले के सन्त-महात्मा गुफाओं में तपस्या कर के अमरत्व को प्राप्त करते थे। आज का युग कलियुग है। जैसे बच्चों को सिखाया नहीं, कर के दिखाया जाता है, वैसे ही गुरु को भी शिष्यों को सिखाना पड़ेगा।

पूजनीय स्वामी शिवानन्द जी के कुछ शब्द – युग की मांग बदल रही है, समाज कराहने लगा है। राजगद्दी छोड़कर राजा उतरें, भोग विलास छोड़कर संन्यासी। आज धर्म की सुखद छाया में विश्राम करना छोड़कर महन्त उतरें। जिस समाज ने हमें युग-युग से भोजन, वस्त्र, पूजा और श्रद्धा, धन और ऐश्वर्य साधन दिया, आज हम उसके प्रतिदान के लिये तैयार हो जायें। जो समाज हमें पालता-पोसता आया है, आज हमें उसका ऋण चुकाना है। साधु और संन्यासी विश्वशांति योजना के केन्द्र हैं। विश्व शान्ति में उनका योग सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। वे आक्रमणकारी जातियों को भी एकत्र और संघबद्ध करने के साधन हैं। सच्चे साधु-संन्यासियों के जीवन का उद्देश्य विश्वबंधुत्व का प्रचार करना है। संन्यासी का जीवन बहुत ही कठिन होता है। वह दोधारी खड्ग के समान है। संन्यासी यदि शुद्ध और सात्त्विक जीवन यापन नहीं करता तो वह सघन वन में पथभ्रष्ट पथिक के समान है।

और स्वामी शिवानन्द जी ने अपने शिष्यों को इसी तरह ढाला भी है। गुरु पूर्णिमा के पावन अवसर पर गुरु और शिष्य अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग हो जायें तो स्वर्ण युग समीप है।

*जय गुरु शिव गुरु हरि गुरु राम।*
*जगत गुरु परम गुरु सद्गुरु श्याम॥*

*योगविद्या, जुलाई 1973*

# सत्यम् शिवम् सुन्दरम्

*भारत विभूतियों का देश है। इसके आंगन में हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिक्ख, ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी, पारसी, मुसलमान और ईसाई साथ-साथ खेल रहे हैं। कभी उनमें मतभेद होता है और कभी वे मिल जाते हैं। आखिर बच्चों का ही खेल ठहरा। हिमालय के अंचल से लेकर उसके सिंधु तटों तक कई शताब्दियों से यह क्रीड़ा होती आ रही है। यह देश मनुष्य का है, किसी जाति विशेष का नहीं। मनुष्यों के धर्म सबके अपने होते हैं। सभी जातियों, सभी वर्णों, धर्मों और सम्प्रदायों का कुल योग मिलाकर भारत का पूरा रूप देखने को मिलता है।*

यह उद्‌घोष स्वामी सत्यानन्द जी ने अप्रैल 1953 में शिवानन्द आश्रम से किया था।

जो काम अपने युग में भगवान बुद्ध ने किया, चैतन्य महाप्रभु ने किया, जगत गुरु शंकराचार्य ने किया, सन्त ज्ञानेश्वर ने किया, वही काम आज के युग में स्वामी शिवानन्द जी ने किया है। भौतिकवाद की उमड़ती हुई लहरें जब मनुष्य के हृदय-तट को डुबा रही थी, उस समय अचल हिमाचल की तरह उठकर उन्होंने अध्यात्म, धर्म और योग का शंख फूंक दिया और योग-साहित्य का ऐसा बांध बनाना शुरू किया जो धीरे-धीरे सारे विश्व में फैल गया।

स्वामी शिवानन्द जी ने अध्यात्म के उस पक्ष पर जोर दिया जो भौतिकवाद का जवाब था, और विज्ञान से एक कदम आगे था। उन्होंने योग के पृष्ठ खोलकर उलझे दिमाग वाले बुद्धिजीवियों के सम्मुख रख दिया और इस युग में नास्तिकता की ओर बढ़ने वाले लोगों के कदमों को अध्यात्म का सन्देश देकर रोक दिया। उनसे प्रभावित होकर आज अनगिनत-असंख्य लोग धर्म-प्रचार, योग-साधना और योगाभ्यास में प्रवृत्त हुये हैं।

स्वामी शिवानन्द जी की जितनी बड़ी शिष्य परम्परा रही है, उतनी बहुत कम सन्तों की रही है। उनके बहुत ही योग्य, विद्वान् और शास्त्रज्ञ शिष्य आज देश और विदेश में योग का प्रचार कर रहे हैं। इस युग में योग को प्रकाश में लाने का श्रेय स्वामी शिवानन्द जी को ही है। यद्यपि भारत के कोने-कोने में अनेकों सन्त छिपे हैं, लेकिन जितना सर्वव्यापी प्रचार स्वामी

जी ने किया, अब तक किसी ने नहीं किया है। कुछ तो उन्हें पूर्ण अवतारी मानते हैं। उनकी एक जर्मन शिष्या को जर्मनी में ही हमेशा उनके दर्शन होते थे। वह न कभी भारत आई, न उन्हें कभी देखा ही था। स्वामी जी के सम्बन्ध में एक श्लोक भागवत में भी है, जिसमें उनकी जन्मभूमि, पट्टमडई में अवतार होने की बात कही गई है।

आज स्वामी जी का पार्थिव शरीर नहीं है, पर उनकी कीर्ति है, उनके शब्द हैं, उनका काम है, उनका नाम है, और उनकी संस्था है, जिसे उनके शिष्यों ने उन्नति के शिखर पर पहुँचाने का संकल्प लिया है। स्वामी शिवानन्द जी इस युग से विलग होकर अपने शिष्यों में व्याप्त हो गये हैं। श्रद्धेय स्वामी चिदानन्द जी शिवानन्द आश्रम का संचालन इस योग्यता से कर रहे हैं कि लोग उनका अभाव भूलकर भक्त में ही भगवान के दर्शन करने लगे। दिग्विजय करने का आशीर्वाद पाने वाले स्वामी सत्यानन्द जी ने पूज्य गुरुदेव का स्वप्न पूरा करने हेतु 'योग' को संस्कृति का रूप देने इन्टरनेशनल योग फैलोशिप की संस्थापना कर मुंगेर में शिवानन्द ज्योति जलाकर वेदान्त की 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की चिरन्तर सत्यता का निरूपण करते हुये, आध्यात्मिकता और ईश्वरवाद का शंख बजाया, और शून्यवाद तथा भौतिकता की मरुभूमि में तड़पते मानव को पुरातन सभ्यता, विशाल संस्कृति एवं योग के समीचीन तत्त्वों का परिदर्शन कराया। सतत् आनन्द विभोर रहने वाले सन्त ने जिस साहित्य का निर्माण किया, उस साहित्य का अध्ययन और प्रयोग करके शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति तथा अपनी भूली-बिसरी सम्पदा, 'योग' को प्राप्त करके लोग उनके पीछे चलने और हर तरह से सहयोग देने तत्पर हो गये।

संसार में अनेकों महापुरुष आये, अनेकों ग्रन्थ रचे, लेकिन उनका जीवन जन समुदाय से अलग ही रहा। स्वामी शिवानन्द जी ने अनुभव से समझा कि आज के मानव को जंगल के सन्त की नहीं, जन-जीवन के सन्त की आवश्यकता है। उन्होंने अनेकानेक साहित्यों के साथ ही अपने शिष्यों को इस तरह तराशा कि वे गीता के अनुसार योगी पुरुष सा लोकहित करते पृथ्वीतल पर स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते हुये, हमारी पुरातन संस्कृति 'योग विद्या' को पुनर्जीवन दे सकें।

श्रीमती विजया प्रेमनीति के शब्दों में 'एक संन्यासी का स्वप्न हमारे सामने साकार हो रहा है।' संन्यासी का आदर्श, गुरुदेव का आशीर्वचन,

भक्तों और शिष्यों के हृदय में संजोया चित्र सजीव होकर विशाल वट-वृक्ष सा फैल गया है।

स्वामी सत्यव्रतानन्द जी के शब्दों में गुरुदेव के संकल्पों की पूर्ति होती जा रही है। 1961 अक्टूबर में अन्तर्राष्ट्रीय यौगिक मित्र मण्डल की स्थापना करने के बाद प्रेस स्थापना का निश्चय किया। 1963 में राजनाँदगाँव में प्रेस लगा व 'योग विद्या' का प्रकाशन शुरू हुआ। साथ ही सत्यानन्द पब्लिकेशन के अन्तर्गत पुस्तकों का प्रकाशन शुरू हुआ। दूसरा प्रेस 1972 में मुंगेर में स्थापित हो चुका है, जहाँ सभी पुस्तकों का नवीनीकरण होकर कई भाषाओं में कितनी ही पुस्तकें छपी हैं। हर भाषा में लाखों फार्म छपकर देश-विदेश में वितरित हो चुके हैं। देश के दो छोर में दो प्रेस हो चुके हैं, आशा है और दो प्रेस भी जल्दी हो जायेंगे।

ऐसा आभास होता है कि स्वामी जी जो चाहते हैं (उनके सामने सोचने का तो प्रश्न ही नहीं है), वह हो रहा है, मानों नियति हाथ जोड़े खड़ी हो। स्वामी जी ने इच्छा व्यक्त की और काम पूरा हो गया। स्वामी सत्यव्रतानन्द जी ने गुरुदेव को समझा, हर तरह के सहयोग देने का संकल्प लिया और अपना सर्वस्व गुरुदेव के चरणों में सौंपकर, दो शरीर एक प्राण होकर काम करते रहे व अभी भी कर रहे हैं। जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्होंने अपना काम किया। उनकी आत्मा हर क्षण, हर पल गुरुदेव के साथ है।

गुरुदेव का कार्य हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता ही है, जिसका अनुभव सभी कर रहे हैं, और भविष्य में करेंगे। भगवान से मेरी प्रार्थना है कि विषम परिस्थिति में भी उनके चरणों में मेरी अटूट श्रद्धा रहे। भगीरथ जैसे योग गंगा को दर-दर व घर-घर बहाने वाले, और योग के कुम्भ सम्मेलन का आयोजन करने वाले दिग्विजयी स्वामी परमहंस सत्यानन्द सरस्वती तथा ऐसे शिष्य रत्नों को हीरा सा तराश कर जगत को देने वाले जगद्गुरु स्वामी शिवानन्द सरस्वती का अभिनन्दन करते हुये उनके चरणों में श्रद्धा के फूल-बेल पत्र समर्पित हैं तथा कोटिश: चरण वन्दना है।

*योगविद्या, सितम्बर-अक्टूबर 1973*



# अतीत की अनुभूति में

समय परिवर्तनशील है। युग बीतते देर नहीं लगती। अनेकों महापुरुषों का अवतार होता है और अपनी अमर गाथा सुनाकर देखते ही देखते वे आखों से ओझल हो जाते हैं। इतिहास के पन्ने उनका दिव्य संदेश सुनाते रहते हैं जिन्हें सुन मानव उस अतीत को पुन: पाना चाहता है और उसकी अनुभूतियों में खो जाता है।

8 सितम्बर 1887 को दक्षिण भारत के तमिल नाडु प्रदेश में ताम्रपर्णी नदी के किनारे एक ऐसे सूर्य का उदय हुआ जिसने देश-विदेश में अपनी रोशनी फैलाते हुए 'मुनि की रेती', ऋषिकेश में आनन्द कुटीर का निर्माण किया। माँ गंगा ने उनका अभिषेक किया। जगत् ने स्वामी शिवानन्द के रूप में उन्हें पाया।

वे यथार्थ में 'शिव' थे। उन्होंने कठोर साधना से शरीर को कसा, दीन-दुखियों की सेवा की तथा सैकड़ों ही ऐसे साहित्यों का सृजन किया जो आज विश्व के हर मानव के मानस को आलोकित करने में समर्थ हैं। ऐसे शिष्यों का निर्माण उन्होंने किया जो अपने महान् गुरु की गरिमा को प्राप्त कर उस सूर्य सा ही तेज फैला रहे हैं। ऐसे गुरु एवं शिष्य दोनों ही वन्दनीय हैं।

14 जुलाई सन् 1963 को महामण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द जी महाराज महासमाधि में लीन हो गए। वे दुनिया से विलग हुए, पर अपने शिष्यों की आत्मा में एकाकार हो गए। उनके शिष्य प्रतिपल अपनी आत्मा में ही उनके दर्शन करते हैं। उन्हीं के आदेश पर शिष्यों के रथ आगे बढ़ते हैं। गुरुदेव ने अपने प्रिय शिष्य की रजत जयन्ती बड़े धूमधाम से ऋषिकेश में मनाई थी। मुंगेर में आयोजित स्वर्ण जयन्ती भी उन्हीं की इच्छा का साकार रूप था। गुरु-भक्त-शिष्य गुरु के नाम का आश्रम और उन्हीं का अखण्ड ज्ञान-दीप प्रज्ज्वलित कर उनका संदेश जन-जन के हृदय तक पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है। इस महान् शिष्य का महामन्त्र है –

*ॐ तत्पुरुषाय विद्महे शिवानन्दाय धीमहि*
*तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्।*

शिवानन्दोपनिषद् के मंत्रद्रष्टा हैं ऋषि सत्यानन्द। महादेव शिवानन्द इनके इष्टदेव हैं। 'ॐ' उनका बीजमन्त्र है। महासमाधिमय परमज्ञान इनका उपदेश है जिसे व्यावहारिक जीवन में ही सिद्ध करना है। परमगुरु की प्राप्ति के लिए इनका योग है। महर्षि सत्यानन्द-सिद्ध-शिवानन्द गायत्री इनका उपास्थान है।

*इन नयनों का यही विशेष, वह भी देखा, यह भी देख।*

मुझे महानतम गुरु एवं उनके महान् शिष्य दोनों के दर्शन का सौभाग्य मिला। चरणों में बैठ सत्संग करने का सुअवसर भी मिला। माँ गंगा की पूजा-अर्चना करते हुए आशीर्वाद की प्राप्ति भी हुई। जीवन की डगमगाती नैया को नई दिशा मिली। जीवन-मार्ग के पहाड़, खाई, आँधी-तूफान के समय जो आत्मदर्शन मिला वह अकथनीय है। ऐसे असीम, अनन्त, ब्रह्म स्वरूप गुरु की मैं कोटिश: चरण वन्दना करती हूँ।

8 सितम्बर को श्री शिवानन्द जयन्ती यत्र-तत्र मनाई जाती है। इस जयन्ती की सार्थकता तभी है जब हम उन्हें अपनी आत्मा में उतारने का प्रयास करें। उनके उपदेशों को बारम्बार याद कर हमें भटके हुए मार्ग से लौटकर पुन: पुन: सन्मार्ग को पकड़ना है। यह प्रयास निरन्तर चलता रहा तो एक-न-एक दिन अवश्य ही उस सूर्य की कोई क्षीण किरण हममें प्रवेश कर जायेगी।

*रसरी आवत जात ते, सिल पर परत निशान।*

और तब जाकर हमारा मानव जीवनवास्तव में सफल होगा।

*योगविद्या, सितम्बर 1974*



स्वाति नक्षत्र का जल सर्प के मुख में हलाहल बनता है और सीप के उदर में पवित्र मुक्ता का रूप धारण करता है। क्या गुरु की वाणी ने शिष्य के अन्त:स्थल में पैठकर उसके विचारों को परिमार्जित कर रत्न बना दिया है? गुरु पूर्णिमा के दिन शिष्य को यही जाँचना है।

*योगविद्या, जुलाई 1972*

# लहरें योग गंगा की

अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मंडल एवं बिहार योग विद्यालय के संस्थापक परम पूज्य स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संचालन में राजनाँदगाँव में 7 से 9 नवम्बर 1975 को अखिल भारतीय योग सम्मेलन का महायज्ञ सम्पन्न हुआ। महामण्डलेश्वर स्वामी शिवानन्द महाराज के गले का एक रत्न 7 मई 1956 की प्रभात बेला में राजनंदग्राम पहुँचकर जगमगा उठा। गुरुभाई होने के नाते सत्यव्रत जी उस रत्न के प्रचण्ड तेज को अपने में समाहित कर सके, राजनाँदगाँव की जनता महान् संत के चरणों में बैठ अमृत-पान करने लगी। परिव्राजक स्वामी सत्यानन्द देश के नगर-नगर व डगर-डगर में ज्ञान गंगा बहाने लगे। गुरु के समाधिस्थ होने के बाद, साधना से तपकर परमहंस पद प्राप्त करके मुंगेर में गंगा तट पर आश्रम का निर्माण करके 'गुरु ज्योति' प्रज्ज्वलित करके योग का शंखनाद करने लगे। महर्षि सत्यानन्द से व्रत की विशेषता का आशीर्वाद प्राप्त कर, उनके मित्र, सखा, बन्धु बनकर उनके महायज्ञ में होता बने, सहयोगी बने, शिष्य बने। जन्म-जन्मान्तर के पुण्य तथा गुरुदेव की कृपा-कामना से सत्यव्रत जी को निरंजन जैसे पुत्र के पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। शिशु 'निरंजन' को आशीर्वाद मिला–

*'महान सन्त का अवतरण जिसके हाथों हिन्दू संस्कृति का उद्धार होगा'*

और भाग्यवान् पिता और अभिन्न सखा व शिष्य ने उस बालक रत्न (निरंजन) को गुरु चरणों में समर्पित कर दिया।

विधाता का चक्र चलने लगा, गुरु देव का नाम बढ़ने लगा। देश-विदेश में आश्रम बनने लगे। राजनाँदगाँव में भी आश्रम का निर्माण हुआ। 1971 में 7 जुलाई, गुरु पूर्णिमा के दिन 'अखंड ज्योति' जली। राजनाँदगाँव सारनाथ बन गया। देश-विदेश के लोग शिक्षा लेने आने लगे। सत्यव्रत जी 31 दिसम्बर 1971 को महान् कार्य का संकल्प लेकर चिर-समाधि में लीन हो गए। गुरु का काम जीवन में किया और जीवन के बाद भी कर रहें है। उदाहरण है 29 से 31 दिसम्बर 1973 में छत्तीसगढ़ योग सम्मेलन, और 7 से 9 नवम्बर 1975 का अखिल भारतीय योग सम्मेलन, जिसने कितने ही विरोध के बावजूद भी सफलता का डंका बजा ही दिया।

मुझे तो समय-समय पर ऐसे अनुभव होते ही रहते हैं जिन्हें मैं आदेश समझती हूँ। 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखी तैसी।' सितम्बर-अक्टूबर 1973 में स्वामी सत्यप्रेमानन्द जी को कई आश्चर्यजनक अनुभव हुए थे। हाल ही में दिवाली की रात को स्वामी नित्यबोधानन्द जी ने समाधि पर दिये जलाए तो उन्हें विशेष अनुभव हुआ। 6 नवम्बर को सौ. शांति मुदलियर को समाधि में प्रणाम करने पर 'ॐ' की ध्वनि स्पष्ट सुनाई दी। यह सब गुरुदेव की ही महिमा है, गुरु और शिष्य अभिन्न हैं। हमेशा हर जगह याद करते हैं गुरुदेव 'मरण सागर के पार भी हम याद तुम्हारी करते हैं।'

पूज्य स्वामी जी के परिव्राजक जीवन में योग अभियान राजनाँदगाँव से ही शुरु हुआ था, उन्होंने इसे सारनाथ की संज्ञा दी है। स्वामी जी के भक्तों, शिष्यों को नाँदगाँव पर बड़ी श्रद्धा है। इस सम्मेलन में सत्संग के मध्य विश्राम के क्षणों में लोगों को आश्रम की ओर जाते देखा, वहाँ मन्त्र दीक्षा, गुरु दर्शन, ज्योति व समाधि आकर्षण के केन्द्र थे। दूसरी जगह थी योग विद्या प्रेस व बी.एन.सी. मिल्स, जहाँ पूज्य गुरुदेव के प्रथम चरण पड़े थे और जो उनके मानस पुत्र 'निरंजन' का जन्म स्थान है।

'बाल स्वामी निरंजन' की उपस्थिति का अलौकिक अनुभव लोगों ने किया। बच्चों की आवाजें गूँजती थी, बड़ों की भी आवाज उठती– 'पूज्य स्वामी जी की बगल में जो बैठे हैं, वही तो 'निरंजन' हैं।' स्टेज के पीछे बच्चों की भीड़ लगी रहती, 'वो है निरंजन।' अपने नगर के योग रत्न 'निरंजन' के दर्शन के लिए व्याकुल जनता की विफलता का आभास मिला।

कारणवश निरंजन इस सम्मेलन में उपस्थित न हो सके। वे तो बगोता में विभिन्न क्रिया-कलापों में व्यस्त हैं। वहाँ की प्राचीन संस्कृति की खोजबीन कर रहे हैं। अध्ययन, अध्यापन, योग प्रदर्शन एवं प्रशिक्षण द्वारा जनता के कल्याण में दिन-रात एक कर रहे हैं। भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए समस्त विश्व की आत्माओं के योग में लगे हैं। उनका जीवन क्रियात्मक है।

राजनाँदगाँव के योग स्टेज पर 'अलौकिक योगी निरंजन' प्रवचन देने नहीं, वरन् उसे नन्दग्राम का वास्तविक स्वरूप देने आवेगा, तभी गुरुदेव सत्यम् का आशीर्वचन और स्वामी सत्यव्रतानन्द जी एवं मां धर्मशक्ति की तपस्या सफल होगी।

*योगविद्या, दिसम्बर 1975*



# झलकियाँ स्वर्ण जयन्ती की

मुंगेर की भूमि तपोभूमि है। यहाँ कभी भगवान बुद्ध आये तो कभी ऋषि मुद्गल, पश्चात् उस मिट्टी को पवित्र किया परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी के चरण कमलों ने। समय-समय पर पूज्य स्वामी जी ने यहाँ योग सम्मेलनों का आयोजन किया।

अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल एवं बिहार योग विद्यालय के संस्थापक पूज्यपाद स्वामी सत्यानन्द जी ने 9 अक्टूबर से 15 अक्टूबर तक विशाल विश्व योग सम्मेलन प्रारम्भ करने की घोषणा की।

तिथि निकट आ पहुँची। 1 अक्टूबर से ही देश-विदेश के साधकों, जिज्ञासुओं एवं प्रतिनिधियों का आगमन प्रारम्भ हो गया तथा मुंगेर अतिथिमय हो गया। सम्मेलन का आयोजन योग विद्यालय के निकट ही गोयनका धर्मशाला में किया गया।

8 तारीख को प्रतिनिधियों का स्वागत व व्यवस्था करने में दिन रात एक हो गया, पैरों में जैसे चक्र लगा हो। मन उमंग से भरा था। कल सूर्य-किरण के साथ ही हमारे गुरुदेव व दादा गुरु की स्वर्ण जयन्ती की स्वर्णिम रेखा भी फैल जायेगी। आश्रम में हवन कुण्ड में यज्ञ का आयोजन हुआ है, शास्त्री जी देवताओं का आवाहन करेंगे, मानो धुएँ के साथ आकाश में पहुँचना है। स्मृति को आँखें देख रही हैं, 20 वर्ष पहले का धर्म सम्मेलन, धर्मग्रन्थों के मध्य स्वामी शिवानन्द जी की प्रभात फेरी, पर यहाँ यह सम्भव नहीं लग रहा है। अगर आज सत्यव्रत जी होते, तो आज यह कार्यक्रम अवश्य होता। निश्चय किया कि पूजा अवश्य करूँगी, आदरणीय श्री कृष्णकुमार जी गोयनका से सलाह ली। तो उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से प्रसाद-माला-फूल की व्यवस्था कर दी। मैंने विश्वनाथ मन्दिर की विभूति-टीका से गुरुदेव की पूजा अर्चना की, उनके मित्र-सखा-बन्धु-शिष्य के प्रतीक फूल अर्पण कर प्रणाम कर, आदेशानुसार कार्य क्षेत्र में व्यस्त हो गयी।

9 अक्टूबर की सुबह से शिवानन्द आश्रम में यज्ञ का शुभारम्भ हुआ। 8 बजे से सभा मण्डप भर गया। मंच पर जगद्गुरु जी के रजत् सिंहासन की शोभा, आगे दायीं ओर विदेशी भक्त व प्रतिनिधियों की कतार, बायीं ओर महिलायें, पीछे स्थानीय प्रतिनिधि। भजन-कीर्तन प्रारम्भ हो ही रहा

था कि परम पूज्य जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी महाराज का आगमन हुआ। आगे-आगे जगद्गुरु महाराज, उनके पीछे दो अंगरक्षक, दो चंवर डुलाने वाले, एक उनका स्वर्णासन लिये हुये मंच की ओर आ रहे थे। पूज्य गुरुदेव सत्यानन्द जी ने उनका स्वागत किया, वे मंच पर आसीन हुये। इसी क्षण महर्षि मेहीदास जी का शुभागमन हुआ। वृद्ध इतने कि भक्तों के सहारे किसी तरह आगे बढ़ रहे थे। उनके पीछे थी भक्तों की कतार। जगद्गुरु महाराज योगमुद्रा में आसीन थे, उनके दायीं ओर आसीन थे परमहंस सत्यानन्द महाराज, बायीं ओर महर्षि मेहीदास जी आसीन थे।

उद्घाटन एवं आशीर्वाद के लिये स्वामी जी ने जगद्गुरु से आग्रह किया। पार्षदों के जयघोष के बाद श्री शंकराचार्य जी का मंगलाचरण हुआ, तत्पश्चात् प्रवचन। सभी सुख चाहते हैं लेकिन वास्तविक सुख का मार्ग ज्ञात नहीं रहने से मानव परेशान है। सुख-प्राप्ति के अनेक साधन हैं जिनमें योग सर्वोपरि है। यह कहना ठीक नहीं है कि पारिवारिक जीवन यापन करने वाले को योग मार्ग का अवलम्बन नहीं करना चाहिये। योग सबके लिये साधन-साध्य एवं सम्भावनीय है। निरन्तर साधना करते रहने से शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक शान्ति प्राप्ति होती है। प्राण को संयमित करने से नस-नाड़ियाँ सुसंचालित होती हैं, आरोग्यता प्राप्त होती है।

उन्होंने स्वामी सत्यानन्द जी के कार्यों की प्रशंसा करते हुये स्वामी शिवानन्द जी की चर्चा की और सन्तोष व्यक्त किया कि जो उनके सान्निध्य में रहे हैं, वे देश को सुखी बनाने में संलग्न हैं। उन्होंने ऐसे कई केन्द्रों के निरीक्षण से अनुभव किया है कि वहाँ के साधक जब से साधना में लीन हैं पहले से अधिक सुखी व आनन्दित हैं। उन सबकी एवं विशेषकर स्वामी सत्यानन्द जी की उन्होंने प्रशंसा की।

जगद्गुरु के आशीर्वचन के बाद सन्त मेहीदास जी से आशीष की अभ्यर्थना की गई। सन्त जी ने गुरु नानक तथा सन्त कबीर द्वारा किये गये कार्यों का उल्लेख किया। कबीर और गुरु नानक ने कहा था, उपदेश करो, जीविका का पालन करो और संकट आने पर तलवार भी उठाओ। अगर देश के अन्दर राजनीतिक स्थिति ठीक नहीं रहेगी, धन-दौलत, यज्ञ-याजन, साधना-सिद्धि सब बेकार हो जायेंगे। योग का अर्थ है युक्त होना। मन और बुद्धि के मिलन को योग समझो। इसकी प्राप्ति के लिये अभ्यास करने की आवश्यकता है, यह गुरु की सीख से ही हो सकती है।

राज मन्त्री डॉ. पूर्णेन्द्र नारायण सिन्हा ने अपने अनुभव के आधार पर योग के बारे में समझाया।

द्वितीय सत्र में श्रीमती गायत्री देवी ने भारतीय संस्कृति की प्रशंसा करते हुये 'समाधि' के लेखक तथा तन्त्र विद्या के विशिष्ट जानकार के रूप में श्री सूरत चक्रवर्ती का परिचय दिया। श्री सूरत चक्रवर्ती ने सरल शब्दों में बताया कि विश्व कल्याण योग से ही होगा। श्री फजल भाय के भाषण के उपरान्त श्री शंकराचार्य जी महाराज ने योग के विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला, योग विद्यालय की सक्रियता और उपयोगिता की प्रशंसा करते हुये स्वामी सत्यानन्द जी के कार्यों की सराहना करते हुये विश्वकल्याण हेतु प्रार्थना की एवं आशीर्वाद दिया।

10 तारीख के प्रात: 4 बजे से ध्यान व क्रिया योग की कक्षा प्रारम्भ हुई। ब्रह्म बेला में 3 बजे से भजन कीर्तन सत्र प्रारम्भ होता। 6 से 8 बजे तक, 8 से 11 बजे तक, 2 से 4 बजे तक और 5 से 7 बजे शाम तक देश-विदेश से आये विद्वानों के प्रवचन, आसन प्रदर्शन, उनके लाभ तथा जनजीवन के लिए उपयोगी वार्त्ता होती। 7 दिनों के सम्मेलन की विशेषता यह रही कि मंच ऋषि-महर्षियों, सन्त-विद्वानों से और पंडाल जिज्ञासुओं से भरा रहता। यहाँ तक कि धर्मशाला की छत व अहाते की दीवार पर, सड़क के पेड़ों पर भी लोग बैठे हुये शान्ति से सुनते रहते। इतनी भीड़ के मध्य भी पंडाल एवं मंच की सुरुचि पूर्ण व्यवस्था, शालीनता एवं अनुशासन प्रियता का उदाहरण रही।

सम्मेलन के तीसरे दिन, 11 तारीख की शाम को बादल महाराज भी अपने को नहीं रोक सके। तपोभूमि के दर्शन हेतु उमड़ने लगे और देश-विदेश से आये प्रतिनिधियों तथा जिज्ञासुओं पर गुलाब जल का छींटा भी शुरू हुआ। सब परेशान, पर गुरुदेव शान्त भाव से सिंह गर्जना करते रहे– 'मुंगेर के पेड़-पत्ते तक सजीव हो गये हैं इस सम्मेलन में, गुरुदेव के गृह त्याग की स्वर्ण जयन्ती में सभी को आना होगा, जो नहीं आयेंगे उन्हें युग कभी माफ नहीं करेगा।' उमड़ते बादलों की छाया में भजन-कीर्तन सहित कार्यक्रम पूरा हुआ, तत्पश्चात् भोजन व विश्राम हुआ। अपने मेहमानों को इन्द्रदेव ने लोरियाँ सुनाना शुरू किया।

12 तारीख के प्रात: 3 बजे से आश्रम, धर्मशाला, स्कूल, जहाँ-जहाँ अतिथि ठहरे थे, वहीं सबने कीर्तन शुरू किया। कीर्तन की ध्वनि सुनकर

इन्द्रदेव ने तांडव नृत्य शुरू किया। गंगा जी बहुमुखी धारा से मुंगेर में बरसने लगी और हमारे गुरुदेव शंकर जी जैसे अडिग उसे झेलने लगे। कार्यकर्त्ता चारों ओर व्यवस्था करने दौड़ने लगे। वे सब अन्नपूर्णा से चाय नाश्ता और भोजन जीपों में भर-भर कर मेहमानों के निवास स्थल पर ले जाकर उन्हें समय-समय पर खिलाते-पिलाते तथा हर सुविधा का ध्यान रखते। अब तो प्रतिनिधि सत्संगियों व इन्द्र देवता में होड़ लग गई, कभी कीर्तन की ध्वनि तेज होती, कभी इन्द्रदेव तेज होते ... तुलसीदास जी के शब्दों में–

*मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोई।*
*रथ समेत रवि थाकेउ निशा कवन विधि होई॥*

इसी तरह विचित्र सत्संग देख सूर्य भगवान समाधिस्थ हो गये। शाम को समाधि टूटी, तो सान्ध्य प्रकाश फैल गया। इन्द्रदेव ने भी सजग होकर अपनी माया समेट ली। ऐसे समय मूसलाधार वर्षा के मध्य आनन्द कुटीर, ऋषिकेश के परमाध्यक्ष स्वामी चिदानन्द जी महाराज का शुभागमन हुआ। स्वामी-द्वय का बालपन लहराने लगा, सबका मुख प्रफुल्लता से दीप्त हो उठा।

दिनांक 13 की सुबह सूर्य-किरण के साथ ही शमियाना-पंडाल ठीक करने का काम शुरू हो गया। देश-विदेश के अतिथि, महिला-पुरुष, छोटे-बड़े सभी पंडाल को साफ करने में व्यस्त हो गये। 9 बजे से सत्संग आश्रम के हॉल में किया गया। भजन, कीर्तन तथा कई भक्तों के भाषण के बाद स्वामी चिदानन्द जी महाराज का प्रवचन, भजन. शुभकामनायें व उपहार-भेंट का कार्य सम्पन्न हुआ। लगा कि गुरु के त्याग व शिष्य के जन्म की स्वर्ण जयन्ती की वास्तविक स्वर्णिम बेला यही है। देश और विदेश के सैकड़ों आश्रमों के संचालक, विशाल सम्पदा के मध्य निर्लिप्त भाव से रहने वाले परमहंस ने गुरु आश्रम ऋषिकेश के बालबन्धु चिदानन्द जी से उपहार प्राप्त कर कहा– 'अब मैं धनी हूँ।' हॉल व पूरे आश्रम में उपस्थित प्रतिनिधि इस नयनाभिराम दृश्य को देखने में लीन थे।

स्मृति सम्मोहन सी मेरी आँखें देखने लगीं, ऋषिकेश में 23 मई, 1957 को संध्या सत्संग में स्वामी शिवानन्द जी ने कहा था, 'लगता है सत्यम् की जेब भारी है।' तब स्वामी सत्यानंद जी ने कहा था, 'परिव्राजक की जेब खाली है स्वामी जी। सत्यम् आपसे ही झोली भरवा कर यात्रा करेगा।' विधि का विधान हम समझ नहीं पाते, पर इन्द्र कोप का रहस्य ही यही है कि

आश्रम हॉल में 'शिवानन्द ज्योति' के समक्ष ही स्वामी चिदानन्द सरस्वती का प्रवचन, भजन, शुभकामना सन्देश, उपहार प्रदान यहीं सम्पन्न होना था। दो उत्तराधिकारी बेटों पर पिता के आशीष कण छिटक पड़े। संयोग को साकार रूप देने के लिए ही देवताओं को यह सब लीला करनी पड़ती है। धन्य है प्रभु की लीला और माया।

याद आये गुरुदेव के वे शब्द– 1957 में गंगोत्री यात्रा की वापसी में, पद यात्रा की अन्तिम मंजिल धरासू के पहले खूब बारिश हुई, ओले भी पड़े। उस समय स्वामी जी ने कहा था– 'सत्यव्रत जी, आप लोगों की यात्रा सफल हुई, इन्द्रदेव ने अभिषेक जो किया है। शुभ कार्य में बरसात जरूर होनी चाहिये।'

तीसरे पहर की सत्संग सभा गोयनका धर्मशाला के प्रांगण में प्रारम्भ हुई। जनता उमड़ पड़ी, सड़क में, बगीचे में, दीवार पर, पेड़ों पर। स्वामी चिदानन्द महाराज व स्वामी सत्यानन्द महाराज मंच पर आसीन थे। आँखें देख रही थीं, कान सुन रहे थे। इन दोनों के प्रवचन में उनके आश्रम जीवन के शरारत भरे अनुभव सुनकर आनन्दसागर में गोते लगा रहे थे। सन्तों की जीवन-चर्या अद्भुत होती है। स्वामी चिदानन्द जी ने देश-विदेश से आये प्रतिनिधियों व जिज्ञासुओं को एवं अपने बाल बन्धु, हमारे पूज्य गुरुदेव को शुभकामना दी। अन्त में विश्व कल्याण हेतु शांति पाठ कर विदा हुये।

14 तारीख का कार्यक्रम यथासमय शुरू हुआ। इस दिन की सत्संग सभा में 13 वर्षीय स्वामी निरंजन के प्रवचन के पहले, श्री स्वामीजी ने अपने नन्हें शिष्य का परिचय देते हुए कहा– 'निरंजन के लिए तो हम हैं, परन्तु हमारी जो व्यक्तिगत क्षति हुई है, उसकी पूर्ति नहीं हो सकती।' गुरुदेव अपने प्रिय शिष्य, अभिन्न सखा को नहीं भूले हैं। श्री टैगोर जी के शब्द याद आ गये, 'मरण-सागर के पार भी तुम अमर हो, हम तुम्हारा स्मरण करते हैं।'

भोजन विश्राम के समय सभी प्रांतों के प्रतिनिधियों ने सभा करके गुरुदेव के अभिनन्दन की योजना बनाई, तथा सेक्रेटरी से अनुमति प्राप्त करके योजना की रूप रेखा तैयार की।

15 तारीख का प्रोग्राम विशेष महत्त्वपूर्ण था। अभिनन्दन व विदाई का सामंजस्य अपूर्व था। कई वक्ताओं को समय देने के बाद प्रतिनिधियों

को 10 से 11 तक का समय मिला। संयोजक ने हर शहर से सिर्फ एक प्रतिनिधि से 'मालार्पण' का अनुरोध किया। देश-विदेश से आये आश्रम-संस्था के संचालक 250 प्रतिनिधियों ने माला-भेंट देकर अभिनन्दन किया, लम्बी कतार के मध्य, कुछ महिलाओं ने विशेष पूजा का आयोजन कर बहती गंगा में हाथ धो ही डाला। गुरुदेव को यह सब तनिक भी पसन्द नहीं। विशेष अनुरोध पर उन्होंने 1 घण्टे का समय दिया था। पूज्य स्वामी जी को हमारी पूजा-अभिनन्दन की आकांक्षा व अपेक्षा नहीं थी पर हम संसारियों की तो आशा-अभिलाषा, सुख-सन्तोष, सब पूजा-प्रसाद में निहित है। हम जानते हैं कि हम प्रभु के ही हैं, फिर भी कहते हैं, प्रभु हमारी इच्छा पूरी कर दो, हम प्रसाद चढ़ायेंगे। कितना अच्छा होता कि पूरा दिन, पूजा-अभिनन्दन के निमित्त मिल जाता।

शाम की भीड़ देखकर व्यवस्थापकों को परेशानी हो रही थी। लगता था पूरे शहर की जनता गोयनका धर्मशाला के अन्दर-बाहर छा गई है। पर स्वामी जी के आदेशानुसार जनता बड़ी शान्ति से चली गयी। प्रतिनिधिगण आश्चर्यचकित देखते रह गये। इस तरह स्वर्ण जयन्ती के 7 दिन बीत गये। सत्संग सभा के अतिरिक्त शिवमन्दिर के भव्य श्रृंगार-सजावट तथा मंत्र पाठ सहित दुग्धाभिषेक अविस्मरणीय थे।

आश्रम हॉल में योग साहित्य की प्रदर्शनी के साथ ही थी कुण्डलिनी योग के हर अंग की नयनाभिराम हस्त कला।

सम्मेलन के 7 दिनों में हमारे मंच पर एक से एक बढ़कर विद्वान् महापुरुष आये। जगत्गुरु शंकराचार्य जी तो महान् हैं ही, बिहार के सन्त मेहीदास जी तथा स्वामी शिवानन्द जी की समाधि पर नियम से भजन करने वाले, करताल लेकर *'ब्रह्म मुरारी सुरार्चित लिंगम्'* भजन के शब्दों से सबको शिवलोक का आभास कराने वाले अवधूत स्वामी करुणानन्द जी, ये दोनों सन्त सांध्य ज्योति फैला रहे थे।

उसी मंच पर बाल योगी निरंजन और बाल योगी सोमेन्द्र की अरुण आभा फैल रही थी। विदुषी ब्रह्मकुमारी मोहिनी देवी ने भी विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया।

श्रीमती अमर संगीत जी के भजन-कीर्तन की जो विशेषता है, वह तो अविस्मरणीय है ही, साथ ही संन्यासी शिष्यों का कीर्तन 'जपो निताई गौर राधेश्याम, भजो हरे कृष्ण, हरे राम,' चारुशीला का भजन 'गुरुदेव तुम्हारे

चरणों में फूल चढ़ाने आई हूँ' तथा श्रीमती पार्वती पाण्डेय का अभिनन्दन गीत विशेष उल्लेखनीय हैं।

*उज्ज्वल हंस अनेक, विमल मानस के रंजन।*
*जन मानस के परमहंस, तेरा अभिनन्दन॥*

श्रीमती कृष्णादेवी का हरि कीर्तन एवं श्लोक पाठ के साथ रामायण पर मोहक प्रवचन, 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम की जनकपुर में सजगता' जिसे सुन जनता भाव-विभोर हो गई थी। कृष्णा जी ने ईश्वर भक्ति की रस धारा प्रवाहित कर जन-मन को मोह लिया था।

7 दिनों में जो हुआ, उसके लिये तो यही कहना है, हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता। पूज्य स्वामी शिवानन्द जी महाराज और योग युग के प्रणेता परमहंस सत्यानन्द जी महाराज के चरणों में प्रणाम, सभी सन्तों-भक्तों को प्रणाम, उत्तरवाहिनी माँ गंगा को, योग नगरी मुंगेर को शत-शत प्रणाम।

*योगविद्या, सितम्बर-अक्टूबर 1973*



नोट




सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों को 'स्वर्णिम संग्रह शृंखला' के नाम से पुनर्प्रकाशित किया गया है। इस शृंखला के अंतर्गत यह पहली पुस्तक, श्री स्वामी सत्यानन्द जी, स्वामी निरंजनानन्द जी, स्वामी सत्यव्रतानन्द जी तथा स्वामी धर्मशक्ति जी की प्रारम्भिक रचना-रश्मियों का सचमुच स्वर्णिम संकलन है।




[bar code here]

**ISBN** : 978-93-81620-15-1